वेदना के अंकुर

भगवती प्रसाद वाजपेयी 'अनूप'

एम.एन. पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
नयी दिल्ली

दिवंगता
जीवनसंगिनी
'सरस्वती' को
प्रेमप्रसून के रूप में समर्पित

"मानव जीवन-वेदी पर, परिणय है विरह-मिलन का,
सुख-दुख दोनों नाचेंगे, है खेल आँख का, मन का।"

—**प्रसाद**

शुभाशंसा

श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी 'अनूप' द्वारा पार्श्वांकित सात उपन्यास और एक कहानी-संग्रह के प्रणयन के बाद, उनकी सद्यः विरचित औपन्यासिक कृति 'वेदना के अंकुर' का मैंने अवलोकन किया।

प्रस्तुत उपन्यास मानव मन की करुण-व्यथा को उजागर करने वाली एक सशक्त और संवेदनापूर्ण रचना है। इसकी मुख्य पात्र तेहत्तर वर्षीय वयोवृद्ध किन्तु अत्यन्त क्रियाशील एक ऐसी नारी है जो जन्म, संस्कार, ज्ञानार्जन, दाम्पत्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और वैराग्य की मुश्किल मंजिलों को पार करती हुई अपने वर्तमान में धरती के ध्रुव सत्य मृत्यु की महत्ता को सहर्ष अंगीकार करती हुई निर्भयतापूर्वक उसके स्वागतार्थ अपनी साहसपूर्ण मानसिकता का निर्माण करती है।

अपने लघुशेष जीवन में समाज की रूढ़िवादी परम्परा के मध्य अपने संघर्षपूर्ण नारी जीवन के रोचक प्रकरणों को आलोकित करती हुई, विगत यौवन के उच्छ्वासों और स्पन्दनों की सुखद स्मृति के सम्बल के साथ अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर अभिमुख रहकर हमें एक स्पष्ट जीवन दृष्टि दे जाती है। वह है—अपने वैधुर्य की कण्टकाकीर्ण राहों पर, नव-विधुर कैसे कदम रखें ? मनचले समाज की उपभोक्तावादी दुष्प्रवृत्तियों से बचकर अपने एकाकी और आकर्षणरहित जीवन को कैसे सँवारें ? उन्हें चाहिए कि वे अपने आडम्बरी आवरण को उतारकर समाज के कुत्सित कार्यों से विरत रहकर प्रतिदिन कुछ क्षणों के लिए आत्मनिरीक्षण करें और लौकिक-कल्याण की पुनीतभावना से सेवा, त्याग और प्रेम की त्रिपथगा में नहाकर जीवन का शाश्वत सत्य समझने के लिए मूक सत्संग का अनुष्ठान करें; प्रकृति की स्वभावगत प्रक्रिया के अनुसार आवागमन के बन्धन से मुक्ति हेतु भारतीय मनीषियों द्वारा सुझाए गए साधन मार्गों पर पदार्पण करें।

इस उपन्यास की प्रमुख पात्र सरस्वती रोग शोकग्रस्त जीवनयात्रा के बावजूद ऐहिक सम्बन्धों के दायरे में सिमटी रहकर भी अपने अन्तिम पड़ाव की ओर शनैः-शनैः अग्रसर हो जाती है। सोते-जागते, खाते-पीते, हँसते-बोलते कभी भी मानव जीवन का ध्रुव सत्य उसके दृष्टिपथ से ओझल नहीं होता।

अन्त मे सासारिक सौन्दर्य और लौकिक जीवन की इतिश्री करने वाले बहुरगी परिदृश्य प्रस्तुत करती हुई सरस्वती अपने नाम को सार्थकता प्रदान करती हुई, पीछे छूट रहे अपने जीवन साथी को 'जयशंकर प्रसाद' की निम्नांकित पंक्तियों द्वारा अपना विदाई सन्देश दे जाती है।

मानव जीवन-वेदी पर
परिणय है विरह-मिलन का।
सुख-दुःख दोनों नाचेंगे
है खेल आँख का, मन का।

19 नवम्बर, 2000

—डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित
पूर्व विभागाध्यक्ष,
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ

आमुख

अपनी 'दास कबीर जतन ते ओढ़ी' शीर्षक उपन्यास के वर्ष 1998 के प्रकाशन के बाद मैं अपने जीवन के सर्वाधिक संघर्षपूर्ण दुर्दिनों से आक्रान्त रहा।

वृद्धावस्था का क्रमिक दुरागमन, शारीरिक शक्ति का निरन्तर ह्रास और पत्नी 'सरस्वती' की दीर्घकालीन रोग-ग्रस्तता और अन्त में उसकी व्यथापूर्ण मृत्यु—ये सारी समस्याएँ मुझे एक साथ घेर कर साहित्य-सेवा के संकल्प से विमुख करती रहीं। दो वर्षों के अवांछित अन्तराल के बाद मैं अपनी लेखनी का दुबारा स्पर्श कर सका।

मुझे अपने साहित्यानुरागी सुधी पाठकों, 'कादम्बिनी', 'दैनिक हिन्दुस्तान' और 'राष्ट्रीय सहारा' से सम्बद्ध साहित्य-समीक्षकों के सम्मुख विनम्र स्वरों में कृतज्ञता ज्ञापित करने की हार्दिक इच्छा है, जिन्होंने मेरी लगभग एक दर्जन प्रकाशित कृतियों का समय-समय पर विद्वत्तापूर्ण मूल्यांकन करके अपने नीर-क्षीर विवेक द्वारा मेरी साहित्य-सेवा को सम्बल प्रदान करते हुए चिन्तन और सृजन की नई दिशाओं के वातायन उन्मुक्त किए हैं।

मेरा प्रस्तुत उपन्यास 'वेदना के अंकुर' मानव जीवन के उस वास्तविक परिप्रेक्ष्य को उकेरने का लघु प्रयास है जिससे धरती पर जन्मे अधिकांश नर-नारियों को एक न एक दिन अनचाहे गुजरना ही पड़ता है।

विवाह, गृहस्थ जीवन, परिवार और समाज में अपनी महत्त्वपूर्ण केन्द्रीय भूमिका का निर्वाह करने वाली जीवन-संगिनी के निधन पर निष्ठावान पतियों को जिस हताशापूर्ण मनोदशा का शिकार होकर अपने दुःखद वैधुर्य के दुष्कर पथ पर चलना पड़ता है, उसी का स्वानुभूत चित्रण इस कृति में अंकित करने का आयास किया गया है।

अपने विधुर जीवन के झकझोर झंझावात को झेलता हुआ मैं अपने पुत्र विवेक को आन्तरिक आशीष प्रदान करना चाहता हूँ जिसके अविचलित मूक सहयोग से मुझे वे सारी भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध होती रहीं, जिनके अभाव में मैं अपनी वर्तमान विषमता में इस कृति को इतनी शीघ्रता से पूरी न कर पाता ?

मैं अपने छात्र-मित्र डा. दुर्गाशंकर मिश्र, सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध साहित्य समीक्षक,

मेरे पितृव्य आचार्य श्री अवध प्रसाद वाजपेयी, पुरस्कृत उपन्यासकार एवं सम्मानित समीक्षक मेरी रचनाधर्मिता के प्रेरणादायक डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित, पूर्व विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय तथा हिन्दी कथा-साहित्य में मेरा प्रथम प्रवेश कराने वाले छात्र जीवन के सुहृद और अद्वितीय व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

अन्त में, मैं अपने लोकप्रिय सुविख्यात प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स कश्मीरी गेट, नई दिल्ली, के वर्तमान व्यवस्थापक श्री एस. के. पुरी की मुक्तकण्ठ से सराहना किए बिना नहीं रह सकता जिनकी परम्परागत अनुभवी सूझ-बूझ और उच्चस्तरीय प्रबन्ध क्षमता के कारण मेरी सारी कृतियाँ सुरुचिपूर्ण एवं कलात्मक कलेवर में अब तक प्रकाशित होती रही हैं। साथ ही मैं उनके लखनऊ शाखा के प्रबन्धक श्री एस. के.मुखर्जी के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिनका मूल्यवान परामर्श मुझे समय-समय पर प्राप्त होता रहा है।

स्थान : एच.आई.जी.–21/1029
इन्दिरा नगर, लखनऊ
दिनांक : 30 अक्तूबर, 2000

–भगवती प्रसाद वाजपेयी
'अनूप'

दिनांक : 3 मार्च, 1999, समय : 7 बजे सायं, स्थान : इन्दिरा नगर, लखनऊ।

देश की आर्थिक सम्पन्नता, सामाजिक चेतना और पाश्चात्य जगत् के रीति-रिवाजो के अन्धे अनुकरण ने हमारे मध्य-वर्गीय समाज में जन्म-दिवस, परिणय-दिवस और मृत्यु-दिवस मनाए जाने की एक जानदार परम्परा डाल रखी है। मैंने अपने मित्रजनो के अनुरोध पर अपनी जीवनसंगिनी श्रीमती सरस्वती वाजपेयी, जिन्हें मैं प्यार मे शाश्वती कहता हूँ, का तेहत्तरवाँ जन्म-दिवस दिनांक 3 मार्च, 1999, दिन बुधवार के सायंकाल 7 बजे उल्लास और आनन्द के साथ, किन्तु सादगी की सम्भ्रान्त सीमा के अन्दर मना डाला। आयोजन के भावुकतापूर्ण क्षणों में चंचलतावश मैंने उनसे प्रश्न कर लिया, "अगले वर्ष तुम अपने जीवन के किन शेष सपनों को साकार देखना चाहती हो।"

"सच कहूँ तो अब मेरा न कोई सपना शेष है और न कोई लालसा। नीली छतरी वाले ने क्या नहीं दिया है मुझे ? सुखी परिवार, सम्पन्न जीवन और शरीर की छाया की तरह सदा साथ रहने वाला सुख-दुःख का सहभागी मेरा पति"—शाश्वती ने यह कहकर मेरे चेहरे की ओर तृप्तिपूर्ण दृष्टि से देखा।

"फिर भी, कुछ तो दबी-खुची इच्छाएँ वृद्धावस्था के स्तर पर तुम्हारे हृदय के किसी कोने में अवश्य छिपी होंगी"—मैंने समाधानात्मक स्वर में उनसे दुबारा जिज्ञासा की।

"नहीं कुछ नहीं। तुम बार-बार मुझसे पूछ रहे हो तो सुनो, मेरी वृद्धावस्था मेरे शरीर क्षय की मुझे निरन्तर सूचना दे रही है, पर मैं तुम्हारी ख़ुशी के लिए अपने जीवन की गाड़ी जैसे-तैसे आगे घसीट रही हूँ। अब मुझे कोमल शय्या, निर्विघ्न विश्राम, प्रातःकाल स्नान-पूजा, दोपहर में घी लगे दो गर्म-गर्म फुल्के, सादी लौकी या परवल की सब्ज़ी, नमक, काली मिर्च पड़ा घर का ताज़ा दही, खाने के बाद तुलसी तम्बाकू वाला देशी-बंगला या मघई पान, शाम को चार बजे एक कप खुशबूदार चाय, रात मे दूध-दलिया और फिर पोता-पोती के बीच में लेटकर उन्हें रामायण-महाभारत की शिक्षाप्रद रोचक कहानियाँ सुनाना या टी.वी. पर कोई सीरियल देखते-देखते सो जाना—बस इतना ही चाहिए, इससे अधिक कुछ नहीं।" शाश्वती ने इतना कहकर एक लम्बी साँस ली। इतने में ही बस ? मैंने अगला प्रश्न किया।

"हाँ।"

"क्यों ?"

"धरती पर आँखें खोलने के बाद अपने माता-पिता की आकांक्षाओं के अनुरूप शिशु को अपने परिवार का प्रतिष्ठित सदस्य बन जाने के लिए कठिन परिश्रम करना पडता है, फिर अपनी लम्बी जीवन-यात्रा में संघर्ष करते-करते जब वही व्यक्ति अपने गन्तव्य पर पहुँच जाता है, तो विजयी सैनिक की तरह अपनी उपलब्धियों पर दृष्टिपात करने और आत्म-सन्तोष की मुद्रा में उसी ठौर कुछ समय तक अपना पड़ाव डाले रहने का लालायित हो जाता है। मैं आध्यात्मिक परिवार में जन्मी, धर्म-निष्ठ माता-पिता की प्रथम प्यारी सन्तान, पुराने दिनों की आदर्श शिक्षिकाओं द्वारा पुत्रीवत् स्नेह पाकर दस-बारह वर्षो तक सुशिक्षित, राजसी ठाट-बाट के जगमगाते वातावरण में ब्याही, नवोढ़ा के रूप में जब तुम्हारे घर ससुराल में आई तब तुम कान्यकुब्ज कालेज के छात्र थे, पढ़ने में प्रथम श्रेणी पर व्यावहारिक जीवन में अधकचरे। हाँ जब-तब तुम्हारा भावुक मन 'प्रसाद' के आँसू की शैली में स्वरचित 'प्रेमाश्रु' की निम्न पंक्तियाँ

> "जब विदा जगत् से कोई,
> सब छोड़ हुआ प्रिय अपना
> सन्यस्त-भाव पर उसके,
> टूटा सुन्दर चिर सपना"

गुनगुनाने लगता, तो मैं अपने मन में सोचने लगती कि कौन सी अभागिन सुन्दरी तुम्हारे सुन्दर सपने बिखेरकर तुमको दुःखी करके तुमसे दूर हो गई है ? छोटे घर के बड़े परिवार में, जो शहर में रहकर कितना दक़ियानूस क़िस्म का था, मैं तुमसे दिन के समय दो शब्द भी नहीं बोल सकती थी। आँगन से सटे बरामदे के छोटे से कुएँ से पानी की बाल्टी खींचते समय घूँघट की ओट से, मैं तुमको चुपके से उस समय झाँक लेती थी, जब तुम पढ़ने की डेस्क पर सीधे बैठे लोनी की कोआर्डीनेट ज्योमेट्री के प्रश्न हल करने में व्यस्त रहते। कभी-कभी सौभाग्य से तुम मेरे नेत्रों की चोरी पकड़ लेते, मुझे देखकर तुम भी कुछ संकोच के साथ मुस्करा देते, मैं इस आकस्मिक घटना से अपने नव-दाम्पत्य का मंगलाचरण कर लेती। कैसा समय था वह और कैसे थे तुम्हारे परिवार के लोग ? मैं यह सोच कर अभी तक रोमांचित हो उठती हूँ। उस समय तुम्हारे परिवार की कठोर वर्जनाएँ और मेरे अल्हड़-यौवन का मचलता मन कितनी शृंखलाओं में जकड़ा था।

सारा दिन घर-गृहस्थी का समाप्त न होने वाला शैतान की आँत की तरह का काम और रात में सौतेली सास के गन्दे-पैरों के तले पलँग की अर्दवान पर पड़े हल्के से बिस्तर पर आराम। लेटी नहीं कि सो गई, न जाने कब करवट बदली ? ज्योही पड़ोस की मस्जिद से अज़ान की आवाज़ कान में पड़ी, उठकर मैं बैठ गई, वहीं

साँप और सीढ़ी का पुराना खेल फिर शुरू।

तुम यूनिवर्सिटी चले जाते, मेरे लिए घर में चारों ओर नीरवता छा जाती, लम्बे-लम्बे दिनों का मरघटी सन्नाटा मुझे मुश्किल से काट मिलता। अपने परिणय-सूत्र में बँधने के बाद तुम्हारे अध्ययन के कारण छः वर्ष मैंने न जाने कैसे बिता दिए? उन वनवास-जैसे वर्षों की विकट वियोग-यातना और नए दाम्पत्य-जीवन की असहाय वेदना झेलते-झेलते मेरे यौवन की पहली बहार न जाने कब आई-गई हो गई ? ऊपर वाला मेरी मजबूरियों से पिघल गया, तुम्हारी शिक्षा पूरी हुई, प्रदेश सरकार की नौकरी तुमको घर से बाहर ले गई और मैं भी तुम्हारी जीवन-संगिनी की भाँति तुम्हारे पीछे लग गई।

प्रथम पुत्र, द्वितीय पुत्र, तृतीय पुत्री और चतुर्थ पुत्र क्रमशः परिवार की परिधि बढ़ाते रहे, क्योंकि तब लाल तिकोन का न उदय हुआ था और न हम दो, हमारे दो के नारे का अविवेकी जन्म।

बच्चों का लालन-पालन, दवादारू, पढ़ाई-लिखाई, झगड़ा-झंझट और शादी-ब्याह करते-करते वही तुम्हारी उपेक्षित नववधू आज अशक्त वृद्धा के इस रूप में तुम्हारे सामने अपने परिश्रान्त जीवन का तेहत्तरवाँ जन्म-दिवस मनाकर तुम्हारे प्रश्नों की बौछार सह रही है।" अपने जीवन की प्रमुख उपलब्धियों की ओर इशारा करके शाश्वती जी शय्यासीन हो गईं। मैं उन्हें भावुक नेत्रों से कुछ देर तक लगातार देखता रहा, फिर बोला "बहुत सुन्दर, यदि तुम यौवन की स्मृतियों के विशाल सागर के ऊपर फिर से उड़ना चाहती हो, अवश्य उड़ो। बीते हुए समय के विस्तृत पंख फैला दो, विस्मृति के सुन्दर आकाश के एक सूने कोने से उड़ना शुरू करो, लगातार नदी-नाले, खेत-खलिहान, घर-श्मशान और लम्बे मरुस्थलों के ऊपर उड़ती चलो, जब तक व्यतीत दाम्पत्य जीवन के तेहत्तर वर्षों की ऊबड़-खाबड़ यात्रा आँखों के सामने सजीव होकर पुनः ओझल न हो जाए, अपनी वैचारिक उड़ान जारी रखो।"

"मुझे अब तुम्हारे अथवा किसी परिवारजन के किसी सुझाव की आवश्यकता नहीं रह गई है। मेरे पास अपने लघु-शेष जीवन जीने का एक स्पष्ट चिन्तन है, एक यथोचित दृष्टिकोण है, मैं उसी तरह जीना चाहती हूँ, जी भरकर जीना चाहती हूँ, जैसा मैंने सोच रखा है।"

"कौन मना करता है तुमको ?"

"हाँ यह बात हुई, पर मैं यह अवश्य चाहती हूँ कि तुम अपनी जीवन-शैली में अब कुछ बदलाव लाओ, सांसारिक सम्पर्कों को कम कर दो। तुमने अवश्य अनुभव किया होगा कि प्रातःकाल तुम्हारे साथ तेज़ टहलने का दम्भ भरने वाले मन्द-दृष्टि, न्यून श्रवण-शक्ति, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, हृदयरोग और गठियाबाई से ग्रस्त हो जाने के बावजूद ये आई.ए.एस., आई.पी.एस., सैन्य अधिकारी, डाक्टर और इंजीनियर

अभी तक अपनी-अपनी पुरानी केंचुलो के बाहर नही निकल पाए है, उनके वही पुराने डिपार्टमेंटल नौकरशाही के निरर्थक लतीफे और उनके सहारे आत्मश्लाघा की छिपी प्रवृत्ति। कितने अज्ञानी हैं ये, सेवानिवृत्त अधिकारी, जो कुछ भी न जानते हुए अपने साथियों में आध्यात्मिक प्रवचन शुरू करते हैं, वास्तव में कितने साधन शून्य है वे लोग, इसका उन्हें स्वयं पता नहीं है। वे अपने दोषों का न तो नियमित निरीक्षण करेंगे और न ही उनकी पुनरावृत्ति का त्याग। अपने कुकृत्यों की पुनरावृत्ति करते रहकर भी पर-निन्दा और पर-चर्चा में उन्हें अद्वितीय आनन्द की अनुभूति होती है, अपने साथ टहलने वाले सरल स्वभाव वाले बूढ़ों पर ये नासमझ अपनी वाक्-चातुरी द्वारा अपनी नकली श्रेष्ठता स्थापित करने के प्रयास में लगातार जुटे रहते हैं। ऐसे 'थ्योरिस्ट क्लास' वाले बूढ़ों का साथ तुम बिल्कुल छोड़ दो। तुम चुनी हुई उपनिषदे पढो, उनका चिन्तन और मनन करो और नियमित कुम्भक प्राणायाम द्वारा अपनी चेतना का उस प्रकाश पुंज के साथ तादात्म्य स्थापित करने का अभ्यास करो जेसा कि मैं स्वयं कर रही हूँ।

इसके अतिरिक्त एक बात और कहना चाहती हूँ। अपना शेष समय साहित्य-सेवा मे व्यतीत करो। भ्रष्ट समाज की ज्वलन्त समस्याओं पर कहानियाँ लिखो, राजनीतिक भ्रष्टाचार पर उपन्यास लिखो, दलित और महिला लेखन के ढोंगियों को साहित्य मे 'मण्डल-कमण्डल' की राजनीति अलग रखने को कहो, साहित्य समग्र मानव-चेतना का संवेदनशील हृदयों द्वारा स्वाभाविक प्रकटीकरण है, उसे किसी क्षणिक अभियान अथवा नए उठे वाद-विवाद के आधार पर 'ब्राण्डेड' नहीं किया जाना चाहिए, जैसा कि दिल्ली की कुछ मशहूर मासिक पत्रिकाओं के सम्पादक अपने साम्यवादी परचम को लहराने के लिए हर महीने कतर-ब्योत के साथ करते रहते हैं। वाल्मीकि, विदुर, कबीर, रैदास, प्रेमचन्द और बाबा नागार्जुन ने अपनी रचना-धर्मिता की व्यापक साधना मे ईमानदारी और निष्ठा के साथ समाज के विभिन्न अंगों की पीड़ा, आह और कराह का जीवन्त रूपांकन किया है, फिर आज के सिरफिरे लेखक अलग दलित लेखन या नारी लेखन के बैनर के तले आए दिन क्यों एकत्र होने लगे हैं ? मैं समझती हूँ केवल अपना स्वार्थी वर्चस्व कायम करने के लिए। मुझे तो इन क्षेत्रों की फर्स्ट-हैण्ड जानकारी मिलती रही है क्योंकि महीने में कई मासिक पत्रिकाओं से दो चार होती रहती हूँ। तुम इन दिग्भ्रमित लेखकों को रास्ते पर वापस ला सकने का प्रयास करो, अन्यथा पाकिस्तानी विभाजन की तरह साहित्य विभाजन की गति तेज हो जाएगी।''

''मैं तुम्हारी व्यथा को समझता हूँ। इस समय हिन्दी लेखकों का राजनीतिकरण हो रहा है, उनका नया नारा है दलित दलितों के लिए लिखें, नारी नारियों के लिए लिखें, वही प्रामाणिक लेखन माना जाएगा, मुझे विश्वास है कि हिन्दी साहित्य में दुनिया के अन्य साहित्यों की तरह समाज की स्थायी प्रवृत्तियों का उदय होगा और

फिर कालान्तर में ये नए-नए नारे स्वतः काल के गाल में समाकर अपनी मृत्यु मर जाएँगे। तुम्हारे तर्कपूर्ण एवं उत्तेजक विचारों से मुझे प्रेरणा प्राप्त हुई है, मैं आज ही अमीनाबाद से लेखन सामग्री लाकर कल प्रातःकाल से अपने सोद्देश्य लेखन का श्रीगणेश कर दूँगा, पहले 'दलित लेखन की दुर्दशा' और फिर 'नारी लेखन की सीमाएँ' इन्हीं दोनों विषयों पर अपनी कलम उठाऊँगा।"

उपर्युक्त रोचक वार्तालाप मेरी दिवंगत पत्नी और मेरे बीच कुछ महीने पूर्व इन्दिरा नगर के नए आवास में उस समय घटित हुआ था, जब हम दोनों घर मे अकेले एक-दूसरे के सामने जीवन-साथियों की तरह बैठे हुए थे, क्योंकि अर्चना एवं विवेक पुत्रवधू और पुत्र, सौम्या और श्रेयस पौत्री और पौत्र के साथ जगन्नाथपुरी की धार्मिक यात्रा के लिए उसी दिन प्रस्थान कर चुके थे। तब कौन जानता था कि चतुर विधाता के अदृष्ट कान एक वृद्ध दम्पति का एकान्त संवाद कहीं छिप कर सुन रहे हैं ? बात कुछ विचित्र थी या यों कहें कि भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का सूत्रपात उसी समय से हो गया था। अब तक की सच्चाई तो यह थी "कुर्वन्नेव हि कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः" अर्थात् कर्म करते ही सौ वर्षों की जीने की इच्छा करें—के पुरातन आदर्श को जीवन के केन्द्र बिन्दु में रखकर हम पति-पत्नी लम्बी जीवन-यात्रा के दुर्गम मार्गों पर युवकों की भाँति सक्रिय तन और सशक्त मन के साथ सदैव आगे कदम बढ़ाते रहे। जगत्-नियन्ता ने शक्ति दी, स्फूर्ति दी, उत्साह और उल्लास दिया, आगे बढ़ते रहने की अकूत प्रेरणा दी।

दूसरा अनुच्छेद

अप्रैल, 1999 का महीना शुरू हो गया। शीत की कठोरता समाप्त हो गई। प्रातःकालीन वायु वसन्त के आगमन की सूचना देने लगी। सामने लगे वट वृक्ष की ठूँठ डालियो से बाहर निकलकर अरुण किशलय झाँकने लगे। अमलतास और गुलमोहर अपनी शुष्क डालों पर नई हरियाली आ जाने से जीवन्त हो उठे। सड़कों पर सवेरे टहलने वालों के शरीर का स्पर्श करके मन्द-मन्द समीर उनके तन-मन को गुदगुदाने लगी। उनमें नई भावनाओं का संचार भरने लगा। संवेदनशील नवयुवकों की सुप्त भावनाएँ नवाकुरित होने लगीं। ऐसे सुखद वातावरण में जैसे ही मैं टहलकर घर लौटा, शाश्वती ने ध्यान भंग करते हुए कहा—

"अजी सुनते हो ?"

"क्या मैं बहरा हूँ"—मैंने उत्तर देकर अपना कुर्ता उतारना शुरू कर दिया, "हाँ, हण्ड्रेड पर्सेण्ट, अब केवल अपने मतलब की सुनने लगे हो, मेरी बातों को अनसुना करने लगे हो। मैंने कई बार तुम्हें बतलाया कि आजकल मेरी आँखों में आँसू निकलते रहते हैं, मैं चाहती हूँ कि तुम मुझे किसी अच्छे आँख के डाक्टर को जल्दी दिखला दो।"

"चलो, आज ही सायंकाल चलो, पड़ोस के आधुनिक नेत्र चिकित्सालय के डाक्टर वर्मा को दिखला दें।"

"ठीक है, मैं सवेरे ही उनके पास चलूँगी, मैं तैयार हो रही हूँ।"

इसी समय गेट पर किसी ने जोर से कालबेल बजाई। दौड़कर बाहर जाकर देखा तो मेरी बड़ी बेटी ज्योति अपने छोटे बेटे सानू के साथ मुरादाबाद से लदी-फदी चली आ रही है। मैंने गेट खोला, वह थ्री-व्हीलर से नीचे उतरी, भाव-विह्वलता की मुद्रा में सामान पकड़कर उसका स्वागत करता हुआ उसे ड्राइंग रूम में ले आया, सीलिंग फैन पूरी स्पीड से आन कर दिया, शाश्वती को आवाज देकर वहीं बुला लिया। तुरन्त माँ-बेटी का अश्रुपूर्ण मिलन और बेटी का गिरता हुआ स्वास्थ्य देखकर मैं भी दु:खी हुआ। आगे-आगे शाश्वती छड़ी पकड़े हुए किचेन की ओर चलने लगीं, उस समय उसके दाहिने हाथ में छड़ी होने के बावजूद पूरे शरीर में आत्मविश्वास और स्थिरता की अजब झलक दिख रही थी। चेहरे पर युवतियों जैसी चमक, वाणी मे वात्सल्य की वर्षा, 'एकोऽहम् बहुस्याम्' की भावना से सराबोर शाश्वती आगे-आगे और ज्योति अपनी मम्मी के पीछे-पीछें किचेन में प्रवेश कर गई।

थोड़ी देर में एक मिली-जुली खुशबू किचेन से बाहर निकलकर मुझे सन्देश देने लगी कि कुछ स्वादिष्ट नाश्ता बनने जा रहा है। मैं अपनी दिनचर्या के अनुसार बाथरूम जाकर नहाने लगा, फिर कपड़े पहनकर जब बाहर निकला तो देखा कि डाइनिग टेबल पर घर का भुना हुआ काजू, मखाना, मेवा पड़ा हुआ हलवा और शाही-टोस्ट चार बड़ी प्लेटों में रखे अपनी सुगन्ध पूरे कमरे में फैला रहे हैं। ज्योति, सानू, शाश्वती और मैंने भरपेट नाश्ता किया, फिर मैं तो अपने अध्ययन कक्ष में आकर 'टाइम्स आफ इण्डिया' का 'दी स्पीकिंग ट्री' शीर्षक अपना प्रिय स्तम्भ पढ़ने लगा। शेष परिवार बेडरूम में जाकर अपनी थकान उतारने लगा।

प्रदेश की राजधानी में इस बार गर्मी का मौसम कुछ जल्दी ही अपनी दस्तक देने लगा था। अप्रैल के दूसरे सप्ताह की दोपहर में घर के बाहर निकलने का मन नहीं कर रहा था। मौसम विज्ञानियों की भविष्यवाणियाँ निरन्तर गलत साबित हो रही थीं, दिन का तापमान 37 डिग्री सेल्सियस चलने लगा था, मुझे सारे दिन इस बात का खेद रहा कि मैं नेत्र चिकित्सक डा. वर्मा को दिखलाने के लिए शाश्वती को नहीं ले जा सका, हालाँकि आधुनिक नेत्र चिकित्सालय मेरे आवास से मात्र एक

किलोमीटर दूर था, पर मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था जैसा कि मुझे शाश्वती के साथ एक लम्बी मंजिल तय करनी पड़ेगी। अतः पाँच बजते ही शाश्वती के शयनकक्ष मे जाकर मैं कहने लगा, "सुन रही हो ? क्या डा. वर्मा के पास शाम को भी नहीं चलोगी ?"

"क्यों नहीं चलूँगी ? बहुत दिनों के बाद आज अपनी बेटी के संग इत्मीनान के साथ गहरी नींद में मैं सो गई थी। अब उठती हूँ, तैयार हो रही हूँ, तब तक तुम तैयार हो जाओ, तुम्हें तैयार होने में हमेशा देर लगती है, कपड़े पहनते हो, शीशा देखते हो, फिर उन्हें उतारकर दूसरे कपड़े पहनते हो, कभी कहते हो कि शर्ट और पेण्ट का शेड नहीं मिल रहा है। तुम तैयार होकर गाड़ी निकालो। मेरा शीशा, कंघा, वर्तिका वाली हेयर आयल की शीशी, बिन्दी और लिपिस्टिक वाला छोटा चन्दन की लकड़ी का डिब्बा—सब चीजें यहीं मेरे पास बेड पर लाकर रख दो।"

"ठीक है, मैं तुमको सारी चीजें उठाकर यहीं दिए दे रहा हूँ" यह कहकर मैंने उनकी छोटी अलमारी खोलकर सारा सामान निकाल उनके सामने करीने से रख दिया और बेडरूम की मर्करी लाइट आन कर दी। दूसरी ओर मैं बाथरूम के शावर के नीचे जल्दी-जल्दी नहाकर धुले प्रेस किए कपड़े पहने, गाड़ी पोर्टिको से बाहर निकालकर गेट के सामने पार्क कर दी और बेडरूम में पहुँचकर बोला, "चलिए शाश्वती जी। मैं तैयार हूँ।" मैं आपको यह बताना भूल गया था कि मैं शाश्वती को अपने मूड के अनुसार अर्धांगिनी, मैडम, देवी जी, लक्ष्मी जी, मिसेज, श्रीमतीजी, सुकुल जी, जीवन-संगिनी, प्रिये, शुभे, शुभ्रे आदि-आदि मनचाही संज्ञाओं से सम्बोधित करने का आदी हो गया था, प्रत्येक सम्बोधन का गुप्तार्थ वे भली भाँति समझ जाती थीं और उसी के अनुसार मुझसे व्यवहार एवं आचरण करती थीं।

बेडरूम में तैयार होकर जब वे बिना छड़ी के बाहर चलने लगीं तो उनकी समस्त देहयष्टि पर प्रेमपूर्ण दृष्टि डालते हुए मैं सहसा बोल उठा, "अरे शाश्वती जी, अप्रैल मास के इस कष्टकारी तापक्रम में हल्के नीले रंग की कढ़ी हुई चिकन की साडी में ढका तुम्हारा गौरवर्ण का सुघड़ शरीर, विशाल सपाट मस्तक पर चन्द्राकार लाल बड़ी बिन्दी, ताम्बूल खाए पतले अरुणाभ अधर, चमकीले काले-काले केशों की सहज-सज्जा, सुन्दर गोल ग्रीवा—सभी विरोधी स्वरों में तुम्हारे गौरवमय अतीत की प्रच्छन्न घटनाओं को मुखरित करने का प्रयास करने में जुट गई हैं। अगर तुम बुरा न मानो तो मैं एक सड़क-छाप लखनवी शायर की एक पंक्ति तुम्हें सुना दूँ।"

"जो चाहो सुनाओ, पर अब जल्दी घर से निकल चलो।"

"खण्डहर बतलाते हैं कि इमारत बुलन्द थी"

यह सुनकर वे अर्धस्मित मुद्रा में अपनी अधरों-लगी पान की पीक अपने पीले रेशमी रूमाल से पोंछने लगीं। मैंने अपना आडियो कैसेट आदत के मुताबिक चालू

रखा, "मैडम, आज आप मुझे ही नहीं, अपनी बेटी को, आधुनिक नेत्र चिकित्सालय के प्रत्येक नेत्र रोगी को यहाँ तक अपने नेत्र चिकित्सक डा. वर्मा को भी प्रियदर्शनी लगेंगी।" इतना सुनते ही शाश्वती पूरी तरह से मुस्कराई, फिर दोबारा रूमाल से मुँह पोंछते हुए बोलीं, "किसी को उल्लू बनाना हो या उसकी झूठी चापलूसी करना हो तो ये दोनों गुर तुमसे सीख ले, चलो गेट के बाहर, मेरी छड़ी उठाकर मुझे दे दो।"

मैंने सानू से तुरन्त कहा, "जाओ बेटे, अपनी नानी की मंसूरी से आई नई छड़ी, जो बेड के पास कोने में खड़ी है ले आओ।" सानू आनन-फानन छड़ी उठा और अपनी नानी के हाथों में उसे थमाते हुए प्रश्न करने लगा, "नानी जी, नानी जी, आप मेरे बाबा की तरह से छड़ी पकड़कर कब से चलने लगी हैं ? पिछली गर्मी की छुट्टियों में मैं जब लखनऊ आया था तब तो आप अपने आप चलती-फिरती थीं।" "सानू, तुम छोटे थे, इसलिए तुमको नहीं पता कि वर्ष 1992 के सितम्बर मास में जब मैं बलरामपुर अस्पताल के प्राइवेट वार्ड न. चार में शरीर के निर्जलीकरण का उपचार कराने हेतु भर्ती हुई थी, तब रात की ड्यूटी में तुम्हारी बड़ी मामी की उपस्थिति में केरल निवासिनी एक काली नर्स कैल्सियम सैण्डोज के इन्जेक्शन के साथ कोई और इन्जेक्शन्न मिलाकर मेरे कूल्हे पर लगा रही थी, तो काउण्टर हो जाने से सारी दवा बाहर निकलकर दाहिने पैर पर टपक पड़ी, मुझे लगा जैसे मेरे नीचे के पैर में किसी ने आग लगा दी, मैं जोर से चिल्ला उठी, नर्स जल्दी से अपनी सुई लेकर वार्ड से बाहर भाग गई, अँधेरे में तुम्हारी बड़ी मामी उसे ठीक से पहचान नही सकीं। तीन-चार दिनों में पैर में बड़े-बड़े फफोले निकल आए, जब वहाँ के सर्जन को मैंने अपना पैर दिखलाया तो उसने कहा "आपके पैर में ब्लिस्टर्स हो गए है।" यह कहकर उसने सिरिंज द्वारा हरेक फफोले में भरा जहरीला पानी बाहर निकाला, फिर दूसरे दिन सड़ी हुई खाल काटकर पैर में ड्रेसिंग कर दी, पैर की खाल फिर भी सड़ने लगी, उसमें लगातार जलन होने लगी। एक दिन मेरे फेमिली डा. हलीम मुझे अस्पताल में देखने आए, उन्होंने मेरा पैर देखा और कहने लगे "भाभी जी, आपको गैंगरीन हो रही है, इसका तुरन्त आपरेशन करवा डालिए, वर्ना आधा पैर काट देना पड़ेगा।" यह सुनकर मेरे होश उड़ गए। मैं तुम्हारे नाना जी से कहने लगी, " 'तुम लाए थे मेरा इलाज करवाने, पर यहाँ की नर्सो ने तो मेरा पैर ही सत्यानाश कर दिया, अब तो मैं सारी जिन्दगी एक पैर के सहारे ही चल पाऊँगी' " यह कहकर शाश्वती की आँखों में आँसू डबडबा आए, वे कार में बैठ गईं और सानू उनकी बायीं ओर जम गया। ड्राइवर गाड़ी ड्राइव करने लगा, गर्म हवा के हल्के-हल्के झोके अब भी मेरे ऊपर से शरीर को गर्म कर रहे थे। इसी बीच सानू ने पूछा, "नानी फिर क्या हुआ ?"

"फिर क्या हुआ, चौबे गए थे छब्बे होने, पर रह गए दुबे। यह बलरामपुर

अस्पताल राजधानी का निकृष्ट अस्पताल हो रहा है, किसी जमाने में इसका नाम पूरे प्रदेश में सम्मान के साथ लिया जाता था। यहाँ के अधिकांश डा. अपने राजनीतिक आकाओं के सहारे वर्षों से जमे हुए हैं, दोनों समय प्रातः सायं धड़ल्ले से प्राइवेट प्रैक्टिस करते है और जरूरत पड़ने पर मन्त्री या सचिव के घर जाकर हाजिरी बजा आते हैं। गरीबों की सुनने वाला यहाँ कोई नहीं है, यहाँ के स्वीपर, रोगी के परिचारकों से जब दस रुपए पेशगी वसूल लेंगे तब उसे बेड पैन या यूरीन-पाट लाकर देंगे। सारी दवाइयाँ बाजार से रोगी को स्वयं खरीदवाना पड़ती हैं, लाखों रुपए मूल्य की दवाएँ विधायकों और वी.आई.पी. लोगों के घरों पर डाक्टर स्वयं दे आते हैं। ऐसे चिकित्सालयों को बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए जो जनता-जनार्दन का शोषण करते हो। मैं एक महीना लगातार यहाँ पर लो ब्लडप्रेशर, निर्जलीकरण और पेट दर्द के कष्टों के कारण प्रायवेट वार्ड में भर्ती रही, पर यहाँ के एक नामीगिरामी चिकित्सक अपनी योग्यता का गुणगान करने वाले डा. शुक्ला मुझे अच्छा नहीं कर पाए और एक दिन रात में तुम्हारे नानाजी को अकेले में बुलाकर कहने लगे, ''माता जी का दाहिना गुर्दा बेकार हो गया है, आप इन्हें तुरन्त संजय गाँधी पी.जी.आई. ले जाएँ, मै वहाँ की विशिष्ट चिकित्सा एवं समुचित देखभाल के लिए इनका केस रेफर किए दे रहा हूँ। कैथेटर और ग्लूकोज़ की ड्रिप लगवाकर अस्पताल की एम्बुलेन्स से कल प्रातः भेजवा दूँगा।''

''तुम्हारे दोनों मामा मामियों ने अगले दिन मुझे नेफ्रोलोजी विभाग में भर्ती करा दिया। गुर्दा विशेषज्ञ डा. खेर की उपयुक्त चिकित्सा से मैं दस दिनों में एक बार फिर ठीक हो गई, पर पैर ज्यों का त्यों बना रहा, हालाँकि उसकी सड़ी हुई खाल काटकर निकाल दी गई थी और हाइड्रोजन पर आक्साइड व सफेद सिरके द्वारा जख्मों की दैनिक सफाई होती, सोफ्रामाइसिन मरहम लगाया जाता, सीबाजाल पावडर की डस्टिंग की जाती। दो महीनों में सारे जख्म तो जैसे-तैसे भर गए, पर पैर इतना पतला ओर कमजोर पड़ गया कि अब मेरा खड़ा होना, जीना चढ़ना, रास्ते में सीधा होकर चलना सब कुछ मेरे लिए मुश्किल हो गया है। तभी से तुम्हारे नानाजी ने मेरे लिए एक बांस की मजबूत छड़ी गंगोत्री से और दूसरी लकड़ी की सुन्दर नक्काशीदार छड़ी मसूरी से मँगवा दी है। मैं अपनी छड़ियों के सहारे अपने सारे काम स्वयं करने की कोशिश करती हूँ।

''मैंने इतनी लम्बी रामायण तुम्हें इसलिए सुना दी कि तुम अपने बाबा से मेरी तुलना नहीं कर सकते। तुम्हारे बाबा पचासी वर्ष के हट्टे-कट्टे जवान हैं, उनके पेरो में केवल गठियाबाई है, जब तुम्हारी नानी इस समय तेहत्तर वर्ष की आयु में पूर्णतया अशक्त और लँगड़ी हो गई है।''

जब तक सानू की वाचालता और शाश्वती के दुःख दर्द की कहानी का अन्त

हुआ, मैं नेत्र चिकित्सालय पहुँच गया। सानू की सहायता से शाश्वती का हाथ मजबूती से थाम कर आहिस्ता-आहिस्ता डा. वर्मा के कमरे में उन्हें ले गया, पर्चा बनवाकर उन्हीं की टेबल के सामने रखी एक खाली कुर्सी पर बिठला दिया।

साधू को अपनी धूनी पर, पुलिस को अपनी वर्दी पर, रेलवे-गार्ड को अपनी सीटी पर, जिलाधिकारी के अर्दली को अपनी चपरास पर जितना नाज़ होता है, उतना ही नाज़ किसी डा. को अपने गले में लटके आले और सफेद कोट पर तथा सामने खड़े मरीजों की अस्त-व्यस्त भीड़ पर होता है।

जब मैंने डा. वर्मा को शाश्वती की आँखें दिखलाने हेतु उनके द्वारा दिए गए सायंकालीन 'अप्वाइण्टमेण्ट' का स्मरण कराया, तो ऐसा लगा जैसे कि विष्णु भगवान की तरह क्षीर-सागर से अर्ध सुषुप्तावस्था में आँखें खोलकर वे बाहर निकल रहे है। उन्होंने आदर के साथ अपने पास रखी एक टूटी कुर्सी पर शाश्वती को बिठला दिया और अपने कम्पाउण्डर से आइट्रोपीन की दो-दो बूँदें दोनों आँखों में डलवाकर कुछ देर दवा का वांछित प्रभाव उत्पन्न हो जाने हेतु प्रतीक्षा करने को कहा। एक घण्टा भीड़ भरे कमरे की उमस में बैठे-बैठे बुरी तरह हैरान होकर श्रीमती जी ने मुझसे घर लौट चलने के लिए कहा, पर डा. वर्मा ने शायद उनका अभिप्राय समझकर उन्हें देखने के लिए अपने बिल्कुल पास रखे स्टील के स्टूल पर बुलाकर बिठला लिया, उनका पर्चा निकलवाकर टेस्टिंग ग्लासेज़ दोनों आँखों में बदल-बदलकर लगाया और जो ग्लासेज़ उनके लिए उपयुक्त लगे, उनका नम्बर दवा के पर्चे पर नोट कर दिया। फिर दोनों आँखों का टेंशन नापने के लिए पास रखे स्टेचर पर हाथों से सहारा देकर लिटा दिया। टेंशन मापक यन्त्र से टेंशन नाप कर उसे भी पर्चे पर लिख लिया। एक सेन्चुरी बनाने के बाद जीते हुए बेट्समैन की तरह अपनी पुरानी रिवाल्विंग चेयर पर बैठ कर उसी पर्चे पर आँख में दोनों समय डालने के लिए एक आई-ड्राप और रात में लगाने के लिए एक 'आइण्टमेण्ट' लिखकर एक महीने के बाद दुबारा आने के लिए कहकर नमस्कार कर लिया।

मैं पत्नी-भक्त पति के सारे दायित्वों का निर्वाह करता हुआ शाश्वती को स्टेचर से नीचे सहारे से उतारकर छड़ी और सानू की सहायता से धीरे-धीरे चलाते हुए कमरे के बाहर पोर्टिको में खड़ी कार तक ले गया, उन्हें पिछली सीट पर आराम से बिठलाकर वापस अपने आवास पर ले आया। हार्न और कालबेल बजते ही ज्योति बाहर के गेट पर आ पहुँची, मुस्कराकर अपनी माँ का स्वागत किया और अन्दर ले जाकर रूहअफज़ा का शीतल पेय पिलाकर घर के कपड़े पहना दिए। सानू कम पढ़े-लिखे नेता की रिकार्डेड स्पीच की तरह आधुनिक नेत्र चिकित्सालय की दुर्व्यवस्था का सुन्दर खाका खींचता रहा, और मैं तथा शाश्वती कूलर के सामने पीठ किए हुए चुपचाप उसकी चपलतापूर्ण प्रतिक्रियाएँ मुरादाबादी लहज़े में सुनते रहे, पर एक दूसरे से कोई

कुछ बोल नहीं रहा था।

अब मैं न जाने यह क्यों सोचने लगा कि क्या वृद्धावस्था में अन्य पत्नियाँ भी शाश्वती की भाँति अल्प-भाषिणी और अपने पतियों के प्रति इतनी मिताक्षरी हो जाती होंगी ? जब उन्हें कोई अपना काम पड़ता है तो अनुरागी मुद्रा में दो शब्द बोल देंगी ? किन्तु जब पतियों का उनसे काम पड़ेगा तो वे क्रिया-विहीन स्टेचू की भाँति वाणी-विहीन हो जाएँगी। आखिर इस प्रकार नारी की मौन-धारणा के पीछे क्या रहस्य है ? क्या इस तथ्य के पीछे नारी की परिपक्व आयु से सम्बद्ध कुछ मनोवैज्ञानिक आधार है अथवा पति स्वयं शनैः-शनैः घनिष्ठता प्राप्त कर लेने के बाद शनैः-शनैः उपेक्षा का पात्र होने लगता है ? नारी मनोविज्ञान के रोचक अध्ययन में निष्णात पाठक जन कृपया इस बिन्दु पर पाठक समाज का मार्गदर्शन करें।

तीसरा अनुच्छेद

मेरी गर्मी की प्रातःकाल स्वर्ण-जयन्ती स्मृति-विहार पार्क में टहलने से शुरू होती, फिर अखबार, दूध, मक्खन, ब्रेड और प्रिया गोल्ड के बटर-बाइट बिस्कुटों के पैकेट हाथ मे लिये घर में नवीन स्फूर्ति के साथ प्रवेश करता। नहा-धोकर शाश्वती के साथ मजे-मजे में नाश्ता करता और रास्ते में मार्निंग-वाकर्स संघ के अध्यक्ष जो एक रिटायर्ड कर्नल थे, की ऊल-जलूल हास्यास्पद बातों को उन्हें सुनाता। पत्नी अपनी पूजा अर्चना मे और मैं हिन्दी-अंग्रेजी के राजधानी के प्रतिष्ठित दैनिकों को पढ़ने बैठ जाता—सबसे पहले उनके सम्पादकीय अंश, जिससे मैं अनुमान लगाता कि आजकल की गतिविधियों के प्रति सम्पादक महोदय कितने सजग और पूर्वाग्रहपूर्ण हैं, अपनी धारणाओं का विश्लेषण तर्क की कसौटी पर वे किस सीमा तक करने का प्रयास करते हैं। शाश्वती मुझसे पहले ही हिन्दी के अखबार में लखनऊ, उत्तर प्रदेश अथवा देश में घटी रेल-दुघर्टनाओं, मार्ग-दुर्घटनाओं, नदियों में नौकासीन यात्रियों के डूब जाने के समाचार, अमिताभ बच्चन की लखनऊ में नई फिल्में, साड़ियों के बम्पर सेल की प्रदर्शनी और अपना दैनिक राशिफल, अपने पास मौजूद शेयर-सर्टिफिकेटों वाली कम्पनियों के शेयर भाव आदि देख डालतीं।

इस प्रकार अप्रैल का अन्तिम सप्ताह भी समाप्त हो गया और छोटा बेटा विवेक, उसकी पत्नी अर्चना, पुत्री सौम्या और पुत्र श्रेयस जगन्नाथपुरी की लम्बी अवधि वाली धार्मिक और पर्यटक—दोनों प्रकार की यात्राएँ सम्पन्न करके लखनऊ वापस आ गए।

कई दिनों तक घर का वातावरण पारिवारिक जनों की उपस्थिति और बच्चों के खेल-कूद से जीवन्त बना रहा। पड़ोसी, मित्र, सम्बन्धी—सभी एक-एक करके आते, जगन्नाथपुरी का वर्णन सुनते, शाश्वती के सुधरते स्वास्थ्य पर प्रसन्नता प्रकट करते और फिर पुरी का प्रसाद प्राप्त करके अपने घर की राह पकड़ते। कुछ दिनों बाद शाश्वती, ज्योति और सानू को लेकर बड़े बेटे के पास पुराने घर अशर्फाबाद चली गई। मेरे इस कथन से शायद आप असहमत नहीं होंगे कि इस देश का हर एक व्यक्ति दूसरो के रोगों को ठीक करने के लिए अनेक अनुभूत औषधियों के नुस्खे अपने मस्तिष्क मे सुरक्षित रखता है। आप घर से बाहर निकलते समय अपने मित्रों से केवल इस बात की चर्चा शुरू कर दें कि आपको खाँसी आने लगी है, बस आप उनसे आयुर्वेदिक, यूनानी, होमियोपैथिक, ऐलोपैथिक औषधियों की फेहरिस्त सुनने लगेंगे। उनमें से कुछ तो एक्यूप्रेशर और कुछ एक्यूपंचर की विधि आपको समझाने लगेंगे। कुछ वृद्ध जन शिवाम्बु चिकित्सा (स्वमूत्र उपचार) का पौराणिक महत्त्व समझाकर तत्काल मोरार जी भाई की तरह स्वमूत्रपान शुरू कर देने की दुर्लभ सलाह दे डालेंगे। घर लौटने पर आप बिल्कुल भूल जाएँगे कि आपके किस मित्र ने आपको कौन सी औषधि सेवन करने का अयाचित परामर्श दिया था।

इसी सामाजिक दुष्प्रवृत्ति का शिकार हुई मेरी पत्नी इन दिनों मुझसे नाराज रहने लगीं। पहले उन्हें दोनों कूल्हों की पेलविक बोन्स में भयंकर पीड़ा शुरू हुई, उठना-बैठना, चलना-फिरना सब कुछ बन्द। दो आदमी हाथ पकड़कर उठाते, ट्वायलेट ले जाते और फिर उसी तरह पकड़कर वापस बेडरूम ले आते। सेंक, मालिश, पीड़ा-निवारक मरहम और खाने की दवा से जब आराम न मिल सका तो फिर एक जनरल सर्जन को मैंने घर बुलाकर शाश्वती का परीक्षण कराया, जिन्होंने अस्थियो के क्षरण (आस्टियो पोरोसिस) रोग का निदान किया। अगले दिन अस्थि रोग विशेषज्ञ डा. करौली को बुलाकर कूल्हे की दर्द का परीक्षण कराया, घर पर सचल एक्स-रे मशीन मँगवाकर पेलविक बोन्स का एक्स-रे कराकर उन्होंने मेरे कान में धीमे स्वर में कहा, "इन्हें बोन-टी.बी. हो रही है, प्लास्टर चढ़ेगा।" गर्मी के मौसम में एक वृद्ध दुर्बल महिला को काफी समय तक बिस्तर पर लेटना पड़ेगा। इस चिन्ता से विचलित और सुहृदजनों के अमूल्य परामर्श के कारण मैं एक सफेदपोश डाकू जो अपने को राजधानी का बहुत बड़ा होमियोपैथ प्रदर्शित करता है, के चक्कर में फँसकर श्रीमती जी को उसे दिखला दिया। उसकी क्लीनिक का नाम था 'स्वर्ण क्लीनिक' और उसका नाम था रजत कुमार। वह स्वर्ण कमाने का महारथी था। महँगी-महँगी होमियोपैथिक की कम्पाउण्ड औषधियाँ, जो कमीशन देने वाली निर्दिष्टि फार्मेसी से ही खरीदी जाएँ, उसने लिख दीं, महीने भर उसकी दवा चलती रहीं और मुझे अमीनाबाद की गर्म सड़कों पर गर्मी की ठीक दोपहर में पैदल चलवाती रहीं। रोगी को रोग कोई भी,

रजत कुमार उसका रक्तचाप नापते, वजन लेते, हीमोग्लोबिन टेस्ट कराते, एक्स-रे करवाते, चार-पाँच तरह के बाजारू होमियोपैथिक शर्बत लिख देते और होमियोपैथी की दवाओं का प्रचलित नाम अपने मन से बदलकर उसका नया नाम लिख देते ताकि शिक्षित रोगी दवा का नाम न जान सके। इस प्रकार समाज के सम्पन्न रोगियों की जेब काटने वाले डा. रजत कुमार के चंगुल से मैंने शाश्वती को एक दिन छुड़ा लिया और अपने एक परिचित प्रधानाचार्य डा. त्रिपाठी जो होमियोपैथी की प्रैक्टिस काफी समय से परोपकार की भावना से कर रहे थे अपने पुराने घर बुला लाया, वे अपने वरिष्ठ होमियोपैथ डा. शुक्ल को भी चिकित्सकीय परामर्श हेतु अपने साथ ले आए। उन्होंने धैर्य के साथ सम्यक् निदान करने के लिए शाश्वती की तकलीफों का लम्बा इतिहास सुना। कुछ देर आपस में गम्भीर विचार विमर्श किया फिर बैरायटा कार्ब उ. शक्ति की दवा लिख दी और अपनी ही डिस्पेन्सरी से उसे बिना कुछ मूल्य लिए मेरे घर भिजवा दी। उसी दिन से श्रीमती जी उन होमियोपैथों की युगलबन्दी सुनकर मानसिक रूप से इतनी प्रभावित हो गई कि उनकी दवा खाने से एक सप्ताह मे उनके कूल्हे का भयंकर दर्द उड़नछू हो गया। आप मानें, न मानें, बेहद खुशी और कृतज्ञता की भावना से ओत-प्रोत हो वे एक दिन एक किलो दूध की ताजी बर्फी, वह भी एक पुरानी मशहूर दुकान से खरीद कर डा. त्रिपाठी के क्लीनिक पर पहुँच गई और अपने दोनों डाक्टरों और वहाँ बैठे अन्य रोगियों का मुँह मीठा कर दिया।

शारीरिक कष्टों की एक लम्बी शृंखला समाप्त हुई। उत्तम स्वास्थ्य तो तन-मन प्रसन्न। जुलाई, अगस्त और सितम्बर 1999 यानी बरसाती महीने सुख चैन से पुराने मकान की पुरानी स्मृतियों के साथ न जाने कब बीत गए। निश्चिन्तता और खुशी की नई लहर में शाश्वती की अनुमति से सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में मैं जयपुर-आगरा मार्ग पर स्थित नवनीत प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान केन्द्र बस्सी चला गया, जहाँ उनकी भाभी जी अपने पुराने गठिया रोग का उपवास, फलाहार, ठण्डी व गर्म मिट्टी की पट्टियों के सेंक और वाष्प-स्नान आदि के प्राकृतिक उपचार करके ठीक हो रही थीं। सभी चिकित्सा पद्धतियों के निष्प्रभावी सिद्ध हो जाने पर रोगी के कष्टों का स्थायी निवारण कर देने में प्राकृतिक चिकित्सा कभी-कभी अपना चमत्कार दिखला देती है, रोगी निरन्तर धैर्य और दृढ़ विश्वास के साथ अपनी चिकित्सा लगातार कराता रहे, बीच में ही छोड़ न दे। दो दिन उस आश्रम में ठहरकर जयपुर के ऐतिहासिक और धार्मिक स्थानों को देखता हुआ शाश्वती के लिए आकर्षक डिजाइन वाली जयपुरी रजाई, बंजारा फैशन की दो रेशमी साड़ियाँ लेकर लखनऊ लौट आया। पुराने घर आकर मैंने उनकी वस्तुएँ उन्हें एक-एक करके भेंट कर दीं, अपनी साड़ियों को देखकर बहुत दिनों के बाद वे मुक्त हृदय से मुस्करा दीं और मुझे धन्यवाद देती हुई मेरी गिफ्ट अपनी अलमारी में बन्द करके रख दी।

चौथा अनुच्छेद

अक्टूबर का महीना शुरू हो गया। मैं निश्चिन्तता और मस्ती की मुद्रा में अपनी पेंशन की धनराशि स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक भोजन, फलाहार और वांछित वस्तुओं की आपूर्ति में व्यय कर रहा था, क्योंकि शाश्वती इन दिनों अपने स्वस्थ तन और प्रसन्न मन से मेरी हर एक प्रस्तावित योजना को स्वीकार कर लेती थीं। एक दिन उन्होंने मुझसे मजाक में कहा, "तुम अपने प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स नई दिल्ली के पास जाकर पिछले वर्ष की रायल्टी क्यों नहीं ले आते, क्या तुम्हें यह पता नही है कि आने वाली इक्कीस तारीख को तुम्हारे श्रेयस का मुण्डन संस्कार धूमधाम से मनाया जाएगा। मैं आठ अक्टूबर को इन्दिरा नगर चल दूँगी।"

"ठीक है, मैं तुम्हारे हरेक सुझाव से सहमत हूँ। मैं दिल्ली जाकर दो दिनो मे लौट आऊँगा और आठ अक्टूबर को तुम्हें नई मारुति वैन से इन्दिरा नगर को जयपुरी साड़ी पहनाकर साथ ले चलूँगा।" मैं फटाफट दिल्ली का अपना कार्यक्रम निपटाकर आठ अक्टूबर के अशुभ दिन—अशुभ इसलिए कि वह दिन मेरी पत्नी का अशर्फाबाद स्थित अपने ससुराली स्थान से अपने दाम्पत्य के सत्तावनवे वर्ष में अन्तिम प्रस्थान करने का मनहूस दिन था, मैं उन्हें इन्दिरा नगर चलने के लिए स्वयं तैयार करने लगा। इसी घर में वह कभी सजी-धजी सुन्दर नव-वधू बनकर बजते बैण्ड बाजे के साथ आई थीं, सारे जीवन अपने घरेलू संघर्षों में यही अभिलाषा व्यक्त करती रही कि इसी घर से उनकी शव-यात्रा निकलेगी, आज इसी घर को हमेशा के लिए छोडकर वे चुपचाप अन्तिम यात्रा की ओर यहीं से अग्रसर हो रही हैं। वह नहीं जानती थी कि इस घर से उनकी यह ऐतिहासिक यात्रा सिद्ध होगी, अब दुबारा न तो इस घर को वे देख सकेंगी और न चिरपरिचित अपनी जीवन-संगिनी इन पुरानी गलियो को, जिनमें चलते-चलते उन्होंने गृहस्थ जीवन के कितने चढ़ाव-उतार देखे थे, कितने हर्ष और विषाद के सन्देश सुने थे, गोद में लिए हुए अपने नन्हे-नन्हे बच्चों के कितने रुदन और चीत्कार सुने थे, सीतापुर से अपनी माता-पिता के लखनऊ आने और फिर वापस जाने के क्षणों में कितने गर्म ऑसू बहाए थे। अपने बीमार बच्चो के अच्छा हो जाने पर हनुमान जी का प्रसाद चढ़ाने के लिए कितने चक्कर लगाए थे।

अब वे अपने कमरे की अलमारी में रखे गए और अच्छी तरह तहाए वस्त्रो को न तो दुबारा देख सकेंगी और न कभी उन्हें पहनकर बाहर निकल सकेंगी। अपनी शृंगार सामग्री का छोटा डिब्बा, सुई-धागा और छोटे-बड़े बटनों से भरी प्लास्टिक की गोल पीली डिबिया, वर्ष 99 के रक्षा बन्धन के अवसर पर परिस्थितिवश अप्रयुक्त राखी-गजरे का छोटा बाक्स, अर्ध-प्रयुक्त केयो-कार्पिन हेयर आयल की शीशी, जयपुर

से लाई हुई सुन्दर बिन्दियों के पत्ते अब वे दुबारा अपने हाथों से छू भी नहीं सकेंगी, इस धरती पर रहने वाला आदमी अपनी शीघ्र आ रही मौत के विषय में कितना अनजान बना रहता है—इस बात का अनुमान कोई भी नहीं कर सकता।

मैंने रिक्शा लाकर घर के बड़े दरवाजे पर खड़ा कर दिया। वह रिक्शे पर अपनी गगोत्री वाली छड़ी पकड़कर बैठ गई, रिक्शा चल पड़ा, वे मुहल्ले में रहने वाले ओर रास्ते में मिलते हुए नातियों, पोतों, भतीजों, भानजों, देवरों और अपनी पुरानी दुकानों के दुकानदारों का अभिवादन स्वीकार करती और उन्हें आशीष बॉटती रिक्शे पर मेरा कन्धा पकड़े केवल आगे देखते बढ़ी जा रही थीं, वे मुहल्ला छोड़ रही थीं, पुराना शहर छोड़ रही थीं, पुराने लोग छोड़ रही थीं, अपने पति का जन्म-स्थान ही नही अपितु अपनी पुरानी ड्योढ़ी भी छोड़ते हुए और किसी गम्भीर चिन्तन में खोई हुई मेरे साथ रिक्शे पर बैठी हुई, पर मुझसे बहुत दूर किसी अज्ञात अन्तरिक्ष में उड़ती हुई धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थीं। सड़क पर रिक्शा आ गया उससे उतरकर वे मारुति वेन में बैठ गई। रिक्शा चालक मुल्ला जी ने उनका सामान रख दिया, एक एरिस्ट्रोक्रेट ब्रीफकेस, एक हैण्ड बैग। फिर हाथ जोड़कर पूछने लगा, 'माताजी' अब आप अशर्फाबाद कब लौटेंगी ?

"होली तक वहीं रहेंगे। होली करके यहीं लौट आऊँगी, गर्मियों में मुझे यहॉ आराम मिलता है।" यह कहकर उन्होंने ड्राइवर से कहा, "चलो बेटे देर हो रही है।"

हम दोनों प्रसन्न मुद्रा में आधा घण्टे में इन्दिरा नगर पहुँच गए, घर के गेट पर अर्चना ने अपनी माता जी का खुश होकर अभिनन्दन किया, चरण स्पर्श करके उनका सामान उठाकर व उन्हें पकड़कर उनके प्रिय विश्राम कक्ष में ले जाकर बिठला दिया। सौम्या और श्रेयस जिनकी अवस्था क्रमशः छः और तीन वर्ष की रही होगी, दोडते हुए आकर दादी अम्मा की गोद में विराजमान होकर संयुक्त स्वर में पूछने लगे, "दादी तुम कल कहाँ गई थीं, मेरे लिए टाफी लाईं ? मम्मी मुझे मारती हैं।"

ममता, वात्सल्य, स्नेह की प्रचुरता से सूनेपन में सॉस लेने वाले परिवार का वातावरण जीवन्त हो उठा। दादी आई दादी आई के शब्दों से बेडरूम गूँज उठा। चाय नाश्ता, खाना पानी, शय्या पर विश्राम यानी नए स्थान पर पुरानी दिनचर्या लौट आई। स्थान परिवर्तन की प्रक्रिया में व्यक्ति अपने में नवीनता क्यों अनुभव करने लगता है ? उसकी अलसायी ज़िन्दगी में दोबारा ताज़गी क्यों आ जाती है ? मेरी श्रीमती अपने जीवन के चौहत्तरवें वर्ष में नूतन आशाओं को सँजोकर भावी खुशियो से अनुप्राणित होकर अपनी संघर्षमयी पुरानी बीमारी को भूल गईं, नई शक्ति, नई गति, नई चेतना, नए उत्साह और नए संकल्पों के साथ वे श्रेयस के मुण्डन संस्कार के बहुआयामी समारोह की तैयारी में प्राणपण से जुट गईं।

एक दिन रात में भोजन के बाद बहुत प्यार से बुलाकर मुझे अपने पास अपने

बेड पर बिठलाया। मेरी ओर मधुर-मधुर दृष्टि से कुछ क्षणों तक ताकती रहीं। युवा अवस्था वाली मुस्कान वापस लाते हुए मेरे दाहिने कन्धे पर अपना बायाँ हाथ रखते हुए बोलीं, "देखो, मेरे तुम्हारे शरीर से, श्रेयस हमारा आखिरी पोता है, चार पोतियो ओर पाँच नातियों के बीच केवल दो ही पोते भगवान ने हमें आखिरी बुढ़ापे में दिए हे, एक पोता तेरह वर्ष का और दूसरा तीन वर्ष का हो रहा है, प्यार में मैं उन्हे भोलू और भोंदू कहकर पुकारती रही हूँ। भोंदू को तुम भले कैप्टन कुण्ड्रो कहो, पर मे उसे ज्यों ही भोंदू कहकर पुकारती हूँ, वह मेरी ओर दौड़ता हुआ मेरी गोद मे आकर तुरन्त बैठ जाता है और बोलना शुरू कर देता है, "दादी दादी भूख लगी, खा लो बेटा मूँगफली" उस समय उसके भोलेपन की मुस्कराहट में मैं अपने विवेक के बचपन के खोए हुए दिनों में झाँकने लग जाती हूँ। ठीक उसी स्टाइल की हँसी, उसी तरह की चितवन। कुछ पलों के लिए मैं विस्मृत हो जाती हूँ, कुछ इतना आत्मविभोर हो उठती हूँ कि अपना रोग दोख सब भूलकर बुढ़ापे की जिन्दगी जीने के लिए नई प्राण-शक्ति पा जाती हूँ।"

"तो मैं क्या करूँ ? मुझे अपनी तिलस्मी बातें क्यों सुना रही हो ? मुझे कौन सी पहेली बुझाना चाहती हो ?" मैने कौतूहलपूर्ण नज़रों से शाश्वती के दाहिने कपोल पर पड़ रहे छोटे गड्ढे को देखा। वे भी मेरी गुलाबी नज़रों की रूमानियत को भाँप गई, फिर धीमे स्वर में बोलीं, "जरा हटकर बैठो, कोई देख लेगा। नाती पोते वाले हो गए हो, पर बच्चों के सामने मेरे पास ठीक से बैठने का शऊर भी तुममें नही रह गया है।"

"तो मैं कौन सा तुम्हारा शहद चाटे ले रहा हूँ ? मैं तो किशमिशनुमा तुम्हारे सूखे गालों में महकती हुई विकोटरमिरिक वैनिशिंग क्रीम की खुशबू सूँघ रहा था।" मैने अनुरागपूर्ण स्वरों में श्रीमती जी के दाहिने कान में चुपके से कह दिया।

"बूढ़े हो गए, चाँद के आधे बाल झड़ गए, नकली बत्तीसी मुँह में लग गई, मेरे दाँतों को देखो, डली तम्बाकू खाते रहने से अभी तक टनाटन रखे हैं, केवल एक दाँत घिसकर छोटा हो गया है, जरा अपनी बिगड़ी हुई शक्ल आईने में सामने खडे होकर देखो, बिल्कुल बूढ़े बन्दर लगने लगे हो। इस उम्र में भी तुम्हारा मन नही भरा, ऐसा दिखलाते हो जैसे आज ही मेरी गाँठ तुम्हारे साथ बाँधी गई हो। जरा बडे बच्चों का ख्याल करो, बहू का तो लिहाज रखा करो, उम्र के तकाजे को समझो। ये लोग हमें तुम्हें देखकर हँसेंगे, न जाने क्या-क्या कहेंगे ? यह तो सोचो।"

"अच्छा तो अब मेरे मतलब की बात सुनो।" अनुरागात्मक मुद्रा में अब तक खोई हुई श्रीमती जी मुझसे थोड़ा हटकर बैठ गईं, अपने हाथ में मेरा लैटर पैड और डाट पेन पकड़े हुए बोलीं, "देखो, मुझे आज ही बिना किसी अगर मगर के बीस हजार रुपए अपने एकाउण्ट से निकालकर मेरे हाथों में दे दो, मेरे साथ बाजार चलो

या चाहो तो अकेले ही चले जाओ। मुण्डन का जो सामान मैंने अपनी सूची में लिख रखा है, वह सब अमीनाबाद और चौक जाकर तुम ले आओ। कुछ पैसे मैं भी दे दूँगी। दस-पन्द्रह ग्राम के सोने के बने पतले-पतले सुन्दर कड़े जो श्रेयस मुण्डन में पहनेगा, खुनखुन जी की पुरानी दुकान से खरीद लो, यह नाप का कड़ा मुझसे ले लो इस नाप के ही कड़े मुझे मिलने चाहिए, न छोटे न बड़े। दो सुपीरियर क्वालिटी के चिकन के कामदार श्रेयस की नाप के सफेद कुर्ते जो घर में बासन्ती रंग में मैं स्वय रंग लूँगी, एक पीले रंग की फेल्ट कैप या स्पोर्ट्समैन कैप, एक बच्चों के पहनने वाली अच्छे कपड़े की रेडीमेड धोती, अपनी लड़कियों और बहनों को गिफ्ट में दिए जाने के लिए दस साड़ियाँ, कोई भी साड़ी चार-पाँच सौ रुपए के मूल्य से कम न हो, साड़ियाँ किसी बड़ी दुकान से खरीदना, चाहे द्विवेदी साड़ी भण्डार हो, चाहे माडर्न सिल्क हाउस हो, जहाँ से भी साड़ियाँ खरीदो लेटेस्ट डिजाइन की यानी फैशनेबुल हो। मेरा आशय समझ गए न ? आधा किलो ड्राई फ्रूट्स जिनमें कम से कम पाँच प्रकार के मेवे हों, एक किलो छोटे बताशे और ढाई सौ ग्राम बड़े-बड़े मखाने।" "बस।"

"हाँ, बस, मगर कल शाम तक ये सारी वस्तुएँ मेरे हाथों में आ जानी चाहिए, आधा अधूरा सामान हमेशा की तरह न लाइएगा, जो भी सामान जहाँ से खरीदिएगा, उसका कैशमीमो जरूर ले लीजिएगा और सामान पसन्द न होने पर बदल दिया जाएगा। यह शर्त भी दुकानदार से उसी कैशमीमो पर लिखवा दीजिएगा। घर के नौकर चन्दू को साथ लेते जाइए, सारा सामान एक बड़े थैले में रखते हुए अन्त में थैला उसकी जिम्मेदारी पर सौंप दीजिएगा, श्रेयस के कड़े अपने आफिस बैग में रखिएगा। मेरी हरेक बात का ध्यान रखिएगा बस।"

"आप जैसा कहती हैं—वैसा ही करूँगा।" मैं वहाँ से उठकर बाहर के कमरे में चला गया।

पाँचवाँ अनुच्छेद

दस अक्टूबर, 1999, दिन रविवार, समय प्रातः छः बजे।

श्रीमती जी के नेतृत्व में मैं, विवेक, अर्चना, सौम्या और श्रेयस तथा बड़े बेटे का परिवार टाटा सूमो में बैठकर उन्नाव जनपद के बारा सगवर से कुछ दूर गंगा के बायें तट पर स्थित चन्द्रिका देवी के प्राचीन ऐतिहासिक मन्दिर के लिए प्रस्थान कर गए। कौन सोच सकता था कि शाश्वती जी की यह अन्तिम गंगा यात्रा सम्पन्न

हो रही है। प्रसन्नता, हर्ष, उल्लास और उत्सव के हलके-फुलके वातावरण में एक विशेष प्रकार की चहल-पहल के बीच वे अपने जीवन का अन्तिम पारिवारिक दायित्व अर्थात् अपने अन्तिम पोते का मुण्डन संस्कार सम्पन्न करने जा रही हैं।

चेहरे पर जादुई चमक, दिल की गहराइयों से उफनाती हुई मुस्कान, गोरे मस्तक पर तेज सुर्ख रंग की बड़ी गोल बिन्दी, कानों में झिलमिलाते हुए सोने के छोटे-छोटे बाले, ओठों पर पान की गहरी सुर्खी देखकर कोई भविष्यवक्ता ज्योतिषी यह नही कह सकता था कि तीन महीने और चार दिनों के बाद यही शाश्वती इस विशाल ससार में मुझे एकाकी छोड़कर मेरी ओर से सदा के लिए आँखें फेर लेंगी।

बातें करते, कहकहा लगाते, हँसते-बोलते, हम लोग चन्द्रिका देवी के मन्दिर-परिसर मे पहुँच गए, वहाँ के विस्तृत प्रांगण में दो बड़ी-बड़ी चादरें बिछवाकर शाश्वती उनके बीचोंबीच में आसीन होकर मुझसे पूछने लगीं, "जानते हो बच्चों का मुण्डन संस्कार क्यो कराया जाता है ?"

"सोलह संस्कार हमारे धर्मग्रन्थों में मनुष्य के लिए अपरिहार्य वतलाए गए है, उनमें मुण्डन सस्कार भी एक है।"

"यह तो तुम्हारा अधूरा उत्तर है। मुझसे सुनो, माँ के गर्भ में नौ-दस महीने रहकर जब बच्चे का जन्म होता है उस समय अस्पताल की नर्सें उसे अच्छी तरह नहला-धुलाकर साफ कर देती हैं, उसके सिर पर केवल गर्भकालीन बाल साफ होने शेष रह जाते हैं, जन्म के समय उनकी विधिवत सफाई नहीं हो पाती है, बच्चे बडे हो जाने पर वे गर्भकालीन बाल मुण्डन संस्कार द्वारा बनवा दिए जाते हैं।"

टाटा सूमो से उतार-उतार कर सारा सामान उन्हीं चादरों पर मन्दिर की दीवाल के किनारे-किनारे करीने से सजा दिया गया। नवरात्र होने के कारण मन्दिर मे दर्शनार्थियों की भीड़ पहले से ही मौजूद थी, चारों तरफ बहुत से बच्चों के मुण्डन पहले से ही हो रहे थे। बाजे बज रहे थे, ढोलकें बज रही थीं, देवी के गीत रंगबिरंगे परिधानों से सजी महिलाओं द्वारा गाए जा रहे थे।

श्रेयस को विवेक ने दोनों हाथों में लड्डू पकड़ाकर अपनी गोद में मजबूती से पकड़कर बिठला लिया, वहाँ पर मौजूद एक वृद्ध नाई द्वारा गंगाजल में उसके वडे-बड़े बालों को भिगो-भिगो कर मुलायम करके क्षौर कर्म शुरू कर दिया गया, शाश्वती ने अवसरानुकूल देवी गीत और मंगलगान गाया, वहाँ पर मौजूद पारिवारिक महिलाओं के साथ स्थानीय महिलाओं ने भी गाना गाने और ढोलक बजाने में सगत की। दो लड़के भी जोर-जोर से ढोलक बजाने लग गए, एक छोटे से लड़के ने जो खाकी पतलून और सफेद शर्ट पहने था टनाटन मंजीरा बजाना शुरू कर दिया। पीछे खडे बाजा बजाने वालों का पेशेवर सहयोग महिला संगीत के आयोजन को स्वत सुलभ हो गया। फिल्माने योग्य ऐसा सुन्दर सीन आँखों के सामने ऐसे तैयार हो

गया, जैसे सब कुछ पूर्व नियोजित हो रहा हो। विवेक ने इस सुन्दर दृश्य के कुछ स्नैप्स ले लिए।

श्रेयस का मुण्डन होते ही गंगा में स्नान कराकर नए वस्त्र पहना दिए गए, दान दक्षिणा का क्रम देर तक चला। घर से साथ लाई गई गर्म-गर्म पूड़ियाँ, सब्ज़ी और मिठाई खाकर शाश्वती ने अपने काले थर्मस में रखी चाय पी। परिवार के सभी सदस्यों ने उनका अनुगमन किया। अपने बटुए से दो पान निकालकर श्रीमती जी ने अपना मुँह लाल कर लिया और मेरी ओर विजयी मुद्रा में अपनी बड़ी-बड़ी आँखो से भरपूर देखते हुए सबको सुनाकर बोलीं, "भगवान ने मेरी अन्तिम अभिलाषा पूरी कर दी।"

हमारी टाटा सूमो पुनः लखनऊ की ओर हम लोगों को लेकर चल पड़ी, उन्नाव, नवाबगंज और बनी की कभी मशहूर मिठाइयाँ खाते, चाय पीते और श्रीमती जी को पान खिलाते इन्दिरा नगर अपने आवास पर सायंकालीन पाँच बजे लौट आए। हम लोग बिस्तर पर लेट कर मुण्डन की आगामी कार्यक्रम की रूपरेखा बनाते बिगाड़ते रहे। मैं बहुत खुश था कि मेरी शाश्वती अपने जीवन के चौहत्तरवें वर्ष में शारीरिक कृशता के बावजूद इतनी जीवन्त, इतनी सक्रिय और अपने मुख मण्डल से इतनी दीप्तिवान दिख रही हैं। मैं अविवेकी पति की भाँति अपने भावी दाम्पत्य के ताने-बाने बुनता हुआ, रात का खाना खाए बिना न जाने कब नींद के नशे में सो गया।

छठा अनुच्छेद

तेईस अक्टूबर, 1999, सायं दिन शनिवार, स्थान इन्दिरा नगर के आवास के सामने का हरा भरा पार्क, समय सायं सात बजे।

आज सारा आवास बिजली के रंग-बिरंगे छोटे-बड़े बल्बों से जगमगा रहा था, सामने का पार्क तो किसी प्रदर्शनी स्थल या सरकस-ग्राउण्ड की भाँति रंग-बिरंगा दिख रहा था। पार्क के बाएँ कोने में बच्चों के मनोरंजन के लिए 'मेरीगो राउण्ड' लगा हुआ था, दाहिने ओर गैस के गुब्बारों वाला लाल, हरे, पीले गुब्बारों में गैस भर-भरकर आए हुए बच्चों को बुला-बुलाकर गुब्बारे बाँट रहा था। बीच में बर्फ के ठण्डे मीठे खिलौने बनाकर बच्चों को खिलाने वाला छोटे बच्चों की भीड़ से घिर गया था। आयताकार बहुरंगी पाण्डाल, खूब सजा हुआ, रंगीन रोशनी मनमोहक सेंट स्प्रे करते हुए कार्नर पर लगे स्प्रेयर, झनझनाते हुए चमाचम नए पेडस्टल फैन, पृष्ठ भाग में

'यू-शेप' में सजी हुई मेजों पर करीने से खाने के अनेक आयटम, बायें कोने पर बाडीलाल की आइसक्रीम। कुल मिलाकर किसी मध्यवर्गीय लड़की की शादी का माहोल।

शाम सात बजते ही अतिथियों की टोलियाँ आकर पाण्डाल में अब तक खाली नई कुर्सियों पर आसीन होने लगीं, जितने पुरुष, उनसे अधिक महिलाएँ और उनसे अधिक बच्चे अनुमानित संख्या से अधिक अतिथिगण नगर के श्रेष्ठ कैटररकिशोर का उत्साहवर्धन कर रहे थे।

अंकुरित चने, मूँग, गेहूँ की बड़ी-बड़ी प्लेटें, मौसम के अनुकूल उपलब्ध फलो की सलादें, किसी बड़ी दुकान की तरह मुँह से लार टपका देने वाले चटपटे चाट का हरेक आयटम, उसके बाद खाने की टेबलों पर रखी हुई गर्मागर्म खाने की अनेकानेक डिशेज अपने-अपने रंग रूप और खुशबू से मेहमानों की भूख बढ़ा रही थीं।

पाण्डाल के अग्रभाग में विराजमान और अपने सुन्दर वस्त्रों पर गर्व अनुभव करते हुए पुरुष और शोरूम में प्रदर्शित की जाने वाली साड़ियों की तरह देश-विदेश की आकर्षक साड़ियों को धारण किए हुए गर्वीली महिलाएँ अगली पंक्ति की कुर्सियो पर वीडियो कैमरामैन का ध्यान आकर्षित कर रहे थे। वह अलग-अलग कोणो से अतिथियों विशेपकर महिलाओं और बच्चों के दृश्य फिल्मा रहा था, बीच में शाश्वती जी अपनी रुचि के अनुरूप नीले रंग व सुनहरे बार्डर की जयपुरी साड़ी में जिसके सारे आँचल पर छोटी-छोटी सुनहरी बूटियाँ चमक रही थीं शोभायमान अपनी बहनो, भाभियों. सहेलियों, ननदों, बेटियों और पड़ोसी महिलाओं से घिर गई थीं, उनके द्वारा प्रेजेण्ट किए जा रहे गिफ्ट-पैकेट मुस्कराहटपूर्ण धन्यवाद देती हुई स्वीकार करते-करते वे थकने लगी थीं, उनकी कुर्सी के दोनों ओर पैकेटों के ऊँचे-ऊँचे दो स्तम्भ बनते जा रहे थे, वे आज अपने जीवन में अभूतपूर्व प्रसन्नता का अनुभव कर रही थी, वे अपनी ननदों और भाभियों पर प्रेमपूर्ण कटाक्ष भी करती जा रही थीं। उनका पौत्र श्रेयस नाच-नाच कर अपने नए जूतों में लगा बल्ब जलाकर अपनी दादी अम्मा को 'इश्क बिना क्या जीना यारो' गा-गाकर आनन्दित कर रहा था। वे अपने में खोने लगी थीं, शायद अपनी संरचना के बढ़ते क्षेत्र को देख वे गद्‌गद हो रही थीं काश। उनको किसी देवी प्रेरणा से इस बात का पूर्वाभास हो जाता कि आज के इस मनमोहक समारोह में वीडियो कैमरामैन उनके जीवन में अन्तिम बार उनकी शारीरिक छवि का फिल्मांकन कर रहा है। उन्होंने विवेक के हाथों अपने पसन्दीदा आयटमों को मँगवाकर चुनी हुई चीजें खाईं, कॉफी पी, पान तम्बाकू खाकर रात्रि के ग्यारह बजते ही अपनी पुत्री का हाथ पकड़कर धीरे-धीरे अपने बेडरूम में पहुँचकर आज पहने हुए वस्त्रो मे ही लेट रहीं। उनकी पलकों पर दिन भर की रोचक झाँकियों के रंग-बिरंगे सपने एक-एक करके आने-जाने लगे, कभी किसी महिला के फूलनुमा सजे हुए प्यारे बच्चो

की शक्लें उनकी स्मृति में उभर आई, तो कभी किसी प्रौढ़ महिला के कसे हुए सलवार सूट का डिजाइन उन्हें नजर आने लगा। रात थोड़ी-थोड़ी आगे खिसकने लगी, दिन भर की मानसिक थकान ने उन्हें गहरी नींद में सुला दिया।

दूसरे दिन प्रातः होते ही घर में अतिथियों के जल्दी-जल्दी तैयार होकर अपने-अपने घरों को लौट जाने की प्रतियोगिता शुरू हो गई। घर के हर कमरे में चाय काजू-नमकीन और मिठाइयों की कागजी तश्तरियाँ तेज हवा में फूलों की पंखुड़ियों की तरह बिखर गईं। जाने वाले शाश्वती का चरण स्पर्श करते, आशीष लेते, उनके उत्तम स्वास्थ्य की कामना करते हुए चले जाते। अतिथियों की वापसी के क्रम में एक ही रेल की पटरी पर दूसरी तरफ से आ रही गाड़ी की भाँति डा. आर.के. मिश्र होमियोपैथ आ धमके, पीछे उनकी पत्नी। दोनों ने श्रद्धापूर्वक श्रीमती जी का चरण स्पर्श किया, फिर हँस के धीमी आवाज में बोले, "बुआ जी, कल रात में फंक्शन मे सम्मिलित न हो सकने के कारण आपसे माफी माँगने आया हूँ, लखीमपुर से मेरी ट्रेन रात में बारह बजे लखनऊ आई, आपकी बहू घर पर तैयार बैठी रात को आठ बजे से ही नाराज़गी के साथ मेरा इन्तजार कर रही थी। मेरे बिना वह सरायमाली खॉ से इतनी दूर चाहकर भी न आ सकी थी, छोटे-छोटे बच्चों की समस्या ऊपर से थी इसलिए सवेरे-सवेरे सबसे पहले मैं आपके घर आया हूँ, लाइए जो कुछ कल का बचा खुचा मेरे हिस्से का मौज़ूद हो, खिला दीजिए मैं घर से बिना नाश्ता किए ही यहाँ चला आया हूँ बुआ जी।" अपने भतीजे डा. मिश्र, जिन्हें मेरी श्रीमती जी और मैं प्यार से बुद्धू कहकर सम्बोधित करता था, की आत्मीयता के रस में डूबी इन बातों को सुनकर श्रीमती जी सचमुच खुश हो गईं, कल की गैरहाजिरी उन्होंने माफ कर दी, तुरन्त ही पास रखी काजू दालमोट की दो प्लेटें उनके सामने रखती हुई चिल्ला दी, अरे चन्दू! सुनते क्यों नहीं ताजे दूध की दो कप कड़क चाय बना लाओ, आज सवेरे से ही दैव ने बूँदा-बाँदी लगा रखी है।

दालमोठ से काजू निकालकर खाते हुए डा. बुद्धू बोले "अब तो बुआ जी आप देखने में स्वस्थ लग रही हैं।" "हाँ तुम लोग यही कहते रहो, कब्र का हाल तो मुर्दा ही जानता है। मेरे दोनों कूल्हों की हड्डियों में हर समय मीठा-मीठा दर्द बना रहता है। एक्स-रे रिपोर्ट के मुताबिक मेरी पेल्विक बोन्स कमजोर पड़ गई हैं उनमें आस्टियो पोरोसिस नाम की कोई बीमारी लग गई है। हड्डियों की ताकत कम होती जा रही है, कैल्शियम व विटामिन डी की कमी दूर करने के लिए मैं दूध के साथ प्रोटीन ले रही हूँ, कोई दो गोलियाँ भी खाती हूँ पर कुछ फायदा नहीं हो रहा है। मैं जानती हूँ कि कल सारे दिन मेहमानों के बीच कितनी हिम्मत करके अपना काम चलाती रही हूँ।" श्रीमती जी ने एक लम्बी साँस छोड़ते हुए अपने डा. भतीजे के सामने अपनी मनोव्यथा व्यक्त कर दी।

मैंने उत्साहवर्धक मुद्रा में बीच में हस्तक्षेप करते हुए कहा "आप कुछ भी कहे कल सारे दिन और फंक्शन के समय भी आपके चेहरे पर शारीरिक कष्ट का कोई लक्षण दिख नहीं रहा था। दर्द तो आपको रोज रहता है पर कल कहीं दूर चला गया था। आप बिल्कुल भलीचंगी दिखलाई पड़ रही थीं।"

"देखा भैया बुद्धू! तुम्हारे फूफा जी दिन भर मुझे यों ही मसका लगाया करते हैं" शाश्वती ने डा. बुद्धू को अपने कष्टों के सम्बन्ध में आश्वस्त करने की कोशिश की। इसी बीच श्रीमती जी की तीनों छोटी बहनें, प्रकाशिनी, विमला और निर्मला अपने-अपने छोटे ब्रीफकेस हाथ में थामे हुए सामने आकर खड़ी हो गईं, फिर प्रकाशिनी बोली, "दीदी अब हम लोगों को जाने की इजाजत दीजिए, अभी साढ़े दस बजे वाली गाडी मिल जाएगी।"

"अच्छा तो तुम लोग इतनी जल्दी गुपचुप तैयार होकर अब केवल रस्म अदायगी के लिए दीदी के पास आ गई हो। मैं तो चाहती थी कि आज एक दिन के लिए तुम लोग और रुक जाओ ताकि मेरे घर में ढोलक बज सके और महिलाओं के संगीत के बुलावे में तुम लोग भाग ले सको।" श्रीमती जी थोड़ी गम्भीर मुद्रा में कुछ सोचने लगी, "नहीं दीदी, अब हम तीनों को अपने-अपने घर लौटने की अनुमति दे दीजिए। आजकल विवेक के मौसाजी लारी कार्डियोलोजी में किसी डा. द्विवेदी से अपने हृदय रोग का इलाज करा रहे हैं, मुझे उन्हें दिन भर दवा खिलानी पड़ती है।" विमला ने अपनी विवशता दीदी के सामने स्पष्ट कर दी।

"और मुझे भी दीदी उनको डायबिटीज की बीमारी हो जाने के कारण उनके खाने में विशेष सावधानी रखनी पड़ती है।" निर्मला ने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी। "मै समझती हूँ कि इन्हीं दोनों के साथ मैं भी निकल लूँ, क्योंकि मेरे हाथ-पैर दोनो कमजोर हो गए हैं—ये लोग मुझे घर तक पहुँचा देंगी।" प्रकाशिनी अपनी शारीरिक व्यथा की ओर दीदी का ध्यानाकर्षण करते हुए अपनी आँख के आँसू पोंछने लगी।

"ठीक है, तुम लोग अवश्य जाओ। ऐसी स्थिति में तुम्हें रुकने को कोई नहीं कहेगा" यह कहकर शाश्वती ने अपने काले छोटे पर्स से सौ सौ के नए नोट निकाल कर अपनी बहनों को दक्षिणा दिया और प्रेमाश्रित आँसुओं से डबडबाई आँखों को साडी के आँचल से पोंछते हुए बेडरूम के दरवाजे तक विदा कर दिया। तुरन्त ही डा बुद्धू भी लड्डुओं का पैकेट अपने नए रूमाल में बाँधते हुए बुआ जी का चरण स्पर्श करके सपत्नीक लौट गए।

अब मैं और शाश्वती—एक डाल पर बैठे दो पुराने पक्षियों की भाँति आपस में चोंचें लड़ाने लगे। सर्वप्रथम श्रेयस के मुण्डन में सम्मिलित सम्बन्धियों की उपस्थिति पर दृष्टिपात किया, अतिथियों की संख्या पर सन्तोष प्रकट किया, फिर श्रेयस को उपहार में प्राप्त गिफ्ट पैकेटों को खोल-खोल कर उनमें रखी वस्तुएँ देखीं, खुश हुए।

विवेक इस कार्य में अपनी मम्मी का लगातार सहयोग देकर दो बजे से अपने आफिस चला गया, बाकी लोग ऊपर के कमरे में विश्राम करने लगे। मैं और शाश्वती बेडरूम के शान्त वातावरण में कुछ देर के लिए सो रहे। दोपहर में सारे घर में निर्जनता का वातावरण छा गया।

सातवाँ अनुच्छेद

पारिवारिक आपदाओं से त्रस्त व्यक्ति, सामाजिक कर्तव्यों में व्यस्त व्यक्ति, शासकीय दायित्वों में उलझा व्यक्ति और विषम परिस्थितियों में फँसा व्यक्ति अपनी शारीरिक अक्षमताओं या प्रकृतिजन्य विकलांगता की ओर कम ध्यान दे पाता है। यातायात से घिरी सड़क पर दोनों पैर कटे भिखारी किस प्रकार दौड़-दौड़कर राहगीरों को बाबूजी बाबूजी सम्बोधित करके उनके सामने अपना हाथ फैलाकर उनसे पैसे ले लेता है। रेलवे प्लेटफॉर्म पर खड़ी ट्रेन ज्योंही अपने छूटने की सीटी बजा देती है, बूढ़े और कमजोर यात्री कितना तेज दौड़कर अपने डिब्बे में चढ़ जाते हैं। जाड़ों की मौसमी तेज बरसात में जब कभी अकस्मात् बड़े-बड़े ओले गिरने लग जाते हैं तो सड़क पर धीरे-धीरे रेंगने वाली मोटी और थुलथुल शरीर वाली महिलाएँ कितनी स्फूर्ति से सड़क के किनारे मौजूद बरामदों की ओर भागने लग जाती हैं। लम्बी अवधि तक सरकारी अस्पतालों में भर्ती रहकर इलाज कराने वाला बूढ़ा रोगी ठीक हो जाने पर डिस्चार्ज होते ही घर की ओर लम्बे-लम्बे कदम उठाने लग जाता है, उसके कमजोर पैरों में जैसे बिजली दौड़ जाती है।

प्रकृति का यही नियम है कि मनुष्य के सामने ज्योंही कोई असाधारण समस्या उत्पन्न हो जाती है, तात्कालिक प्रभाव से उसके शरीर में नवीन ऊर्जा का संचार होने लगता है, समस्या का निराकरण होते ही उसकी वही पुरानी सुस्ती आराम तलबी, निश्चिन्तता और निष्क्रियता तथा भविष्य के प्रति उदासीनता पुनः लक्षित होने लगती है स्वभावतः इसी प्रकार की मनोदशा से प्रभावित मेरी श्रीमती जी एक अकल्पित हताशा, एक दुर्गम दुराशा और अपनी वर्तमान साँसों की निरन्तर घटती संख्या की दुश्चिन्ता से सन्तप्त रहने लगीं।

नवम्बर का महीना उन्हें भारी पड़ने लगा। दीपमालिका का पर्व उन्हें दाम्पत्य की शुरुआत से ही प्रिय था। वे अपने घर की पुताई-सफाई, रंग-रोगन की मुश्किल जिम्मेदारी हमेशा अकेले ही सँभालतीं, ऐसे अवसरों पर घर के सामान की अस्त-व्यस्तता

हो जाने पर प्रायः मेरी उनकी टोका-टाकी भी हो जाती, पर ध्रुवस्वामिनी की तरह अपने घर को जब तक मनोवांछित स्वच्छता और सुघड़ता प्रदान न कर देतीं, वे मजदूरो को लगाए रखतीं और चुपचाप घर का काम कराती रहतीं। दीपावली की तैयारी मे उनका उत्साह और उनकी शारीरिक सक्रियता देखने योग्य रहती, उनका दृढ़ विश्वास था कि लक्ष्मी जी उसी व्यक्ति के घर प्रसन्नतापूर्वक पधारती हैं, जहाँ पर उनके स्वागत-सत्कार की श्रद्धापूर्वक तैयारी की जाती है, न जाने क्यों इस बार मैंने शाश्वती के परम्परागत उत्साह में कुछ न्यूनता देखी। यद्यपि लक्ष्मी-गणेश की सुन्दर जोडी, खील-खिलौना, धूपदीप, पूजा-अर्चना, प्रकाश-व्यवस्था, अलाय-बलाय और भूतनाथ मार्केट की प्रसिद्ध दुकान से देसी घी की मिठाई आदि लाने के लिए उन्होंने विवेक को सारे निर्देश दे दिए थे, पर लक्ष्मी-पूजन के कार्यक्रम के प्रति उनकी मनोगत अरुचि को मैंने किसी प्रकार भाँप लिया। धनतेरस में उन्होंने नए बरतन मँगवाए, नरक-चतुर्दशी की रात में घर की नालियों में दीपक जलवाए पर बड़ी दीपावली की शाम को उन्होने अर्चना को बुलाकर यों समझाया, देखो बहू! इस वर्ष लक्ष्मी-गणेश के पूजन का शुभ मुहूर्त सायं साढ़े सात और आठ बजे के बीच में है, तुम जल्दी-जल्दी चौक पूरी कर लो, एक चौकी को धुली चादर से ढक कर उस पर लक्ष्मी-गणेश को आसीन करा दो, फूलमालाएँ, फूलों की पंखुड़ियाँ, दूर्वा, रोली, अक्षत, पान, खील-खिलौने, कपूर, देशी घी का दीपक, रुई की छोटी-बड़ी बत्तियाँ, मिठाई, अलाय-बलाय, चाँदी का लक्ष्मी का चित्र बना पूजा वाला पुराना सिक्का आदि सारी वस्तुएँ अलग-अलग थालियो मे सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाकर पूजा चौकी के सामने रख दो।

मैं केवल पूजा के समय लक्ष्मी-गणेश के सामने हाथ जोड़कर बैठ जाऊँगी और आरती कर लूँगी। कई वर्षों से माता जी का प्रबन्ध देखते-देखते अर्चना स्वय अनुभवी हो गई थी। वह कुशाग्रबुद्धि थी, अतः उसने माता जी से प्राप्त निर्देशानुसार परम्परागत सुन्दर व्यवस्था पूरी कर ली।

मैं, विवेक, अर्चना, सौम्या और श्रेयस श्रीमती जी को घेर कर पूजा के स्थान पर बैठ गए। उन्होंने पूजन क्रिया का शुभारम्भ किया। कड़वे तेल के बड़े दीपक से जलवाकर पहले उन्होंने घर से अलाय-बलाय निकलवाई, दोनों बच्चों को प्यार से समझाया घर से बाहर अलाय-बलाय दोनों हाथ से पकड़कर सावधानी से चलते समय बार-बार कहते रहना, अलाय-बलाय जात है, नानी का पेट पिरात है। अलाय-बलाय एक वर्ष के लिए मेरे घर से निकल गई, पीले फूलों से बने स्वस्तिक पर घी का जलता दीपक रखवाया। लक्ष्मी-गणेश की पूजा हुई, आरती गाई गई, परिवार के सदस्यो के मस्तक पर टीका लगाकर श्रीमती जी ने मिठाई खाने को दी, मैंने उनको और उन्होंने मेरे जीवन में अन्तिम बार सिर पर हाथ रखकर मस्तक पर टीका लगाया, अक्षत लगाए, खीलों की वर्षा की। सबको आशीष देकर उन्होंने घर के हरेक कमरे

मे कड़वे तेल के जलते दीपक यथा-स्थान रखवा दिए। फिर हम लोग लक्ष्मी-गणेश के आगे नमन करके उठ खड़े हुए और छोटे बच्चों का पटाखा छुड़ाने का मनोरंजक कार्यक्रम गेट के सामने शुरू हो गया। श्रीमती जी वहाँ पहुँच गईं, कई तरह के नए पटाखे बच्चों ने छुड़ाने शुरू कर दिए, राकेट, हाइड्रोजन बम, ऐटम बम, चर्ख़ी, महताब, फुलझड़ी, हवाई और न जाने क्या-क्या। विवेक ने छूटती हुई एक बड़ी फुलझड़ी अपनी माता जी के हाथ में पकड़ा दी। कई दिनों के बाद श्रीमती जी की म्लान मुखाकृति पर हल्की सी संकोचपूर्ण मुस्कराहट तैरने लगी। मैंने उन्हें इस मुद्रा में पाकर आनन-फानन उनका फोटो खींच लिया गेट पर रखी कुर्सी से उठकर वे मेरे साथ घर के अन्दर लौट आईं। मेरे साथ प्रसन्नता और सुखचैन की मुद्रा में बैठकर उन्होंने मटर-पनीर की सब्जी के साथ दो पूड़ियाँ खाईं एक छेने का सफेद रसगुल्ला खाकर एक कप चाय पी ली, आज पर्व के अवसर पर हजरतगंज से मँगाए स्पेशल बनारसी पान ख़ाकर अपने बेड पर लेट रहीं।

रात के ग्यारह बज चुके थे, पर कालोनीवासियों का पटाखा छुड़ाने से पेट नही भरा था, राकेटों और गोलों की धांय-धड़ाम लगातार सुनाई पड़ रही थी। परिवार के सभी सदस्य सोने की तैयारी करने लगे। शाश्वती को दाहिनी ओर आराम से लिटाकर मैं दीपावली के प्रकाश पर्व का पारम्परिक इतिहास, चौदह वर्ष का बनवास काटकर लंका विजय करके भगवान राम के लौटने पर उनके स्वागत में हर्षातिरेक मे नगरवासियों द्वारा अपने-अपने घरों पर घृत-दीप जलाकर सारे नगर को प्रकाशित कर देने की घटना से जोड़ने लगा।

कड़वे तेल से लबरेज़ बड़े दीपक में चाँदी के लक्ष्मी वाले सिक्के को रात भर रखकर पूजा की चौकी के सामने प्रकाश करना, घर-परिवारजनों के साथ बैठकर द्यूतक्रीड़ा करना, आवासीय भवनों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों की शानदार इमारतों को बिजली की रंग-बिरंगी झालरों द्वारा जगमगाते रहना, सारी रात नगर के विभिन्न भागों में पटाखों का क्रमबद्धता से दगते रहना, देश के महानगरों के पंच तारा होटलों मे द्यूतक्रीड़ा में करोड़ों रुपयों की हारजीत हो जाना, जबकि दूसरी ओर करोड़ों लोग अब भी गरीबी रेखा के नीचे अपना नारकीय जीवन काट रहे हों, और कालाहांडी जैसे स्थानों में पशुओं के गोबर में मिले अनाज के दाने बच्चों द्वारा चुन-चुनकर निकालना, उन्हें धोकर खा लेने की घटनाओं का वर्णन समाचार पत्रों में प्रकाशित हो रहे हों,—यह सब कुछ कितना अजीबोगरीब लगता है। इन सार्थक बिन्दुओं की ओर शाश्वती का ध्यान अनायास जाता रहा। बारह बज जाने के बाद रात की गुलाबी ठण्डक की सुखद अनुभूति होने लगी, अतः मैंने अपनी महकती श्रीमती जी के किशमिशी सूख़े कपोलों पर त्योहार का बहाना बनाकर एक शालीनतायुक्त चुम्बन अंकित कर दिया। वे मुझ पर गर्म होने लगीं, उनकी गुप्तवाणी फूट निकली, "मेरे बार-बार समझाने

और मना करते रहने के बावजूद अपनी जवानी की हरकतों को बुढ़ापे में भी बरकरार रखना चाहते हो—यह कितनी बुरी बात है। अब भगवान का नाम लो। इन सारी मूर्खतापूर्ण बातों को भुला दो। मेरे पास लेटो, घर-गृहस्थी और प्यार की बातें करो, पर तुम्हारा प्यार जब जोर मारे, तब उसे प्रकट करने की कुचेष्टा मत करो। अब मुझे तुम्हारी इन बचकानी बातों से कष्ट होता है। मैं तुम्हारी हरकतों पर खामोश बनी रहती हूँ, पर इसका मतलब यह नहीं कि मैं तुमसे नाराज़ नहीं हूँ।''

''अरे शाश्वती, आज तो दीप-मालिका की तन्त्र सिद्ध करने वाली शुभ रात्रि है, आज तो सारे तान्त्रिक रात्रि जागरण करके अपने-अपने मन्त्र सिद्ध करते हैं, श्मशान में जलती चिता के सामने बैठकर वे अपनी साधना पूर्ण करते हैं, दीपक की रोशनी के सामने बैठकर रात भर जगकर मन्त्रों का पाठ करके अपनी सिद्धि प्राप्त करते हैं। दीपावली की रात्रि के विशेष तान्त्रिक महत्त्व के सम्बन्ध में मैंने कादम्बिनी के नए तन्त्र विशेषांक में कई रोचक और अविश्वसनीय लेख पढ़े हैं, कुछ तान्त्रिको की अद्भुत तन्त्र साधना के दृष्टान्त पढ़े हैं। अतः आज मैं इस शुभ रात्रि में तुम्हारे हृदय में सोई हुई पतिप्रेम की सुकोमल भावनाएँ पुनः जगा रहा हूँ, ताकि आने वाला वर्ष इसी प्रकार तुम्हारे प्रेमचिह्न और स्फूर्तिदायक साहचर्य में बिता सकूँ।'' यह सुनकर वह हँसने लगीं, उनका मूड चेंज हो गया। वे अब खुशी में बोल उठीं, ''अच्छा तो तुम आज रात को मेरे प्यार के बुझे दीपक को दुबारा जलाकर उसकी निकलती लौ में अपना मन्त्र सिद्ध करना चाहते हो। अब मेरे स्नेह-दीपक में न तो तेल शेष रह गया है और न ही अधजली बाती ही। दीपक का पुराना पात्र ही मेरे सूखे शरीर के वर्तमान रूप में तुम्हारे सामने शेष बचा है। यह शरीर अब तुम्हारी किसी प्रकार की सेवा करने योग्य नहीं रहा है। इस वास्तविकता को आँखें खोलकर देखो समझो और अपने वर्तमान में मौज से जीने की नई जीवन कला सीखो।'' दीपावली की निशा में जगमगाते अन्धकार में शाश्वती के दिल की गहराइयों से उमड़े यथार्थ बोधक ये शब्द सुनकर मेरी आँखों में प्रेमाश्रु छलक आए। मानव जीवन के जो रंग-बिरंगे सपने, मेरी पलकों पर उतरकर अपना डेरा डाले हुए थे, वे न जाने कैसे अपने आप बिखरने लगे। प्रकाश पर्व की आनन्ददायिनी निशा, प्रकृति और परिवेश का उद्दीपक वातावरण, साँस लेती हुई मन की गतिशील उमंगें, और भूतपूर्व सुन्दर पत्नी का मनमोहक साहचर्य आज क्रमशः अनुभव होने वाले मेरे वार्धक्य को मुँह चिढ़ा रहा था और साथ ही में ''देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारम् यौवनम् जरा'' का प्रत्यक्ष पाठ पढ़ा रहा था। मैं दुःख के अगाध सागर में डूबने उतराने लगा। सोचा कि किसी दैवी विधान के अनुसार प्रत्येक सुन्दर नारी शरीर में अपनी एक विशेष मोहक गन्ध होती है, वही सुगन्ध बनकर पति या प्रेमी को लुभाते हुए अपने मोहपाश में सहज बाँध लेती है। मेरी श्रीमती जी के सुन्दर, गौरांग और सदा स्वच्छ रहने वाले शरीर

से स्वतः निस्सृत एक विशेष प्रकार की वैयक्तिक गन्ध मुझे सारे जीवन एक आकर्षण—एक संबल प्रदान करती रही। वृद्धावस्था के दुरागमन और रोग-शोक आदि से आवृत्त हो जाने के बावजूद मुझे आश्चर्य है कि उनकी वह शारीरिक गन्ध आज भी विगत की भाँति मनमोहक, मादक और उत्तेजक बनी हुई है। जिसे दीपावली की इस शुभ्र निशा में साक्षात् अनुभव करने के मेरे प्रतिबन्धित अधिकार पर मुझे क्षोभ हो रहा था। मैं कर्तव्य भावना से प्रेरित हो कर अब विवश था। मैंने धीरे से श्रीमती जी के कान में कहा, "प्रिये ध्यान से सुनो, मेरी स्वाभाविक अनुभूति को समझने की कोशिश करो हम दोनों के इतने दिनों तक साथ रहने वाले ये शरीर तो निश्चय ही वृद्धावस्था के शिकार हो गए हैं, किसी दिन मृत्यु के विकाराल मुँह मे भी पहुँच जाएँगे, पर मन तो आज भी पूर्व की भाँति अनुराग से ओत-प्रोत, स्पन्दन-शील और सशक्त लग रहा है। मन की छिपी गहराइयों में मेरे तुम्हारे युवा-प्रेम की वही संवेदनाएँ परत-दर-परत दूर तक छिपी हुई हैं। मैं अनुभव करता हूँ कि जब तक मेरा कृशतर होता यह शरीर इस धरती पर दुनिया के मालिक द्वारा चलाया जा रहा है, तब तक तुम्हारे प्रति मेरा अनुराग और आकर्षण अपनी सहज शृंखलाओं से आबद्ध रहेगा और तुम्हारे यौगिक प्रवचनों से प्रभावित होकर भी मैं अपने प्रणय प्रदर्शन से विरत नहीं हो पाया हूँ"—यह कहते हुए उस दीप-निशा में, बड़ी चन्द्राकार बिन्दी से चमकते हुए स्वर्णिम सुन्दर मस्तक पर मैंने दो-तीन शिथिल चुम्बन अंकित कर दिए। ऊपर सातवें आसमान की ऊँचाइयों पर अमावस्या के गहन तिमिर मे कहीं छिपा बैठा सृष्टि-नियन्ता मेरा यह अमानवीय कृत्य देख रहा था, उसका उपहास कर रहा था, मुझे चेतावनी दे रहा था—यह दीपनिशा तुम्हारी दीर्घ और सुखद दाम्पत्य यात्रा की अन्तिम मधुवेला है, तुम्हारा आज का यह दुष्कृत्य निकट भविष्य में आने वाले दुःखद वैधुर्य का पूर्वसूचक है।

मैं निराशावादी विचारों से व्यथित होकर प्रकृति-नटी का मनुष्य की नियति के साथ छलकपट और मनुष्य शरीर की निरन्तर ह्रासोन्मुखी, प्रणय-गतियों का मनोविश्लेषण करता-करता न जाने कब शाश्वती के उच्छ्वसित वक्षस्थल पर अपना दाहिना हाथ रखकर सो गया।

आठवाँ अनुच्छेद

जयशंकर प्रसाद के आँसू की निम्नांकित बहुचर्चित पंक्तियाँ—

"मानव जीवन-वेदी पर, परिणय है विरह-मिलन का
सुख-दुःख दोनों नाचेंगे, है खेल आँख का, मन का,

सहृदय प्राणियों के लिए शाश्वत सन्देश दायिनी हैं," तेज स्पन्दनों वाले युवा जीवन के बहुरंगी सपने, आँखों की पलकों से कितनी जल्दी ओझल हो जाते हैं, हर्ष विषाद में, उल्लास हताशा में, शारीरिक सौन्दर्य विद्रूपता में, आह भरे उच्छ्वासों की उष्णता कराह में, मुस्कान आँसुओं में, कोमल काया का स्वर्णिम रंग भरा निस्तेज त्वचा में एक दिन बदल जाते हैं। शक्ति-केन्द्र पुरुष और सम्मोहन केन्द्र नारी की अन्वेषी दृष्टि अपने सुनहरे भविष्य के गर्भ में पल रहे दुस्सह दुःखों के विषय में कुछ सोचने के लिए तैयार नहीं होती है।

अपने इठलाते यौवन, मचलते सौन्दर्य, सुरभित देहयष्टि और सुगन्धित सुरापान द्वारा नारी जब अपने मधुर प्रणयदान से पुरुष को रति के अनिर्वचनीय आनन्द के द्वार खोल देती है, तब उसे ऐसा लगता है जैसे इसी धरती पर साक्षात् स्वर्ग उतर आया हो, पर दुखों की अकल्पित आँधी का एक जबर्दस्त झोंका आते ही उसके जीवन की बासन्ती छवि न जाने कहाँ तितर-बितर हो जाती है पुरुष किंकर्त्तव्यविमूढ हो जाता है, नारी अपनी नाप तोल भूल जाती है, पुरुष सम्भोग से समाधि तक के रास्ते से अकस्मात भटक जाता है। पुरुष समझता है, नारी की रूप-गर्विता वाणी के संगीतमय स्वर अज्ञात अन्तरिक्ष में कहीं खो गए हैं। पर नारी अपनी खोई अस्मिता की पहचान अपने दर्पण में लगातार खोजती रहती है, ब्यूटी-पार्लर से लौटकर नए दर्पण में जब वह अपनी वांछित रूप माधुरी नहीं देख पाती, तब वह शंकाग्रस्त मन से सहसा गम्भीर हो उठती है, उसने कभी ऐसा सोचा भी नहीं था कि चेहरे का रंग पहले की तरह गोरा पर चेहरे पर पड़ती झुर्रियाँ, आँखें वही लम्बी-लम्बी पलकों वाली गहरी और आकर्षक, पर उनके नीचे काले धब्बे, दाँत वही मोती के ऐसे पर उनकी कान्ति आधी अधूरी, सिर के चमकीले काले केशों के बीच इधर-उधर चोरों की तरह छिपे श्वेत-श्याम बाल, मस्तक पर अनेक बनती, बिगड़ती गहरी रेखाएँ। "यह सब क्या हो गया मुझे ? क्या पूर्व सौन्दर्य अब वापस नहीं आएगा ?" इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए नारी मन सहसा व्याकुल हो उठता है।

ऐसे ही चिरन्तन विचारों में युग-युगों से दिग्भ्रमित नारी और पुरुष ग़ालिब के शब्दों में कराह उठते हैं, "जो आ के न जाए, वह बुढ़ापा देखा"। दीपावली का प्रकाश पर्व अपने प्रत्येक दीप की ज्योति शिखा से मेरे लिए दुःखों की कालिमा उगलने लगा। जमघट की प्रातः बिस्तर से उठते ही श्रीमती जी ने अपनी बाँस की छडी पकड़ी और ट्वायलेट के लिए बेडरूम से बाहर निकल पड़ीं, बरामदे में पहुँचते ही उनके हाँफने और कराहने का स्वर कुछ ऊँचा होने लगा। शंकालु स्वभाव का व्यक्ति होने के कारण मैं प्रातःकालीन खुमारी का मजा न लेता हुआ, लम्बे फुर्तीले कदमों

से शाश्वती का अनुगमन करता हुआ उनसे पूछने लगा, "आज तुम इतनी जल्दी क्यो जग गईं ? कराह भी अधिक रही हो। संगमरमर के पत्थरों पर तुम्हारी छडी की खटखट सुनकर मेरी आँख खुल गई। मैं तुम्हारे लिए चाय बनाने जा रहा हूँ, जब तक ट्वायलेट से निवृत्त होकर तुम बाहर निकलोगी, मेरी चाय तैयार हो जाएगी। अब तुम ट्वायलेट का दरवाजा अन्दर से बन्द न किया करो। बूढ़े बीमारों को डाक्टर लोग ट्वायलेट का दरवाजा अन्दर से बन्द करने के लिए मना करते हैं कि कही अन्दर बैठे-बैठे उनकी तबीयत अचानक बिगड़ न जाए और नई-नई मुश्किलें सामने खडी हो जाएँ" यह कहता हुआ ताकत लगाकर मैंने किचेन का कड़ा दरवाजा खोला, लाइट जलाकर गैस के चूल्हे का रैगुलेटर घुमाया, पास रखे लाइटर से उसे जला लिया। छोटे फ्राइगफैन में अक्वागार्ड का शुद्ध पानी तीन कप डालकर बर्नर पर रख दिया। थोडी बारीक कटी हुई अदरक पानी में डाल दी, पानी तेजी से उबलने लगा, जैसे दिल्ली के रामलीला मैदान की अपार भीड़ देख कर शाही इमाम अपनी जोशीली तकरीर मे उबलने लगते हैं। मोटी-मोटी धनराशियों का हवाला काण्ड, चारा काण्ड, बोफोर्स काण्ड और टेलीफोन काण्ड आदि मे गबन करने वाले इस देश के बेशर्म नेतागण जिस प्रकार अपने लम्बे खद्दरी कुर्ते से अपने काले कारनामे ढके रहते हैं, उसी प्रकार मेरी केटली में चाय की पत्ती ज्यादा पड़ जाने से उबलता पानी जो काला दिखने लगा था दूध डालते ही एकदम सफेद दिखने लगा, और थोड़ी देर के लिए उसका उबलना भी विरोधी दलों की भाँति मद्धम पड़ गया। बर्नर बन्द किया, केटली की चाय सीधे तीन प्यालों में छान कर अरारोट के बिस्कुटों के साथ मैंने शाश्वती के सामने चाय का प्याला पेश करते हुए मजाक के लहजे में कहा, "मोहतरमा आपकी चाय हाजिर है, लीजिए पीना शुरू कीजिए" फिर केटली की शेष गर्म चाय को मैने उसी प्रकार ढक कर रख दिया जैसे सरकारिया कमीशन की रिपोर्ट भारत सरकार ने अब तक ढक रखी है।

शाश्वती ने अपने दुग्ध धवल तौलिये से हाथ-मुँह पोंछकर चाय पीना शुरू कर दिया, "वाह कितनी अच्छी चाय बनाई है तुमने।" वे अपनी तेज हंफनी को नियन्त्रित करते हुए बोल पड़ीं। वे चाय चुस्की लेकर पीती रहीं, बीच-बीच मे रुक-रुककर बोलती रहतीं, "मैं महीनों से तुम्हें चाय बनाते देखती हूँ, इससे मैं दुःखी रहती हूँ, मेरा मन अन्दर ही अन्दर रोता रहता है। मैं जानती हूँ तुम प्रथम श्रेणी के अधिकारी ही नहीं, अपने पिता की सर्वाधिक प्रिय सन्तान होने के कारण सदैव आराम की ज़िन्दगी गुज़ारते रहे। मैंने अपनी जवानी, बुढ़ापा, दुःख, बीमारी और जाड़ा-गर्मी का कभी ख्याल न करके हमेशा तुम्हें बेड-टी पिलाई। अब पता नहीं कलजुगी दुनिया में घर समाज के अपने लोगों को क्या हो गया है, बहुएँ सोकर उठती है आठ-नौ बजे—यह दूसरी बात है कि मेरी बड़ी बहू अपनी नौकरी की वजह से जल्दी

उठ जाती है। अर्चना तो तब तक बिस्तर पर पड़ी रहती है जब तक विवेक खुद जग न जाए उन लोगों की चाय साढ़े नौ बजे बनना शुरू होती है, कालोनी में और भी नई बहुएँ हैं जो सवेरे जगकर सात बजे तक अपनी धूप आरती पूरी करके चाय बनाना शुरू कर देती हैं। सारी जिन्दगी मैंने छः बजे सवेरे बेड टी स्वयं पी और तुम्हें पिलाई, चाहे तुम्हारे आफिस में छुट्टी ही क्यों न रही हो। वही कमबख्त पुरानी आदत आज भी बरकरार है। मेरे हाथ-पैरों ने जवाब दे दिया मैं क्या करूँ ? मैं किचेन में खड़ी होकर कुछ काम नहीं कर पाती। मेरा दाहिना पैर बिल्कुल बेकार हो गया है। जिसकी हिस्ट्री तुमसे ज्यादा कौन जानता है ? मैंने तुमसे कई बार कहा है, तुम गैस का चूल्हा उतारकर नीचे फर्श पर रख दो, मैं किचेन के फर्श पर आराम से बैठकर रोज तुम्हें उम्दा चाय बना दिया करूँ, पर तुम मेरी बात इस कान से सुनते हो और उस कान से निकाल देते हो। मैं तुम्हारे साथ इतने दिनों से बेड टी पीते-पीते तुम्हारी तरह स्वयं भी आदी हो गई हूँ, तुम्हें शायद याद न होगा कि 31 दिसम्बर, 1980 को, मुझे तारीख अच्छी तरह याद है जब मैं तुम्हारे साथ इलाहाबाद के होटल समीरा के तीसरे मंजिल पर तीन-चार दिन ठहरी थी, तो रोज प्रातः तीन जीने नीचे उतरकर होटल का गेट खुलवाकर बाहर की दुकान से अपने थर्मस में चाय ले आती थी खुद पीती और तुम्हें भी पिलाती थी, हालाँकि इलाहाबाद में उन दिनों आँधी पानी के साथ कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी।"

"यह सब सच है, मैं तुम्हारी मनोभावनाओं की कद्र करता हूँ पर अब मैं चाहता हूँ कि कुछ दिनों, मैं तुम्हें अपने हाथ की बनी चाय पिलाऊँ, मैंने पतली कलाइयो और खनकती चूड़ियों वाले तुम्हारे हाथों की बनी चाय वर्षों तक पी है। लखनऊ, बाराबंकी, सीतापुर, हरदोई, उन्नाव, रामपुर और इलाहाबाद में अर्थात् जहाँ कही भी प्रदेश सरकार ने मेरा ट्रान्सफर किया वहाँ तुम्हारी बेड टी के प्याले से निकलती चाय की खुशबू ने मेरा प्रातःकालीन स्वागत किया। तुम्हारी इसी चाय की बदौलत मेरे शरीर में सारे दिन सतत चेतना और नई स्फूर्ति का संचार होता रहता और मैं तरोताजा बना रहता। जीवन के बहुमुखी संघर्षों में सदा विजयश्री प्राप्त करता रहा। मैं तुम्हारा कृतघ्न कैसे हो सकता हूँ ?

इस गहराते अन्धकार वाली तुम्हारी सन्ध्या में फ्रिज से निकालकर एक गिलास पानी पिला दूँ, जैसी-तैसी एक प्याला चाय बनाकर पिला दूँ, नहाने के बाद बाथरूम में पड़े तुम्हारे कपड़े साफ करके कम्पाउण्ड में लगे तार पर फैलाकर सुखा दूँ, उन पर कभी-कभार प्रेस कर दूँ, दिन में तीन-चार बार दवा पिला दूँ, तो यह कोई मेरे लिए अनोखी बात नहीं है। यह तो अच्छे संस्कार वाले प्रत्येक पति का पुण्य कर्तव्य है कि वह अपनी वृद्ध और रोगग्रस्त जीवनसंगिनी की तन-मन-धन से निष्ठापूर्वक सेवा करें" मैंने अपनी बात पूरी की।

"पर तुम कौन जवान हो ? मैं तुमसे केवल एक वर्ष छोटी हूँ। तुम्हारे पैरो मे आस्टियों आर्थोराइटिस का पुराना प्रकोप है, उठने-बैठने, चलने-फिरने, जीना चढने उतरने में तुम्हें भी पीड़ा अनुभव होती है। इसीलिए तुम्हारी पत्नी के नाते मैं बिल्कुल नही चाहती कि तुम मेरी किसी प्रकार की सेवा-शुश्रूषा करने का कष्ट करो।" मेरी ओर कृतज्ञतापूर्ण नेत्रों से देखते हुए श्रीमती जी ने कहा।

"नहीं मैं तुम्हारी यह बात नहीं मान सकता। तुम्हारी सेवा करने में मुझे सही मायने में आन्तरिक प्रसन्नता होती है। तुमने लगभग पचास वर्षों तक मेरी दुधमुँही सन्तानों की अपनी सुख-सुविधाओं को ताक में रखकर, अहर्निश सेवा की, क्या यह सत्य नहीं है ? चाय-नाश्ता, आफिस के लिए लंच तैयार करना, बच्चों को तैयार करके स्कूल भेजना, आफिस जाने की मेरी तैयारी में सक्रिय भूमिका निभाना, दिनभर फोन की घण्टी सुनना, हर शाम किचेन के लिए और बच्चों के लिए शापिंग करना, उनको स्कूल में दिया गया होमवर्क पूरा कराना, पानी, बिजली और टेलीफोन के बिल नियत तारीख पर जमा कराना, और मेरी व मेरे बच्चों की बीमारी में ट्रेंड नर्स की भाँति दवादारू और पथ्यापथ्य का नियमित प्रबन्ध करना और डा. की क्लीनिक के रोजाना चक्कर लगाना, सम्बन्धियों के घर शादी-ब्याह में शामिल होना, अदली, झाड-पोछा लगाने वाली नौकरानी और महरी के एक साथ ड्यूटी से अनुपस्थित हो जाने पर स्वयं उन लोगों के हिस्से का काम अकेले निबटाना न जाने कितने ऐसे काम गिना सकता हूँ जिन्हें तुम यन्त्रवत करके मुझे प्रदेश सरकार की उत्कृष्ट सेवा करने के लिए सदा चिन्तामुक्त रखती थीं। वही श्रीमती जी, जो मेरे घर की अजस्र ऊर्जा का प्रमुख स्रोत रही हैं, जो मेरे परिवार निदेशालय की एक सक्षम निर्देशिका के रूप में घर-समाज और मित्र-जनों में सदा सम्मानित और प्रतिष्ठित रही हैं, वृद्धावस्था और रोगग्रस्त होकर आज मेरी सेवा और मेरे शारीरिक सहयोग की पात्र हो गई हे। प्रभु ने यदि उनकी सेवा-शुश्रूषा करने का मुझे एक सुअवसर प्रदान किया है, तो मुझे उसका कृतज्ञ होना चाहिए साथ में तुम्हारा भी, क्योंकि तुम मेरी सेवा भावना से सन्तोष अनुभव करती हुई अन्य परिवार जनों की सेवा स्वीकार नहीं करतीं। शायद सच तो यह है कि मुझे तुम्हारे पास बैठकर तुम्हारी शारीरिक समस्याएँ सुनना, तुम्हारे बुखार का नियमित चार्ट बनाना, डाक्टर के परामर्श के अनुसार तुम्हें नियत समय पर दवा पिलाना, अपने हाथों काटकर तुम्हें सेब और अनार खिलाना, साँस तेज होने और हंफनी बढ़ जाने पर तुम्हारे गले के अन्दर इन्हेलर की दवा पास करना फिर तुम्हें आराम से सुला देना आदि कुछ ऐसे काम हैं जिन्हें कर लेने में मुझे जिस सुख और सन्तोष की सुखद अनुभूति होती है वह अनिर्वचनीय है। जो कुछ मैं अपना कर्तव्य पालन कर रहा हूँ, वह धर्म शास्त्र और नैतिकता के अनुकूल कर रहा हूँ। मदर टेरेसा तो जीवन भर असंख्य दीन-दुखियों, कष्टों में तड़पते गरीब रोगियों, अपग

और कोढ़ियों की निरन्तर परिचर्या करती रहीं और इस प्रकार दुनिया के दूसरे लोगो को भी दीन-दुखियों की सेवा करने का रास्ता दिखलाती रहीं।

अतः तुम्हें इस सम्बन्ध में अनावश्यक सोच विचार करना अथवा अपने मन में किसी प्रकार की हिचकिचाहट अनुभव करना सुखद पारिवारिक वातावरण तथा सन्तजनों द्वारा बतलाए गए सेवा, त्याग और प्रेम के सर्वमान्य सिद्धान्त के सर्वथा प्रतिकूल है।" इस प्रकार शाश्वती को मैंने अपने दृष्टिकोण द्वारा आश्वस्त कर दिया। वे उठकर बैठ गईं, कुछ कृपणतापूर्वक हँसीं और फिर पान खाने लगीं।

नवाँ अनुच्छेद

दिनांक 10 नवम्बर, 1999, समय प्रातः सात बजे। भइया दुईज के दिन प्रातःकाल ही मैं श्रीमती जी को लेकर राजाजीपुरम निवासी उनके मुँह बोले एक भाई के यहाँ ले जाया करता था, क्योंकि उनके अपना सगा भाई कोई नहीं था। वहाँ भेज देने के बाद मैं अपनी बहन शुक्ला खन्ना के यहाँ टीका कराने जाया करता था।

शाश्वती ने मुझे प्रतिपदा की शाम को ही बता दिया था कि मैं उन्हें भइया दुईज, जिसे वे यम-द्वितीया बतलाया करती थीं, की प्रातः नौ बजे एक किलो सेब और एक किलो रामआसरे की चौक वाली दुकान की ताजी मिठाई लाकर मारुति वैन में आराम से राजाजीपुरम उनके भाई के घर भेज आऊँ और फिर वहाँ से मे एल.डी.ए. कालोनी कानपुर रोड अपनी बहन के घर जाकर टीका लगवाकर राजाजीपुरम होता हुआ श्रीमती जी को साथ लेकर इन्दिरा नगर वापस पहुँचा दूँ। मैं शाश्वती की मनचाही व्यवस्था समय से पूरी करके जब उनके कमरे में प्रातः सात बजे पहुँचा तो वे थके मन, भारी-भारी ज्वरग्रस्त तन के साथ हलके-हलके कराह रही थीं। वे अपने बिस्तर पर निश्चेष्ट लेटी रहीं। मैंने जल्दी-जल्दी से दो कप चाय नीबू की बना डाली, एक कप उन्हें देकर दूसरा कप मैंने फटाफट पी डाला, पर उनका कप अपने पिए जाने की बेसब्री से प्रतीक्षा करता रहा।

काफी देर बाद अपनी चाय पीकर वे नकली मुसकान से बोलीं, "तुम तैयार होकर दस बजे तक घर से निकल जाओ, टीका लगवा और अपनी बहन के यहाँ हमेशा की तरह खाना खाकर राजाजीपुरम चले जाओ और वहाँ से मेरे तिवारी भैया को अपने साथ यहीं लेते आओ, क्योंकि मैंने सुना है कि वे लम्बी बीमारी के बाद अपने घर से अब बाहर निकलने लगे हैं।"

मैंने यह सुनकर श्रीमती जी से उत्कण्ठा के स्वरों में जिज्ञासा की, "एक दिन पूर्व निश्चित किया हुआ आज का कार्यक्रम तुम क्यों चेंज किए दे रही हो?"

उन्होंने अस्फुट शब्दों में संक्षिप्त उत्तर दिया, "मेरे सारे शरीर में आधी रात से बराबर पीड़ा हो रही है। बीच-बीच में हल्की सी ठण्डक मालूम पड़ जाती है। मेरा मन आज दिन भर बिस्तर पर लेटे रहने व टी.वी. देखने का है। मेरे कारण तुम अपना हमेशा वाला प्रोग्राम डिस्टर्ब न करो। तुम अकेले चले जाओ। मैं कुछ धूप निकल आने पर अपने नए गीजर के गुनगुने पानी में नहाऊँगी, भइया दुइज की परम्परागत पूजा करूँगी, हल्का खाना खाकर दोपहर को आराम करूँगी। शाम तक मेरी तबीयत अपने आप सुधर जाएगी। रात का खाना प्रेम से तुम्हारे साथ खाऊँगी।"

मैंने उनकी बातें सुनीं, गम्भीर मुद्रा में बिना कुछ प्रतिक्रिया व्यक्त किए चुपचाप गाडी लेकर बाहर निकल गया। आधे शहर की सड़कें नापता हुआ मैं अपनी बहन के घर पहुँचा। टीका लगवाया, मिठाई खाई, खाना खाया और उन्हें दक्षिणा देकर वापस राजाजीपुरम होता हुआ इन्दिरा नगर अपने आवास पर लौट आया।

शाश्वती के बेडरूम के अन्दर ज्यों ही प्रवेश किया, उन्हें प्रसन्न मुद्रा में बेठे और पान लगाते हुए देखकर मेरा दिन भर का कुम्हलाया मन और मुरझाया तन अपने आप कली की तरह खिल उठा।

मैंने उनके हाथ में खन्ना बहन जी का दिया मिठाई का गिफ्ट पैकेट, बनारसी पान का बीड़ा तथा उनके भैया तिवारी द्वारा दी गई साड़ी का एक पैकेट और दक्षिणा के रुपए उनके हाथों में एक-एक करके थमा दिए। वे शारीरिक दुर्बलता के कारण मेरे साथ यहाँ तक आने की हिम्मत जुटा नहीं पाए। आपकी भाभी जी के अनुचित अनुरोध पर मैंने आपकी ओर से आपके भैया के टीका कर दिया, एक पीस मिठाई खिला दी, गिफ्ट पैकेट उनके हाथों पर रख दिया, एक कप कॉफी पीकर तेज़ी से चला आ रहा हूँ।

श्रीमती जी का पहले से ही फेयर एण्ड लवली वैनिशिंग क्रीम लगा हुआ चेहरा पूरी तरह खिल उठा, उन्होंने पैकेट खोलकर मिठाई का निरीक्षण किया, एक पीस दूध की बरफी खाई, गुनगुना पानी पिया, दोनों मघई पान मुँह में दबा लिए, फिर हर्ष और उल्लास से परिपूर्ण मुद्रा में स्वतः कहने लगीं, "देखो मेरा मुँह बोला भाई जो कि मेरे चचेरे भाई का साढ़ू है, इस उम्र में भी मेरा कितना मान-सम्मान करता है। आजकल की कलजुगी हवा उसको छू नहीं गई है। अब तुम भी कपड़े बदल लो और मेरे पास आकर आराम कर लो। हाँ एक बात कहना तो भूल ही गई, कल डा अरुण शर्मा को घर पर बुलाकर मुझे दिखला दो। दो दिनों से मेरी हंफनी सवेरे-शाम बढ़ जाती है।"

"मैं खुश हूँ कि अरुण शर्मा को कल दिखला देने का प्रस्ताव तुम्हारी तरफ

से आया—मैं स्वयं यही सोच रहा था पर घर में सन्नाटा क्यों महसूस हो रहा है ?"

"बात यह है कि अर्चना अपने छोटे भाई रंजन के टीका करने बादशाह नगर चली गई है, विवेक व दोनों बच्चे साथ में गए हैं। ये लोग वहाँ से रात में खाना खाकर अपने लोगों का खाना भी साथ में लेते आएँगे।" श्रीमती जी मेरे प्रश्न का व्याख्यात्मक उत्तर देकर बाईं करवट लेकर आराम से लेट गईं। थोड़ी देर मौन रहने के बाद मेरी ओर मुँह घुमाकर दाहिनी करवट लेते हुए बोल पड़ीं, "मैंने सुना है गाजियाबाद वाली भाभी फिर बीमार हैं, इस बार वे काफी बीमार हो गई हैं। मेरी इच्छा है तुम उन्हें शीघ्र देख आओ।"

मैं यह सुनकर भी निरुत्तर रहा। मैंने बाईं करवट लेकर कादम्बिनी का तन्त्र-विशेषांक पढ़ना शुरू कर दिया।

कादम्बिनी का प्रस्तुत अंक देखकर मुझे निराशा हुई। श्री रामानन्द जोशी के सम्पादन काल से ही मैं कादम्बिनी का पुराना पाठक रहा हूँ। मैंने देखा कि अवस्थी जी के सम्पादन काल में यह पत्रिका अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की हो चुकी थी, पर अब वह शनैः-शनैः न जाने क्यों ह्रासोन्मुखी होती जा रही है। अब उसका मूल्य बिना किसी मूल्यांकन के सिद्धान्तों के आधार पर पच्चीस रुपए कर दिया गया है। पत्रिका के अन्दर सम्प्रति जिस कागज का प्रयोग किया जा रहा है वह घटिया किस्म का है, मामूली न्यूज पेपर वाला। प्रूफ रीडिंग ध्यानपूर्वक न किए जाने से शब्दों की वर्तनियों में प्रायः अशुद्धियाँ दृष्टिगोचर होने लगी हैं। सम्पादक के काल चिन्तन के उच्चस्तरीय दार्शनिक चिन्तन को छोड़कर अन्य प्रकाशित निबन्धों, कहानियों और कविताओं का स्तरीय लेखन घटता जा रहा है। चाटुकार लेखकों के द्वारा अपना एक काकर्स बना लिया गया है, जिनके लेख कुछ समय से प्रत्येक अंक में नियमित रूप से प्रकाशित किए जाते रहे हैं। पत्रिका का मूल्य बढ़ाकर समस्या की पूर्ति करने वालों की पुरस्कार राशि पुरानी दरों 200, 150 और 100 रुपए मात्र अभी तक चली आ रही है। पूँजीवादी प्रतिष्ठानों में कार्यरत बेचारा सम्पादक वह चाहे कितनी असाधारण प्रतिभा और अद्वितीय लेखन शैली का धनी क्यों न हो, अपने को असहाय अनुभव करता है न तो विश्वस्तरीय लेखकों के लेख प्राप्त कर सकता है और न ही श्रेष्ठ साहित्यकारों की रचना के अनुरूप उन्हें पारिश्रमिक ही दिला पाता है। औषधियों के सेक्स सम्बन्धी निकृष्ट कोटि के विज्ञापनों को कादम्बिनी में स्थान क्यों दिया जाता है ? मुखपृष्ठ पर हमेशा किसी सुन्दरी का ही आकर्षक चित्र क्यों मुद्रित किया जाता है, यह प्रश्न कई पाठकों द्वारा कादम्बिनी के प्रकाशक से विगत में पूछा जाता रहा है।

कादम्बिनी के स्थान पर 'हंस' और 'इण्डिया टुडे' के लेख विशेषकर उसका वार्षिक साहित्यिक विशेषांक पढ़कर हिन्दी के पाठकों को पर्याप्त चिन्तन सामग्री उपलब्ध हो जाती है। हाँ हंस के अंकों में साम्यवादी, दलितवादी, और नारीवादी नवीन विचार-

धाराओं के पीछे हिन्दी साहित्य का अनुचित विभाजन और राजनीतिकरण किया जा रहा है और साहित्य के शाश्वत और सार्वभौमिक आदर्श अब दुर्भाग्यवश मंचवादी सम्पादको की आँखों से ओझल होते जाएँगे। क्या नवोदित साहित्यकारों की मजबूत फौज साहित्य के राजनीतिकरण के आगे बढ़ते कदमों को रोक देने का संगठित प्रयास कर पाएगी ?

मैं साहित्य के वर्तमान सिकुड़ते रूप पर विमर्श करता हुआ अनायास सो गया। थोडी देर में कालबेल बजी, मैं अन्यमना होकर बिस्तर से नीचे उतरा। गेट खोलकर अर्चना, विवेक, श्रेयस और सौम्या को अपने साथ-साथ श्रीमती जी के बेडरूम मे सीधे ले आया। दोनों बच्चों के आ जाने से घर का सन्नाटा समाप्त हो गया, और उनकी खुशियों की चहल-पहल फिर शुरू हो गई।

सौम्या की नानी द्वारा भेजा गया बाक्स खोलकर मैंने शाश्वती के साथ रात का खाना खाया, अपनी सहृदय समधिन को अपना आशीष प्रदान करते हुए फिर लेट गया। श्रेयस अपनी दादी अम्मा को गले लगाकर प्यार करने लगा और बोला, "दादी दादी मेरा गाना सुनोगी ?"

"हाँ हाँ, क्यों नहीं सुनेंगे तुम गाओ तो।"

श्रेयस उचक-उचककर दोनों हाथों को हिलाते हुए गाने लगा, "इश्क बिना क्या जीना यारो, इश्क बिना क्या मरना यारो" इतना गाकर दूसरा गाना शुरू किया "मै तुम पै मरता हूँ" और "तेरी चाल बल्ले बल्ले।"

श्रीमती जी अपने पौत्र की मधुर आवाज में ये गाने सुनकर कहकहा लगाकर हँस पड़ीं। फिर कहने लगीं, "विवेक तुमने मेरे पोते को यही गाने याद कराए है क्या ? इसको ईश प्रार्थना की या राष्ट्रगान की दो-चार लाइनें कण्ठाग्र करा दो।" विवेक चुपचाप मुस्कराने लगा।

गाना ख़त्म करते ही श्रेयस ने भाँति-भाँति के नृत्य शुरू कर दिए, सौम्या ने दादी अम्मा के 'कत्थक' नृत्य के कई सुन्दर नमूने प्रदर्शित किए।

दादी यह सारा तमाशा देखकर बाग-बाग हो गईं, फिर बच्चों को अपने पास लिटाकर सुला लिया।

दसवाँ अनुच्छेद

अगले दिन यानी दिनांक 12-11-99 को आठ बजे सवेरे मैंने डा. अरुण शर्मा को फोन करके शाश्वती को घर आकर देख लेने का अनुरोध किया। पहले तो उन्होने

अपने स्वभाव के अनुसार कुछ नानुकुर की। फिर बाद में वे अपने आप आ गए। श्रीमती जी बाहर की बालकनी में बैठी हुई थीं और मैं अन्दर बैठा कुछ लिख रहा था।

डा. अरुण शर्मा ने श्रीमती जी को 'अम्मा' कहकर सम्बोधित करते हुए पहले तो नमस्कार किया, फिर उनका हालचाल पूछना शुरू कर दिया। इतने में मैं भी वहीं पहुँच गया। शारीरिक परीक्षण कर लेने के बाद उन्होंने मुझे बतलाया, "'अम्मा' की हीमोग्लोबिन बहुत कम हो गई है, इसी से साँस में हंफनी शुरू हो गई है। इन्हें ब्रांकाइटिस का आक्रमण नहीं हुआ, आप इन्हें कम से कम एक बोतल खून अवश्य चढ़वा दें। पालक, पपीता, गाजर, चुकन्दर, मूली आदि को पानी में अच्छी तरह से उबालकर जब आधा पानी शेष बचे, तो इन सारी चीजों का रस निकालकर, उसे छान लें, फिर नमक, काली-मिर्च और चार-पाँच बूँदें नीबू का रस मिलाकर उसे पिला दें। इस प्रकार तैयार रस का एक गिलास इन्हें शाम को चार बजे रोज पिलाया जाए, मीठे अनार दानों का एक गिलास रस इन्हें दस बजे यानी खाना खाने से पूर्व दिया जाए। 'इनफ्रान' के दस इन्जेक्शन, प्रति सप्ताह एक इन्जेक्शन दो बार के हिसाब से लगवा दिया जाए, दूध में थोड़ा प्रोटीनिक्स मिलाकर सवेरे चाय के स्थान पर देना शुरू करें, चाय बन्द कर दें। मेरा ट्रीटमेण्ट कम से कम एक महीने और अधिक से अधिक दो महीने चलेगा।"

मैंने डा. शर्मा को सधन्यवाद उनकी फीस देकर विदा कर दिया।

जब मैं घर के अन्दर आया तो श्रीमती जी मुझसे लाल पीली होकर बोलीं, "मेरी छोटी-छोटी तकलीफों के लिए डाक्टर को कब तक बुलाते रहोगे ?"

"जब तक मेरे पास ऊपर वाले का दिया हुआ पैसा शेष रहेगा, तुम्हारी अच्छी से अच्छी दवा करता रहूँगा।"

"क्यों ?"

"क्योंकि तुम मेरी पचास से अधिक वर्षों की जीवनसंगिनी हो, मेरी सर्वज्ञान सम्पन्न, हृदयेश्वरी हो, मेरे जीवन की रिक्तता भर देने वाली स्थायी अर्धांगिनी हो।"

"अपना मखौलपना बन्द करो। इस बुढ़ापे में मेरे शरीर को कोई न कोई रोग तो सताएगा ही, क्या जरूरी है कि हरेक आने वाले रोग की दवा की जाए।"

"हाँ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि रोग मनुष्य का शत्रु है, वह बढ़ जाने पर उसके प्राण भी हर लेता है। शत्रु से सदा सावधान रहकर अपनी रक्षा करनी चाहिए, पता नहीं शरीर के किसी कोने में कुण्डली मारे छिपा बैठा रोग कब उठ खड़ा हो और तुम्हें अपने बन्धन मे जकड़ ले।"

"मैं तुम्हारे तर्क से सहमत नहीं हूँ तुम चाहे जितनी मेरी दवा करो, स्पेशलिस्ट डाक्टरों को यों ही घर बुलाकर मुझे दिखलाते रहो, मेरे शरीर में छिपे रोग अब जाने वाले नहीं। तुमने प्रतापनारायण मिश्र की यह कविता शायद नहीं पढ़ी–

'हाय बुढ़ापा, तोरे मारे, हम तो अब नकुनाय गयन,
करत धरत कछु बनतै नाहीं, कहाँ जान, अरु कैसि करन,
छिनै मा चटक, छिनै मा मध्यम, जस बुझात खन होत दिया,
तैसे निखवख देख पड़त हैं, हमरी अक्किल के लच्छन,
दाढ़ी पर वहि बहि आवत है, कबहुं तमाखू जो फांकन।'

यद्यपि मिश्र जी की यह कविता मैंने वर्ष 1945 में अपनी हिन्दी की पाठ्य पुस्तक मे पढ़ी थी और मैं अब इसे आधी भूल भी गई हूँ, फिर भी कुछ गलत सलत पंक्तियाँ जो मुझे अब तक नहीं भूलीं, तुम्हें इसलिए सुना दीं कि तुम यह बात समझ सको कि बुढ़ापा मनुष्य के जीवन की एक अनिवार्य, किन्तु अनचाही प्रक्रिया है जिसके आते ही रोग-दोख शोक-सन्ताप सभी का एक साथ आना शुरू हो जाता है। महावैद्य धन्वन्तरि और हकीम लुकमान के पास भी बुढ़ापे की कोई दवा नहीं थी, और न है। उसे तो आना ही होगा यदि आज न आया तो कल तो आएगा ही। तुम अपने पैसे बेकार में यों ही बर्बाद करते रहो। तुमसे पैसे माँगती हूँ, तो तुम तुरन्त बोल उठते हो, महीने का अन्तिम सप्ताह है अब मेरे पास पैसे कहाँ बचे हैं। सरकार मुझे महीने में एक बार पेंशन देती है, दो बार नहीं। इस समय मैं तुम्हें कुछ नहीं दे सकता, तुम मुझे स्वयं कुछ पैसे उधार दे दो, मैं पहली तारीख को मुँहमाँगे ब्याज सहित तुम्हारा पैसा वापस कर दूँगा। एक ओर तुम अपनी आर्थिक विवशता की इस प्रकार नुमाइश करते हो, तो दूसरी ओर डाक्टर को घर पर बुलाकर चुपके से उसकी फीस दे देते हो। तुम्हारा यह बहुरुपयापन समझ में नहीं आता। अब मैं किसी डाक्टर की दवा नही करूँगी, दवाओं के अन्दर कोई अमृत थोड़ी मिला है जो खाते ही मुझे अमरत्व प्रदान कर देगा। मैं जीवन के चौहत्तरवें वर्ष में रेंग रही हूँ, अब मुझे और अधिक जीकर न तो कोई कलमी आम का बाग लगाना है और न चारों धाम की यात्रा पर जाना है। तुम मुझे यह समझाना छोड़ दो कि पश्चिमी देशों में जरा-संस्कृति, जरा-नियमन, जरा-निवारण और जरा-विज्ञान के अछूते क्षेत्रों में वहाँ के कुशल चिकित्सकों ने वर्षो अनुसन्धान करके ऐसी औषधियाँ खोज ली हैं, जिनके प्रयोग से बुढ़ापा देर में आता है और मनुष्य सरलता से दीर्घायु प्राप्त कर लेता है, शारीरिक चय-अपचय की प्रक्रिया सामान्य हो जाती है, स्मरणशक्ति, श्रवणशक्ति और नेत्र-दृष्टि अपना कार्य पूर्ववत करने लग जाती है।

हमारे देश में भी च्यवनप्राश का सेवन करके च्यवन ऋषि बुढ़ापे में शक्तिपूर्ण हो गए थे पर क्या वे मृत्यु-मुख से अपने को बचा सके ? आज की विकसित दुनिया

की बड़ी-बड़ी राजनीतिक हस्तियाँ, नामी-गिरामी डाक्टर और शीर्षस्थ रसायन-शास्त्री अपने प्राणों की सतत रक्षा करके, मृत्यु की त्रासदी से अपने को दूर क्यों नहीं रख पाते ? जिसको सुनो, हृदयाघात, कैंसर, एड्स, गुर्दा-फेल, मानसिक पक्षाघात से मरता चला जा रहा है।

हाँ, इतना अवश्य स्वीकार किए लेती हूँ कि चिकित्सा-जगत् के नए-नए अनुसन्धानों से हमारे देश में शिशुओं की मृत्यु दर में कमी हो गई है, और मनुष्य की औसत आयु बढ़ गई है, अकाल मृत्युदर और महिलाओं की प्रसवकालीन मृत्युदर में काफी कमी आ गई है।

पर इन बहुचर्चित उपलब्धियों से अभी तक मनुष्य की वयोवृद्धता के क्षेत्र में कुछ खास असर नहीं पड़ा है।

मैं तुम्हें अपनी दवा अपने आप बतलाए दे रही हूँ। मुझे मनचाहा खाना खिलाओ, जिसमें दूध की ताजी बर्फी और कलकत्ता स्वीट हाउस चारबाग के सफेद रसगुल्ले शामिल हों। दार्जिलिंग की खुशबूदार कड़क चाय पिलाओ, बनारसी मघई पान में तुलसी तम्बाकू खिलाओ—यही मेरी रोग निवारक सर्वोत्तम औषधियाँ हैं। डा. अरुण शर्मा मुझे दूध में प्रोटीनिक्स मिलाकर पीने को बतला गए हैं। मैंने जब दूध पीना चाहा मेरा पेट खराब हो गया, मुझे बार-बार डायरिया का शिकार होना पड़ा, जब कभी ताकत के इन्जेक्शन लगवाए, सुई लगने की जगह पर गिल्टी पड़ गई और महीनों दर्द होता रहा। अब मैं किसी डाक्टर की कोई दवा नहीं खाऊँगी।''

''अब कुछ देर चुप रहकर मेरी बात सुन लो'' यह कहकर मैंने श्रीमती जी को चुप कर दिया।

''तुम्हें होमियोपैथी की दवाओं पर विश्वास है। अतः मेरी राय मानो कि तुम अशरफाबाद चलकर अपने पुराने होमियोपैथ डा. शुक्ल का इलाज फिर शुरू कर दो'' मैंने शाश्वती को परामर्श दिया। ''माता जी अशरफाबाद नहीं जाएँगी'' अर्चना और विवेक दोनों एक साथ बोल पड़े। विवेक ने अपनी माता जी के चेहरे को देखते हुए मुझसे कहा, ''आप इन्हें डा. रामप्रकाश मिश्र एम.बी.बी.एस., एम.एस. होमियोपैथ को एक बार फिर दिखला दें। वे इनके पुराने चिकित्सक रह चुके हैं, कालेज में एनाटमी के विभागाध्यक्ष रह चुके हैं, तीस वर्षों से होमियोपैथिक चिकित्सक के रूप में नाम कमा चुके हैं। जब-जब आपने डा. मिश्र से माता जी का इलाज करवाया, यह ठीक हो गई'' मेरी विवेक की वार्ता के दौरान गेट की कालबेल किसी ने जल्दी में जोर से बजा दी, कुछ देर रुककर दुबारा बजाई, फिर वह कालबेल को काफी देर तक बजाता ही रहा। शायद इस भ्रम में कि मेरे घर में बिजली नहीं आ रही है। मैंने बाहर जाकर झाँका तो देखा शाश्वती के भतीजे डा. बुद्धू होमियोपैथ गेट पर खड़े हैं। गेट खोलकर मैंने उन्हें श्रीमती जी के बेडरूम के अन्दर बुला लिया और कहा,

"लो तुम्हारा भतीजा यानी होमियोपैथी का सरकारी डाक्टर घर आ गया है, कुछ दिन इससे अपनी चिकित्सा करवाओ।"

यह सुनकर डा. बुद्धू ने अपनी बुआ जी की बीमारी का आदि से अन्त तक प्रश्नवाचक शैली में हालचाल पूछा। अपनी बुआ जी की हीमोग्लोबिन ठीक करने के लिए अपने ब्रीफकेस से हीमोबिट नाम की एक टानिक की शीशी निकालकर दे दी और खाना खाने के बाद दोनों समय दो-दो टी-स्पून दवा पीने को कहा। बायोकेमिक दवाओं की दो शीशियों को देते हुए कहा, "बुआ जी प्रत्येक शीशी से चार-चार गोलियाँ निकालकर आधे कप गुनगुने पानी में डालकर घुला दें और तीन-तीन घण्टे के बाद उस पानी को पीती रहें। आयरन की कमी को दूर करने के लिए हरे साग खाइए, खुश रहिए, खूब हँसिए। हँसना हीमोग्लोबिन बढ़ाने की सबसे सस्ती दवा है। मैं सीधे घर से यहीं आ गया था, अब मुझे अपनी क्लीनिक जाने की इजाजत दीजिए। मेरे मरीज बैठे मेरा इन्तजार कर रहे होंगे"—यह कहकर मुस्कराते हुए डा. बुद्धू ने बुआ जी के पैर छुए और बाहर चले गए।

ग्यारहवाँ अनुच्छेद

नवम्बर 99 का महीना न जाने कब और कैसे खत्म हो गया ? मुझे ऐसा लगा जैसे कि इस बार मेरे जीवन में नवम्बर का महीना आया ही न हो। मैंने अभी तक अपने वूलेन्स मर्करी-लांड्री में धुलवाए भी नहीं थे। यह बात और है कि पुराने ऊन की जोड-गाँठ करके शाश्वती द्वारा गत वर्ष डिजाइनदार बुना हुआ स्वेटर मैं सवेरे शाम अपने शरीर पर डाल लेता था।

हर महीने की पहली तारीख को अपनी अफसरी की पुरानी आदत से मजबूर मै अपनी पेंशन लेने स्टेट बैंक की मुख्य शाखा जरूर जाता था। अतः मैंने अपनी अलमारी से हलके सलेटी कलर का एक टेरीवूल का नया सूट निकाला, पड़ोस में प्रेस करने वाली से मैंने उसे प्रेस करवा लिया। फिर गले में मैचिंग टाई बाँधकर आज प्रेस किया हुआ सूट पहन लिया। अलमारी के बड़े शीशे में जब अपनी शक्ल ध्यान से देखी, तो वह मुझे बिल्कुल दो कौड़ी की दिखी। मुझे अपने पर हँसी आ गई, मैं अपने ही चिरपरिचित शीशे में ऐसा दिख रहा था जैसे कि किसी कमजोर बूढ़े बन्दर को सूट में फँसा दिया गया हो। दुबली-पतली गर्दन, नीचे उतरे हुए कन्धे, हवा निकले गुब्बारे की तरह पिचके-पिचके गाल, विरोधी राजनीतिक पार्टियों की तरह

रह-रह कर अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने वाली कृत्रिम दन्तावली, कानों पर अपनी स्थिरता के बावजूद नाक पर बार-बार नीचे खिसक आने वाली ऐनक, कमर के नीचे का पिछला मांसल हिस्सा गायब, जैसे किसी जंगली जानवर ने उसे खा लिया हो। बहरहाल मेरी शक्ल किसी कुशल व्यंग्यकार द्वारा बनाए गए व्यंग्य चित्र अथवा किसी घटिया सरकस के जोकर की तरह दिख रही थी।

मैं मजबूर होकर सोचने लगा, जब मैं अपने प्रेजेण्ट फार्म में स्वयं को ही उपहासात्मक दिख रहा हूँ, तो वैंक के 'टेलर' काउण्टर पर जो अन्य मित्रगण देखेंगे, उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी ? वैसे कटु सत्य तो यह है कि टाई सूट में सजे नब्बे प्रतिशत रिटायर्ड आफिसर्स दर्शकों को खूसट दिखते हैं, पर किसी सुखद मृगमरीचिका के पीछे दौड़ते रहने का आदी मैं अपने को इन खूसटों की श्रेणी से किसी भ्रमवश सर्वथा पृथक् समझता था। मुझे इस हकीकत का पता नहीं था कि मेरी श्रीमती जी अपनी दस-ग्यारह महीनों की बीमारी में मेरी हुलिया इस तरह बिगाड़ देंगी। ऐसे बिगड़ैल मूड में अपनी हार मानकर मैंने अपना फर्स्ट क्लास का सिला हुआ सूट तुरन्त उतारकर हैंगर में लटका दिया और अपने को आश्वस्त करने लगा कि शाश्वती का स्वास्थ्य सुधार हो जाने पर मेरा डगमगाया स्वास्थ्य अपने पुराने फार्म में पुनः लौट आएगा और अगर यमराज मेरे घर का पता एक वर्ष तक और न लगा पाए तो मैं यही सूट पहनकर स्वस्थ शाश्वती के साथ हजरतगंज के सीमल स्टूडियो में अपने कपल का लेटेस्ट फोटो खिंचवाऊँगा।

थोड़ी देर में मैंने एक डार्क कलर का रेशमी खद्दर का कुर्ता-पायजामा धारण कर लिया, ऊपर से जवाहर बण्डी सजा ली, फिर बिना नेता की सरकार की भाँति नंगे सिर गेट से बाहर निकल पड़ा। किराये की टाटा सूमो में बैठकर जब मैं हजरतगज क्रासिंग पर उतरा तो मेरे एक सहपाठी भूतपूर्व आई.ए.एस. अधिकारी मुझसे टकरा गए। वे भी स्टेट बैंक की मुख्य शाखा जाने के लिए चौराहे की लाल बत्ती के कारण गाड़ियों की लम्बी लाइन में फँसे ग्रीन ट्रैफिक सिगनल की प्रतीक्षा कर रहे थे। मुझे जेबरा लाइन पार करते देख वे मुस्कराकर जोर से बोले, आइए, इधर आ जाइए वाजपेयी जी! मैं भी वहीं चल रहा हूँ जहाँ के लिए आप निकले हैं। उन्होंने सफेद पुरानी फियेट की खिड़की खोल दी मैं उनके बाएँ आराम से बैठ गया, खिड़की अच्छी तरह से बन्द कर ली। रास्ता खुलते ही अपनी बुढ़िया सवारी को ड्राइव करते हुए और हजरतगंज की मौजूदा दुर्दशा पर नकली आँसू बहाते हुए हम दोनों बैंक पहुँच गए।

भुगतान टेलर पर पहुँचते ही, वृद्धों का सम्मान करने वाले और हँसमुख कैशियर रस्तोगी जी ने मेरी चेक का भुगतान नए-नए पचास और दस-दस के नोटों की गड्डियो से तुरन्त कर दिया। मैं इधर-उधर बैंक के अपने मित्रों से मिला, हरेक ने श्रीमती

जी के स्वास्थ्य के विषय में चिन्तापूर्ण जिज्ञासा की, मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि मेरी श्रीमती जी अपनी संघर्षपूर्ण वृद्धावस्था सुख-दुःख, आनन्द और कष्टों के अभूतपूर्व सन्तुलन के साथ न जाने कैसे व्यतीत कर रही हैं। कभी तोला तो कभी माशा। कभी बिल्कुल ठीक लगती हैं, तो कभी उनसे ज्यादा बीमार कोई अन्य महिला नही दिखलाई पड़ती। मेरे सभी बैंकीय मित्रों ने ईश्वर से प्रार्थना की कि मेरी श्रीमती जी शीघ्र स्वस्थ हो जाएँ और मेरे बाद वे ही मेरी पारिवारिक पेंशन प्राप्त करके कुछ दिन पेंशनरों की सूची में अपना नाम दर्ज करवा लें।

बैंक में इस प्रकार मैं अपना काम फटाफट निपटाकर जब घर पहुँचा तो देखा कि मेरी शाश्वती जी यानी सरस्वती वाजपेयी यानी श्रीमती लक्ष्मी जी अत्यन्त उल्लास की मुद्रा में आकर्षक डार्क ग्रीन रंग की साड़ी पहने और काले रंग का कश्मीरी शाल ओढे बेड पर टेक लगाए बैठी हुई हैं। मुझे देखते ही खुलकर मुस्कराई और बोली "लाओ तुम्हारी पेंशन के रुपए मैं गिनूँगी।" उन्होंने पेंशन के रुपए सावधानी स गिनकर अलग-अलग रखे, फिर तीन हजार रुपए दस-दस रुपए वाली तीन नई गड्डियो को निकालकर अपनी पर्स में रख लिया, दुबारा मुस्कराकर बोलीं, "सौ-सौ रुपए रोज खर्च करूँगी तो तीस दिनों तक मेरे सारे रुपए चल जाएँगे। मैं घर के बाहर तो आती जाती नहीं, अगर बाहर चलने की नौबत आ गई तो तुमसे और पैसे ले लूँगी।"

मैंने प्रसन्नतापूर्वक उनकी हाँ में हाँ मिलाई और अपने पास बची पचास रुपए के नए नोटों की एक गड्डी अपने बाक्स में सुरक्षित रख दी, फटाफट कपड़े उतारे, घर के कपड़े पहनकर श्रीमती जी के पास उन्हीं का कम्बल ओढ़ कर दीवाल से टेक लगाकर बैठ गया। वे हमेशा की पहली तारीखों की तरह आज भी खुश दिख रही थीं, उनके चेहरे से फेयर एण्ड लवली क्रीम की हल्की-हल्की महक निकल रही थी, मुँह से तुलसी तम्बाकू की खुशबू रुक-रुक कर बाहर निकलने की कोशिश कर रही थी। मुझे देखकर थोड़ी देर प्रेमपूर्ण दृष्टि मेरे सारे खुले शरीर पर डालती रहीं—फिर हँसती हुई कहने लगीं, "तुम यही नेता स्टाइल की वर्दी पहना करो, उसमें तुम अधिक स्वस्थ लगते हो, मेरी बात मानो। सारी जिन्दगी तुम नेताओं को गाली देते रहे, उनके रिश्वत काण्डों के अनेक अखबारी किस्से सुनाते रहे। सी.बी.आई. की जाँच में आरोप सिद्ध हो जाने, न्यायालय द्वारा उनके जेल में बन्द हो जाने और फिर चन्द दिनो मे जेल से छूटकर बाहर आ जाने और अपनी पुरानी सरकारी कुर्सी पर पुनः शोभायमान हो जाने के तमाम किस्से तुमने मुझे सुना रखे हैं। मैं समझती हूँ कि इस कुर्ते-पायजामे मे कुछ जादू जरूर है। शायद उनका पायजामा उन्हें जेल के सीखचों के पीछे बन्द करा देता है, पर उनके कुर्ते की जेबें उन्हें जेल से बाहर छुड़ा लाती हैं। तुम भी यही पोशाक अपना लो, सफेद खद्दर के जेबदार छः कुर्ते सिलवा लो और रोज चमाचम कुर्ता-पायजामा पहनकर बाहर निकला करो। थोड़ी देर कॉफी हाउस में बैठो, थोड़ी

देर सत्ता के गलियारों का चक्कर मारो, तुम्हारा समय मजे से कटता रहेगा और घर-कैद से तुम्हें मनचाही छुट्टी मिल जाएगी।"

"तुम्हारे इस बहुमूल्य सुझाव के लिए धन्यवाद। मेरे पास कुर्ते-पायजामे बहुत हैं, अब तक उन्हें पहनकर मैं या तो बाथरूम जाता था या रात में तुम्हारे पास सोता था, पर कभी भी घर से बाहर नहीं निकलता था। आज तुम्हारी ओर से यह सरकारी प्रस्ताव प्राप्त हुआ है, मैं अपनी तीसरे मोर्चे वाली मित्र-मण्डली में इस बिन्दु पर पहले विचार करूँगा।"

इस रोचक वार्तालाप में विघ्न डालती हुई अर्चना गर्मागर्म कॉफी के नए मग लेकर कमरे में आ धमकी और बोली, "पिताजी शीत लहरी के कारण आज ठडक ज्यादा पड़ रही है, मैं कॉफी बना लाई हूँ। आप बैंक से ठंडक में चले आ रहे है। आप कॉफी पीकर कुछ देर आराम कर लीजिए। मैं अपनी चाची जी को देखने बादशाह नगर रेलवे कालोनी जा रही हूँ, कई दिनों से उनके अस्वस्थ होने का समाचार फोन द्वारा मिल रहा है। मैं रात में नौ बजे तक वहाँ से वापस सौम्या के पापा जी के साथ आ जाऊँगी और आप लोगों का रात का खाना भी साथ लेती आऊँगी, मै सौम्या और श्रेयस को लेकर जा रही हूँ, गेट बन्द कर लीजिए। यदि उनके कोई फोन्स आएँ तो नोट कर लीजिएगा।"

यह कहते हुए वह चली गई। मैंने गेट बन्द कर लिया। पाँच-छः कमरे का खूब खुला हुआ आवास। लान में खुशबूदार फूलों वाली बेलें, सामने एक सुविस्तृत हरा-भरा पार्क, जिसके चारों ओर लहलहाती बेलें, मुलायम मखमली घास का लम्बा-चौड़ा लान, यानी सब कुछ मिलाकर एक नयनाकर्षक परिदृश्य। मैंने कुछ समय उस पार्क के मोहक पर्यावरण में टहलना चाहा। मैं कुछ देर टहला भी, पर अकस्मात् मेरे सामने घर की महरी वहाँ आ पहुँची, जोर से बोली, माता जी आपको बुला रही हैं। मैं घबड़ाता हुआ लम्बे पाँव उनके पास पहुँच गया, देखा कि श्रीमती जी इस समय अपनी स्वाभाविक युवाकालीन मुद्रा में डायनिंग टेबल पर बैठी हैं और उनके सामने दो छोटी प्लेटें महकते हुए देसी घी के हलुवे की विराजमान हैं, नई केटली में चाय दो प्यालों के साथ काली आयताकार ट्रे में रखी है, मैंने देखते ही अचरज में प्रश्न किया "यह हलुआ किसने बना लिया ?"

"मैंने।"

"तुमने ?"

"हाँ-हाँ मैंने। इसमें अचरज की क्या बात है ?"

"बात यह है कि सामने के पार्क में गए हुए मुझे अभी मुश्किल से बीस-पच्चीस मिनट ही हुए होंगे और इतनी देर में तुमने हलुआ कैसे तैयार कर लिया ?"

"हलुआ कैसे तैयार कर लिया ? क्या हलुआ बनाने में देर लगती है ?"

"इस समय कुछ मीठी चीज खाने का मन कर रहा था, सोचा तुमसे अगर भूतनाथ जाकर दूध की बरफी लाने को कहूँगी तो तुम मुझे चिकित्सा-शास्त्र में, पैंक्रियाज, इन्सुलिन, रक्त-शर्करा आदि पर अपना रटा-रटाया भाषण सुनाना शुरू कर दोगे। तुम्हारे सूखे भाषण से मेरी ज़बान को मिठास का स्वाद नहीं मिलेगा ऊपर से नए महीने की पहली तारीख से ही अप्रिय वाद-विवाद का श्रीगणेश हो जाएगा जो सारे महीने चलेगा। मैं ही थोड़ा शारीरिक कष्ट झेलकर क्यों न घर में कुछ बना लूँ, यही सोचकर मैंने देशी घी में हलुआ बना डाला, ऊपर से चिरौंजी और कद्दूकश में कसा हुआ काजू-पिस्ता डाल दिया।" न जाने क्या बात है मुझे कुछ महिलाओं द्वारा हलुवे के ऊपर गरी का सफेद बुरादा डाल देना बहुत खराब लगता है।

"तुम पहले खाकर देखो फिर फालतू फण्ड की बातें सुनो" शाश्वती ने मुझसे अनुरोधपूर्ण स्वर में कहते हुए मेरे हाथ में चम्मच पकड़ा दिया। मैंने एक बड़ा चम्मच हलुआ मुँह में रखा, फिर खाने में सचमुच मजा आ गया। गर्मागर्म देशी घी का मुलायम हलुआ जिसको किशमिश, चिरौंजी और काजू-पिस्ता आदि ने विशेष स्वाद प्रदान कर दिया था।

जवानी के दिनों में प्रातःकाल के नाश्ते में इसी तरह का हलुआ खाने की मेरी पुरानी आदत थी। हलुआ खाकर मेरी तबीयत खुश हुई, तो मैंने श्रीमती जी से मजाक में कहा, "तुमसे शादी करने के पूर्व मैं केवल सूखे रवें की तरह किसी कसे ढक्कन वाले डिब्बे में बन्द रहता था, तुमसे शादी कर लेने के बाद इसी हलुवे की तरह मेरे जीवन में एक अजब तरह की मिठास, खुशबू और जायका और फैलाव आ गया। मेरे जीवन के लम्बे चौहत्तर वर्ष एअर-कण्डीशण्ड सिनेमा हाल में तीन घण्टे की अमिताभ बच्चन की किसी नई फिल्म की तरह खत्म हो गए। काश! मेरा बाकी जीवन इसी तरह तुम्हारे साथ नदी में नाव की भाँति चलता रहे। इस समय अगर तुम न होतीं तो मैं घर में अकेला लेटा हुआ पिंजड़े के पंछी की तरह किसी अख़बार का सम्पादकीय पढ़ता होता या अपने किसी छात्र जीवन के अन्तरंग मित्र से फोन पर लन्तरानी हाँकता होता। बुढ़ापे में साहूकार के कर्जे पर ब्याज की तरह पत्नी महत्त्व बढ़ जाता है।" यह कहते हुए मैंने श्रीमती जी की ओर निश्चल दृष्टि से देखा।

"क्यों ?" शाश्वती ने विस्मय की भाषा में मुझसे प्रश्न किया।

"क्योंकि बूढ़े की पत्नी एक ऐसी डिक्शनरी होती है जिसमें जीवन का प्रत्येक शब्द ढूँढ़ते ही मिल जाता है।" मैंने शाश्वती की ओर सराहनापूर्ण दृष्टि से देखा।

"पर मेरे कोश में तुमको आज कौन सा नया शब्द ढूँढ़ते ही मिल गया है ?" शाश्वती ने उत्कण्ठापूर्वक मुझसे ही प्रश्न कर लिया।

"जीवन की मधुरता" मैंने संक्षिप्त उत्तर दे दिया।

"कैसे ?"

"मैं सामने पार्क के लान पर टहल रहा था, साथ में ही चारों ओर बने ऊँचे-ऊँचे मकानों के बनते-बिगड़ते रंग देख रहा था, फिर मुझे मकानों के अन्दर रहने वाले पति-पत्नियों का स्मरण हो आया, सोचने लगा कि हर मकान में प्रायः युवा-दम्पतियो के साथ वृद्ध-दम्पति भी दृष्टिगोचर हो जाते हैं एक मिश्रा जी, दूसरे सक्सेना जी ओर तीसरा मैं स्वयं। ये तीनों महानुभाव कितने सौभाग्यशाली हैं, भरा-पूरा सुखी जीवन और ऊपर से वृद्धावस्था का दाम्पत्य सुख इसी सोच विचार के बीच मेरे मस्तिष्क मे एक कौंध सी चमकी, यदि पति-पत्नी में एक व्यक्ति न रहे तो दूसरा बचा हुआ व्यक्ति वाल्मीकि के क्रौंच पक्षी की तरह वियोग जनित पीड़ा से तड़प-तड़प कर अपने प्राण भी त्याग सकता है।"

"पता नहीं इन दिनों तुम अनर्गल बातें क्यों सोचने लगे हो ? इस दुनिया मे आए, प्रत्येक प्राणी की एक जीवन-सीमा निश्चित होती है उससे अधिक कोई भी प्राणी अपने वर्तमान स्वरूप में नहीं रह सकता। ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील हे, उसके वर्तमान स्वरूप का विनाश आज नहीं तो कल निश्चित है। प्रलय होने पर जब सृष्टि की सभी जड़ और चेतन वस्तुएँ परम तत्व में संविलीन होकर अदृश्य हो जाती हैं, तो क्षुद्र मानव शरीरधारी इस चिरन्तन सत्य का अपवाद कैसे हो सकता है ? मैंने गीता पढ़ी है पर तुम तो रोज स्नान करते ही गीता का पाठ जोर-जोर से शुरू कर देते हो। तुम पढ़ते हो, मैं ध्यानपूर्वक सुनती हूँ। "देहिनोऽस्मिन यथा देहे कौमारम् यौवनम् ज़रा, तथा देहान्तर्प्राप्तिर्धीरस्तत्रन मुह्यति" रोज सुनते-सुनते गीता के दूसरे अध्याय का यह श्लोक मुझे याद हो गया है। मैं समझती हूँ कि इस मनुष्य के शरीर में जिस प्रकार बचपन, जवानी और बुढ़ापा क्रमशः आता रहता है, उसी प्रकार बुढ़ापे के बाद अन्य शरीर धारण कर लेना एक शाश्वत प्रक्रिया है, शरीर परिवर्तन के लिए प्रत्येक वृद्ध पति और पत्नी पुरुष और नारी को प्रसन्नतापूर्वक तत्पर रहना चाहिए, इस परिवर्तन की क्रिया में किसी प्रकार का दुःख अनुभव नही करना चाहिए।"

श्रीमती जी द्वारा गीता के उपर्युक्त श्लोक की सुगम व्याख्या किए जाने पर मेरे मस्तिष्क में क्या प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई यह मेरा दिल ही जानता है, पर एक बात जो मैंने उनसे कही थी वह थी, पत्नी का वियोग सज्जनों के लिए सदा कष्टकर होता है। चाहे युवावस्था के तुलसी या नेहरू रहे हों, चाहे वृद्धावस्था के राष्ट्रपिता या टी रामाराव रहे हों। पत्नी के बिना अधूरा जीवन प्राणदण्ड की तरह भयावह है। एक ऐसा कालचक्र है जिसमें हमेशा रात्रि का अन्धकार ही छाया रहता है, दिन का प्रकाश कभी नहीं दिखलाई पड़ता। मैंने अपने मित्र कपूर को, जो भारतीय पुलिस सेवा के सेवानिवृत्त अधिकारी हैं, अपने बंगले के लान में कुर्सी पर बैठे अकेले आँसू

बहाते देखा था, हालाँकि यह और बात है कि मुझे देखते ही उन्होंने जल्दी से अपने ऑसू पोंछ लिए थे। जब मैं उनके बंगले के सामने से गुजरता और उन्हें देखता तो, वे मुझसे कई बार रोते हुए कहते, मेरे जीवन से सुधा जी चली गईं, अब तो केवल प्राण-घातक विषाद का कड़वा विष बच रहा है, जो मुझे तड़पा-तड़पाकर एक दिन समय से पूर्व ही मार डालेगा। उनकी करुणा मिश्रित वाणी, उनके अश्रुपूर्ण नेत्र, कँपकँपाता बलिष्ठ शरीर और ऑखों से उतरा हुआ चश्मा, जिससे उनकी फूली हुई ऑखें प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ती थीं, मुझे कभी नहीं भूलता। मुझे भी एकान्त में बैठकर उनकी तरह रोना पड़ेगा ? मेरा करुण क्रन्दन जमीन और आसमान के अलावा कौन सुनेगा ? दुष्ट दुनिया मेरा उपहास करने में पीछे नहीं रहेगी।

दैनिक मदिरा पान के प्रेमी और प्रत्येक रात्रि एक नई नारी से शारीरिक सम्पर्क साधने वाले पाशविक प्रकृति के मनुष्य रूपी पशु मेरी सहज संवेदनाओं का उपहास उडाएँगे, "देखो यह वृद्ध व्यक्ति पत्नी की मृत्यु पर पागलों की भाँति आँसू बहा रहा है। छिप-छिप कर अपने घर में कैसा रोया करता है, कितना अविवेकी है यह व्यक्ति ? एक पेग व्हिस्की पीकर शान से यह अपनी रात क्यों नहीं बिताता ? यह कितना मूर्ख व्यक्ति है ? दौलत होते हुए भी ज़िन्दगी के मजों से महरूम होकर पार्क के कोने में पड़ी बेंच पर अकेला बैठकर न जाने क्या-क्या सोचा करता है ? यह बेचारा इस दुनिया में जीने की कला भी नहीं जानता। इसका कोई मित्र इसे समझाता क्यों नहीं ? यदि दुनिया में आराम से जीना चाहते हो तो गमों से दूर रहो, दुःख और ऑसुओं को अपने पास फटकने न दो, खाओ पियो और मौज करो, रात में किसी उष्ण निशा-संगिनी के साथ अपनी शीतल शय्या को उष्णता प्रदान करो। दूसरे दिन नए उत्साह और नई स्फूर्ति के साथ जागो, अपने विधुर जीवन को प्रतिदिन एक नई दिशा प्रदान करो।"

मेरे वियोग की अहर्निश बढ़ती सम्भावनाएँ और आसन्न और दुःखद भविष्य के प्रति मन में निरन्तर समाया एक अमूर्त भय--इन बिन्दुओं पर मेरी बातें सुनकर श्रीमती जी गम्भीर हो गईं, उनकी अब तक सुन्दर दिखने वाली आँखों में आँसू छलक आए, उन्होंने मुझसे पूछा, "तुम बचपन में सुनी इस कहावत को क्या भूल गए ? न बारे की माँ मरे, न बूढ़े की जोय" मैंने नकारात्मक मुद्रा में अपना सिर हिला दिया और झूठ बोल गया, "अगर सुना भी होगा तो भूल गया हूँ। ऐसी कहावतों से मेरा क्या वास्ता।" उनकी मेरी प्रेम, करुणा, वियोग, वैधुर्य, सृष्टि के दार्शनिक कालचक्र आदि पर बातें होती गई और मेरे चाय के प्याले में बची आधी चाय बिल्कुल ठण्डी हो गई। मैंने उसे फेंक दिया। श्रीमती जी मेरी बातें सुनकर डायनिंग टेबल से उठकर अपने बेडरूम में चली गईं, एक मघई पान मुँह में रखकर मेरे सिर पर हाथ रखते हुए बोलीं, "थोड़ी देर के लिए चुपचाप सो जाओ तुम बहुत बोलते हो।"

बारहवा अनुच्छेद

धीरे-धीरे दिसम्बर का महीना सुरसा की भाँति अपने हाथ-पाँव पसारने लगा, सवेरे शाम की ठण्डक तो बढ़ी ही, रात की टण्डक बहुत कष्टकारी लगने लगी। रात मे सोते-सोते लिहाफ छोड़कर ट्वायलेट जाने का विचार शरीर को कँपकँपा देता था। मेरे पितामह आचार्य ब्रजभूषण वाजपेयी की हास्य-व्यंग्य की 'लघुशंका-शतक' की एक पंक्ति मुझे न जाने कैसे स्मरण हो आई 'जाड़े की लघुशंका गढ़ लंका की चढ़ाई है' पहली नींद तो गहरी आ जाती, एक बजे रात को हम दोनों में कोई न कोई तो उठता ही—कभी मैं, कभी श्रीमती जी। संगमरमरी फर्श वाले बाथरूम से बाहर निकलने पर कलेजा काँप उठता, लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाकर तुरन्त लिहाफ में उलटे-सीधे घुस जाता। इस कार्य में श्रीमती जी के पैरों की आर्थीराइटिस आड़े आ जाती, जैसे ही वे बेड पर आकर अपना भारी भरकम लिहाफ उठाकर ओढ़तीं वे मुझसे कहती, "आज ठण्डक अधिक है, कल इतनी नहीं थी। जरा तुम उठकर रूम-हीटर आन क्यों नहीं कर देते ?" मैं एक बार फिर बेड से नीचे उतर हीटर जलाकर जल्दी से उनके पार्श्व में लेट जाता। अन्धेरे का स्वाभाविक लाभ उठाकर वे अपनी तकिया के नीचे से महीन कटी हुई डली के कुछ दोहरे निकालकर मुँह में चुपचाप दबा लेती और मेरी ओर पीठ करके सो जातीं। मैं प्रायः जगा करता, उनके शरीर में घटती हीमोग्लोबिन, दोनों कूल्हों की हड्डियों में चलने-फिरने से बढ़ता दर्द, साँस की तेज रफ्तार और हंफनी के कारण बोलने में कष्ट—इन सारी व्यथाओं के बारे में चिन्ताग्रस्त होकर सोचा करता। मेरी रातों की लम्बाई बढ़ती जाती।

एक दिन ऐसी मानसिक व्यग्रता में रात के चौथे पहर में मैं करवटें बदल रहा था कि शाश्वती ने कराहते हुए पुकारा,"सुनते हो जी जरा सा पानी गर्म करके उसमे टिंचर बेंजामिन डालकर मुझे बफारा करा दो।"

मैंने यह सुनते ही आनन-फानन पानी गर्म कर दिया, भाप निकलते गर्म पानी का भगोना उनके सामने मेज पर रख दिया, उसमें दवा की कुछ बूँदें मिलाकर उनके सिर पर तौलिया ढक दिया और धीरे-धीरे पानी की गर्म भाप से गला सेंकने को कहा। श्रीमती जी को गला सेंकने से आराम मिलने लगा। किचेन में दुबारा जाकर अदरक डालकर मैं चाय बनाने लगा। दस मिनट में खूब गर्म चाय पिलाकर मैने उनसे कहा, "अब तुम कुछ देर के लिए और सो रहो, मैं तुम्हारे पास यहीं बैठकर कुछ लिख डालूँ।"

जाड़े की गुजरती रात, सोता हुआ सारा शहर और मैं बीमार पत्नी के पास आराम कुर्सी डाले बैठा हुआ अभागा पति किसी दैवी अभिशाप का शिकार या किसी

कयामत का मारा हुआ इन्सान मैथिलीशरण गुप्त की यह पंक्ति बेमौके याद कर रहा था।

"जाग रहा है कौन धनुर्धर—जबकि भुवन भर सोता है"

मैंने देखा श्रीमती जी सो रही हैं, खर्राटे ले रही हैं तबीयत खुश हुई, मैंने सोचा इन्हे शायद गला सेंकने से कुछ आराम मिल गया है। लिखने में मेरा मन नहीं लग रहा था फिर भी मुगल साम्राज्य के पतन की तरह बूढ़े पतियों के रात्रिकालीन पराभव पर विमर्श करने लगा—वह भी आँखें बन्द करके। मानव जीवन की क्या दो-मुँही गति यही है ? कभी पता नहीं लगता था रात कब खत्म हुई और एक अब है कि रात का एक-एक पल काटे नहीं कटता। नया बेडरूम, नए-नए कुशन, बिल्कुल नया सनील का लिहाफ, अगरबत्तियों से सुगन्धित कमरे का वातावरण यह सब होते हुए भी पलकों से नींद गायब रहती थी। मन की गहराइयों में चुभने वाली एक सोच जमी बैठी थी कि पत्नी का दिनोंदिन घटता हीमोग्लोबिन का प्रतिशत और बढते ब्राकल अस्थमा का आधी रात का दौरा, रात भर बेड पर दो तकियों के सहारे आगे झुक कर बैठे-बैठे, सोते-जागते आने वाले प्रातः की प्रतीक्षा करना इस प्रकार का पत्नी का जीवन-दुष्चक्र कब तक चल पाएगा ?

कुछ सोच विचार कर अगले दिन एक घमण्डी और सूखे पेड़ के ठूँठ की तरह दिखने वाले लेकिन अपने को सर्वज्ञान सम्पन्न समझने वाले एक कनवरटेड होमियोपैथ (यानी असल में एलोपैथी पढ़े पर बाद में होमियोपैथ बन गए) डा. मिश्र के घर जाकर श्रीमती जी का हाल कहकर दवा ले आए। विगत वर्षो में वे पत्नी की कई बार सफल चिकित्सा कर चुके थे, उनकी दवा पूरी आस्था और विश्वास के साथ शाश्वती ने खाना शुरू कर दी, पर न किसी प्रकार का लाभ हुआ और न किसी प्रकार की हानि। जैसे मैं कई बार आपको बतला चुका हूँ अपनी आदत से मजबूर होकर मै प्रातः छः बजे अपनी चाय स्वयं बना लेता और पत्नी को चाय पिलाकर दवा खिला देता। धूप निकल आने पर मकान के सामने पोर्टिको में उन्हें कुर्सी डाल कर आराम से शाल से ढककर बिठला देता। फिर हाथ में दैनिक जागरण पकड़ा कर कहता, "देखिए लखनऊ शहर में कल के मनहूस दिन कितनी सड़क दुर्घटनाएँ हुई और कितनी नव-विवाहित बहुओं का किचेन में गैस सिलेण्डर फट गया" ऐसे दोनों न्यूज आयटम को वे प्रसन्नतापूर्वक पढ़तीं थोड़ी देर में अर्चना उनका नाश्ता ले आती—चार प्रिया गोल्ड बटरबाइट बिस्किट और एक कप दूधिया चाय। वे खुश होकर नाश्ता करतीं फिर मुँह लगी अपनी प्यारी पोती सौम्या के द्वारा शहर के किसी सूने कोने में आराम करते पुलिस के उड़ाका दल की तरह अपना सचल पानदान, जो घर के किसी एकान्त कोने में छिपा रखा रहता, मँगवा लेतीं। असाधारण मनोयोग और तकनीकी रुचि से दो मघई पानों में कत्था चूना चिकनी डली, तुलसी तम्बाकू, इलायची और पेपरमेण्ट

डालकर ख़ामोशी से मुह के एक कोने मे ऐसे दवा लेती जेसे कुछ भी न हुआ हो और फिर एक सर्व सुख-सम्पन्न भारतीय वृद्धा की भाँति अपने पोती-पोते पर प्यार बरसातीं और घर-आई पड़ोसिनों से ज्ञान-वार्ता करतीं, बीच-बीच में मेरी मूर्खतापूण दौड़भाग की कटु आलोचना कर डालतीं और कहतीं, "जाने वाले को कौन रोक पाया हे ? दुनिया से विदा होने की घड़ी जब आ जाएगी, तो डाक्टर अपना मुँह लटकाए हाथ मे अपना आला हिलाते मेरी शक्ल देखते रह जाएँगे।"

तेरहवाँ अनुच्छेद

साधन सम्पन्न परिवारों के लिए सुखद और स्वास्थ्यवर्धक दिसम्बर का महीना इस बार बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था, वह चींटी की चाल चलने लगा था। सवेरे उठकर मैं ड्राइंगरूम में टँगे बड़े कैलेण्डर में मोटी-मोटी छपी तारीखों को लाल पेंसिल से एक गोला बनाकर बन्द कर देने का बचपन से आदी था, जिनका एकमात्र उद्देश्य यह रहता था कि बीती हुई तारीख़ अगर दुबारा मुझे दिखलाई भी पड़ जाए तो मैं अपने को उसके अस्तित्व के बन्धन से मुक्त समझूँ, उसका कैलेंडर में मुद्रित स्वरूप मेरे लिए पूरी तरह अस्तित्वहीन होकर निरर्थक दिखलाई पड़े।

अभी तक सामने से गुजरी दिसम्वर 99 की सारी तारीखें मेरे लिए एक से बढ़ एक अपशकुनी साबित होती रहीं, कभी इस मित्र को हृदयाघात पड़ा तो कभी उस मित्र की अर्धांगिनी उसे छोड़ चल बसी। सौभाग्य से अगर किसी तारीख को मरघट के चक्कर लगाने से बच भी गया तो सारे दिन श्रीमती जी की बीमारी के चक्कर में डाक्टरों और केमिस्टों की दुकानों की परिक्रमा करने या बैंक से पैसे निकालने के लिए मुझे दौड़भाग करनी पड़ती, शायद ही ऐसी कोई तारीख मिली हो जिस दिन निश्चिन्तता के वातावरण में दोनों जून की रोटी शान्ति से बैठकर खा पाई हो।

आज जब मैं सोकर उठा, आँखें मलता हुआ कैलेण्डर के पास जाकर खडा हुआ तो मैंने ध्यान से देखा—आज की तारीख तो 'टू इन वन' है एक तो सप्ताहान्त शनिवार और दूसरे पच्चीस दिसम्बर का बड़ा दिन। मुझे सहसा अपनी गुजरी जवानी की न भूली जा सकने वाली रोमांटिक घटनाएँ और दाम्पत्य की सुखद स्मृतियाँ एक-एक करके मेरे मनस्पटल पर उतरने लगीं। कभी सजी-धजी शाश्वती के साथ कानपुर के मोतीझील में कैफेटेरिया में चाट खाने के बाद पाण्डुनगर में सिंहानिया के भव्य मन्दिर के लान पर बैठकर प्रेमालाप, कभी लखनऊ के पिकनिक स्पाट की पुरानी

कठौता झील मे नौकायन, तो कभी दिवगत क्रिश्चियन मित्र विक्टर माइकेल ड के घर पर आयोजित क्रिसमस डे के जगमगाते उत्सव में सायंकालीन सहभागिता। इन स्मृतियों की सजीवता ने आज मेरे थके-थके मन में सहसा नई स्फूर्ति का संचार कर दिया। वाशवेसिन के सामने हाथ-मुँह धोकर जब मैंने टावेल से मुँह पोंछा, तो किचेन से पूड़ियाँ और मसालेदार सब्जी बनने की सुगन्ध मेरी नाक से टकराई। मे वापस बेडरूम में जाकर शाश्वती के पास बैठ गया वे मुझसे बोलीं, "देखो आज बडा दिन है, तुम्हारा बेटा व बहू बच्चों के साथ पक्षी-विहार नवाबगंज जाने को तैयार हो रहे हैं खाना तैयार हो गया है। तुम भी अपनी दण्ड बैठक लगाकर जल्दी गर्म पानी से नहा डालो। मैंने गीजर आन कर दिया है। पूजा पाठ करके दस बजे तक तैयार हो जाओ, मेरे साथ आज जल्दी खाना खा लो।"

"अच्छा, बहुत अच्छी बात है, पर तुम मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो। तुम्हारी एक बात में बार-बार जल्दी शब्द का प्रयोग क्यों हो रहा है। आज तुम्हारा क्या कुछ विशेष कार्यक्रम तय हुआ है ?"

"नहीं, तुम स्वभाव से हमेशा शंकालु प्रकृति वाले मेरे पति रहे हो। मैं ही एक ऐसी महिला थी, जो तुम्हारी जन्मजात शंकालु प्रकृति के साथ अपने पत्नीत्व का सदैव तालमेल बिठलाती रही, मेरे स्थान पर यदि आजकल की कटे बाल वाली कोई आधुनिका होती तो तुमसे तंग आकर एक दिन तुमको 'बाय-बाय' कहकर अपने पापा के घर हमेशा के लिए चली जाती। तुम अकेले घर में बैठे अपने कैलेण्डर की तारीखों में लाल पेंसिल से घेरे बनाते रहते या सारे लखनऊ में छिटके अपने दोस्तो से फोन पर लन्तरानी हाँकते रहते।"

शाश्वती के इन रंगीले वाक्यों को सुनकर मैं मुस्करा उठा, फिर कुछ सोच कर बोल उठा, "क्या कह रही हो मैडम ? यदि तुम मुझे बाय-बाय कहकर चली जातीं तो तुम्हारे रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए समुद्र की लहरों की तरह सामने से दौडती हुई अनेक सुन्दरियाँ मेरे पास अपने आप आने लगतीं और उनमें से किसी एक को मैं सरलता से चयन कर लेता, जैसे तुम स्वयं अपने समय की सुन्दरी मेरे पास बिना बुलाए चली आईं और जीवन के इतने वसन्त मेरे साथ गुजार दिए।"

"बेकार की गलत-फहमी अपने दिमाग में न पालो," शाश्वती ने मुझे समझाने की मुद्रा में कहा।

"क्यों ? इस सच्ची बात के कह देने में मुझे कुछ संकोच नही है।"

"समय बदल गया है मिस्टर पतिदेव। अब नारी में स्वतन्त्रता-आन्दोलन की विश्व-व्यापी हवा अपने देश के महानगरों, नगरों और यहाँ तक बड़े-बड़े कस्बों और गाँवों तक में बहने लगी है। पहाड़ों तक में रहने वाली सयानी लड़कियाँ बाल कटवाती, ब्यूटीपार्लर में जाकर फेस लिफिटिंग करवातीं, जीन्स और टीशर्ट पहनतीं, हेल्मेट पहनकर

पिछली सीट पर अपनी माँ, बहन, भाई या किसी ब्वाय-फ्रेंड को बिठलाकर धड़ल्ले से घर की सारी शापिंग स्वयं कर लाती हैं। शरीर में गतिशीलता, वाणी में आत्मविश्वास, नेत्रों में कुछ नया कर डालने की ललक, भविष्य के प्रति पूरी तरह आस्थावान दिखने वाली युवतियों के झुण्ड के झुण्ड प्रतिदिन दस बजे अपने-अपने कार्यालय की ओर भागते हुए दिखलाई पड़ते हैं। यह आज की नारी की बदली हुई तस्वीर है, उसने चूल्हे चौके और अपने बच्चे को दूध पिलाने का काम छोड़ दिया है। बाजार में फास्टफूड खाना और क्रैश में बच्चों को अपनी ड्यूटी की अवधि में छोड़ आना—एक आम बात हो गई है।

हम लोग तो बचपन से स्कूल में घर आकर पढ़ने-लिखने, सिलाई-कढ़ाई, बुनाई, रसोई और माँ के घरेलू कामों में हाथ बँटाने के अलावा कुछ नहीं करते थे। तुम क्या समझो उन दिनों की नारी जीवन की बन्दिशों को। तुम तो एक कुएँ के मेंढक की तरह यूनिवर्सिटी और अपने घर के बीच टर्र-टर्र कर लेते थे। घर में प्रवेश करते ही तुम्हारी बोलती बन्द हो जाती थी। ददुआ जी के सामने तो तूणीरधारी लक्ष्मण की भाँति नतमस्तक होकर उनकी प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करने को तत्पर रहते थे।"

"अच्छा चलो मैं तुम्हारी इन बातों को बिना तर्क किए स्वीकार करे लेता हूँ। अब तुम आगे बोलो, क्या कहना चाहती हो ?" मैंने यह कहकर प्रातःकालीन लम्बी वाक्प्रतियोगिता का समापन कर दिया।

श्रीमती जी बोलीं, "कहो यथा आज्ञा और अपनी शेष दिनचर्या का श्रीगणेश करो।"

हम दोनों लगभग एक घण्टे में लगभग एक साथ तैयार हो गए, दो गीजर युक्त बाथरूम, दो ट्वायलेट, दो ड्रेसिंगरूम की मौजूदगी से हम लोगों को कुछ कठिनाई नहीं हुई। शाश्वती ने आज तबीयत से अपना ब्रीफकेस खोलकर गहरे बैंगनी रंग की एक पूनम सिल्क की एक साड़ी पहनी, काले बड़े केशों में कंघा किया, मस्तक के मध्य भाग में दीप-शिखा की आकृति वाली गहरे लाल रंग की बिन्दी लगा ली, हल्की पाण्ड्स-स्नो लगाकर मेरे पार्श्व में आकर शोभायमान हो गईं। मैंने उनसे हँस कर पूछा, "बुलाऊँ पण्डितों को मन्त्र पढ़ने के लिए ? तुम मेरे साथ सप्तपदी के लिए तैयार हो ? शादी का लायसेन्स पुराना पड़ गया है, आज उसका नवीनीकरण क्यों न करा डालो ?"

"क्या मसखरापन करते हो, तुम्हारे ऐसे खिचड़ी बाल वाले बूढ़े के साथ अब सप्तपदी कौन चलेगा ?" यह कहती वे अपने उपासना-कक्ष में रामायण का गुटखा हाथ में दबाए धीरे-धीरे प्रवेश कर गईं।

दूसरी ओर विवेक और अर्चना की तैयारी हो गई, वे लोग दोनों बच्चों को

साथ लेकर दस बजे के पूर्व ही घर से बाहर निकल पड़े, और सिर्फ इतना बतला गए कि उन्हें घर लौटने में देर हो जाएगी, रात के आठ नौ बज सकते हैं।

मैंने एन.ई.आर. की पैसेन्जर ट्रेन की तरह धीरे-धीरे चलकर बाहर गेट बन्द कर लिया, श्रीमती जी के बेडरूम के पास छोटी आराम कुर्सी डाल पूर्ण निश्चिन्तता की मुद्रा में बैठकर टाइम्स आफ इण्डिया का स्पीकिंग ट्री वाला कालम पढ़ने लगा। थोड़ी देर में वे पूजा घर से लौटीं और मुझसे पूछा, "अखबार लेकर यहाँ क्यों बैठ गए ? यह कोई अखबार पढ़ने का समय है ? जाओ किचेन से खाने का सारा सामान यहीं उठा लाओ।"

मैंने उन्हें पूजा के कमरे से बाहर आया देखकर आश्चर्य व्यक्त किया, पूछा, "तुम्हारी पूजा आज इतनी जल्दी क्यों पूरी हो गई ?"

"मैंने केवल आधा उत्तरकाण्ड पढ़ लिया, आधा बचा कल पढ़ूँगी। मैं तुम्हारी तरह लम्बी पूजा का आडम्बर नहीं रचती हूँ, तुमने सरकारी सेवा काल में सर्वाधिक पाप किए हैं। मेरा जीवन गोमुख के गंगाजल की भाँति पवित्र, और पारदर्शी रहा है। ईश्वर मुझसे यों ही प्रसन्न है। आत्मा मेरी यों ही निर्मल है, अब मैं गर्मागर्म भोजन से अपनी उदर-पूजा करने की इच्छुक हूँ।" शाश्वती ने बहुत दिनों के बाद अपने दोपहर कालीन भोजन में इतनी सक्रियता प्रदर्शित की। मैंने किचेन में जाकर उसके अन्दर चारों तरफ नजर दौड़ाई, लिण्टर पर रखा सारा सामान दो तीन बार मे उठा लाया और बेड के पास स्थायी रूप से रखी लम्बी मेज पर उसे एक लाइन में रख दिया। श्रीमती जी ने अपने पास रखी छोटी अलमारी से दो चम्मच, दो फुल प्लेटें निकालीं और उनमें से करीने से पूड़ियाँ, कचौड़ियाँ, सब्जी, अचार, रायता, सलाद और घर के बने रसगुल्ले सजाकर रख दिए, फिर मुझे देखकर बोलीं, "लो शुरू करो, आज बड़ा दिन है, ताजा गर्मागर्म खाना खाकर मेरे पास बैठो, तुमसे कुछ जरूरी बाते करने की तबीयत हो रही है।"

हम दोनों ने स्वाद ले लेकर खाना शुरू किया और सामने रखा पूरा खाना खा लिया। श्रीमती जी द्वारा दिया गया गुनगुना पानी पिया, बीच-बीच में बातें की, फिर खाना-फिर बातें अन्त में स्वीटडिश खाकर पानी पीकर खाली बर्तन किचेन की सिंक में और शेष खाना डायनिंग टेबल पर ढक कर रख आया। श्रीमती जी ने अपनी पुरानी आदत के मुताबिक दो स्पेशल पान खुद खा लिए और दो सादे पान मेरी ओर खामोशी से बढ़ा दिए। फिर थोड़ी देर में अपनी नई जयपुरी रजाई ओढ़कर लेट गईं, उनका अनुकरण करते हुए मैं भी अपना गाँधी-आश्रम वाला स्पेशल कम्बल ओढ़कर उनकी ओर मुँह करके लेट रहा।

काफी देर तक हम दोनों मौन-चिन्तन की किसी अदृश्य सरिता के तीव्र प्रवाह में पृथक्-पृथक् बहते चले गए। नहीं मालूम कितनी विचार तरंगें उठीं, प्रबल हुई,

विस्मृति की अनछुई गहराइयों में लुप्त हो गईं। हम दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे के पास लेटे हुए भी, एक-दूसरे से अनन्त दूरी पर अलग-अलग रास्तों से किसी अज्ञात गन्तव्य की ओर बढ़ते चले जा रहे थे। दूसरी ओर प्रातःकालीन सूर्य आकाश में पूरी ऊँचाई पर पहुँचकर मेरे घर के पिछले आँगन में अपनी गर्म-गर्म धूप छिटका रहा था। पता नहीं कब मेरी स्वप्निल मुद्रा ध्वस्त हो गई, मेरे मस्तिष्क में सुशृंखलित विचार, जो सदा मेरे संवेदनशील जीवन के बहुमूल्य संबल रहे हैं, आज अकस्मात् तार-तार हो गए। मैं किसी ऊँचे उड़ते विमान से सहसा नीचे धरती पर गिर पड़ा, यथार्थ की किसी कठोर चट्टान से टकराकर लहूलुहान हो गया। मैंने अपनी बन्द आँखें खोलीं, देखा श्रीमती जी टूथपिक से अपनी रक्ताभ दन्तावली के बीच फँसे सुपारी के छोटे-छोटे कण निकालने का अनवरत प्रयास कर रही हैं। ज्यों ही मैंने उनके गोरे मस्तक पर चमकती लाल बिन्दी पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की, वे मुस्करा उठीं, मेरी भावभंगिमा का अध्ययन करते हुए अपना बायाँ हाथ मेरे सिर पर रखती हुई बोलीं, "देखो दुनिया बनाने वाले ने यह नियम बना रखा है कि पति-पत्नी की जोड़ी में एक को पहले ही दुनिया छोड़ देनी पड़ती है। ऐसे भाग्यशाली दम्पति दुर्लभ होते हैं जो किसी दैवी-आपदा अथवा आकस्मिक दुघर्टना में साथ-साथ प्राण त्यागें। अतः अब हम दोनों को इस अन्तिम सत्य से निपटने के लिए तैयार हो जाना चाहिए, और अपनी वर्तमान मानसिकता में धीरे-धीरे बदलाव लाना चाहिए।"

"जीवन के इन सुखदाई क्षणों में तुम मरने-जीने का अप्रिय राग क्यों अलापने लगीं ?" कुछ अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए मैंने शाश्वती से प्रश्न किया।

"क्योंकि सन् 2000 के शुभागमन में केवल छः दिन और शेष हैं नई सहस्राब्दि देखने का मेरा मन नहीं कर रहा है। सन् दो हजार तक तो पुरानी शताब्दी ही चलेगी, नए वर्ष में होलिकोत्सव वाले दिन मैं अपने जीवन के चौहत्तर वर्ष पूरे कर सकती हूँ, पर उससे पूर्व ही मुझे इस नश्वर संसार से विदा ले लेनी है, ऐसी ध्वनि बार-बार मेरी अन्तरात्मा से निकलती हुई मुझे रात के सपनों में प्रायः सुनाई पड़ जाती है, पर मेरा मन मुझे विश्वास दिलाता है कि मैं नए वर्ष का दर्शन अवश्य करूँगी।"

"तो मैं क्या करूँ मैं तो चाहता हूँ कि नया वर्ष और उसके बाद आने वाला अगला नया वर्ष भी तुम देख सको, तुम्हारे शब्दों के मकड़जाल में मैं तुम्हारा आशय नहीं समझा।"

"तुम अपने आसन्न वैधुर्य की तैयारी अभी से शुरू कर दो और मेरे न रहने पर अपनी अवधारणा के अनुरूप कुछ लोकोपयोगी कार्य करना अभी से आरम्भ कर दो ताकि मैं अपनी आँखों से देख सकूँ कि तुम मेरे न रहने पर किस प्रकार अपना एकाकी जीवन व्यतीत करोगे। मैं ऐसा इसलिए कहती हूँ कि अपने जीवन के कर्णधार को जब मैं इतनी बड़ी दुनिया में अकेला छोड़ कर आँखें मूँद लूँगी, तो मेरे वियोग

मे वह अविचलित रहकर अपने लोकहित के कार्यों में इतना व्यस्त हो जाए कि मेरी मधुर-स्मृतियाँ उसके मन को व्यथित न कर सकें। अभी तक मैं जब कभी कुछ समय के लिए पास-पड़ोस के किसी पारिवारिक उत्सव में भाग लेने चली जाती थी और बाहर से घर लौटने पर जब मैं तुम्हें नहीं दिखलाई पड़ती थी तो तुम कितना व्याकुल हो उठते थे, तुरन्त किसी न किसी बच्चे को मेरे पास भेजकर तुरन्त मुझे बुलवा लेते थे। जब मैं ऐसे स्थान के लिए प्रयाण कर दूँगी जहाँ से तुम मुझे कभी वापस बुलवा नहीं सकोगे, तो तुम्हारी कितनी विषादपूर्ण मनःस्थिति होगी, इस वास्तविकता को मैं सारे जीवन अनुभव करती रही हूँ, इसी से मेरी अभिलाषा है कि तुम मुझे धीरे-धीरे भूलना शुरू कर दो, मेरे अभाव में उतने सामान्य बने रहो जितने अपने विवाह पूर्व जीवन में अध्ययन-रत विद्यार्थी के रूप में रहते थे। यह अच्छी तरह समझ लो। अपने मन-मन्दिर में मेरी स्मृतियों को परिपोषित करते हुए मुझे बाहरी दुनिया मे मत ढूँढ़ो, विश्वास करो मैं तुम्हारे विशाल हृदय के एक कोने में छिपकर बैठ गई हूँ। आँखें बन्द करके जब चाहो मुझे देखकर अपने नेत्रों में आँसू न आने दो, हृदय मे किसी प्रकार की वेदना को न जन्मने दो, अपने को एकाकी निराश, हताश या जीवन-पथ पर भटका हुआ न समझो।''

''मेरे हृदय को आघात पहुँचाने वाली तुम्हारी इस दार्शनिक शब्दावली को सुनने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ। कहो तो तुम्हारे पास बैठूँ अन्यथा तुम्हें घर में अकेला प्रवचन करते छोड़कर अपने किसी मित्र के घर चला जाऊँ और तब तक उसकी पत्नी की कुशल-मंगल पूछ आऊँ।''

''तुम्हें मेरे हृदय की गहराई से निकलते हुए संवेदना के स्वर सुनने होंगे, समझने होंगे, नहीं तो पलायनवादी मनोवृत्ति के कारण अपने भावी जीवन की रूप-रचना मेरी आशाओं के अनुरूप न कर पाओगे—तुम मुझे सहयोग दो, मुझे सुनो, मुझे समझो, मेरी बातों पर आस्था रखो, मेरी भावनाओं को अपने भावी स्पन्दनों की प्रेरणा बनाओ, मेरी लघु सत्ता को अपनी सत्ता में आत्मसात कर लो, मेरा सूक्ष्म शरीर तुम्हारे सूक्ष्म शरीर के आवरण में कहीं छिपा रहे, मैं पूर्ण रूप से अपने अस्तित्व को तुम्हारे अस्तित्व मे विलीन कर दूँ अपने को तुममें दे दूँ। यही मेरी अन्तिम इच्छा है।''

''मैंने तुम्हारी हरेक इच्छा को अपनी इच्छा पर वरीयता दी है तुम्हारी चाहत को मूर्त रूप दिया है। तुम्हारे सपनों को अपनी आँखों से देखने और उन्हें साकार करने में गहरे आनन्द की अनुभूति की है, तुम्हारी साँसों से मैं जिया हूँ, तुम्हारे उच्छ्वासो से सदैव नव-चेतना, नई स्फूर्ति और जीवन-प्रेरणा प्राप्त की है। अतः मैं वचन देता हूँ कि तुम्हारी अन्तिम इच्छा को अपनी ही अन्तिम इच्छा के प्रतिरूप में मान्यता देकर उसी के अनुरूप अपना शेष जीवन सँवारूँगा, पर अभी इस गम्भीर प्रकरण पर बात करने का समय नहीं आया है।''

मैं शायद तुमसे अधिक दूर दृष्टि वाली रही हूं अपने जीवन-काल की भांति अपने मृत्यु-काल में भी मेरी दूर दृष्टि मुझे राह दिखलाने लगी है,'' शाश्वती ने शान्त स्वर में कहते हुए मेरी ओर पत्नी के अनुरागपूर्ण नेत्रों से देखा।

''मैं तुम्हारी दूर दृष्टि की अपूर्व शक्ति को सन्देह की नजर से नहीं देखता और विगत में न कभी ऐसा किया ही है,'' मैंने शाश्वती को आश्वस्त करते हुए विश्वास दिलाने का प्रयास किया।

''तो फिर नगर के सभी सेवानिवृत्त पेंशन-भोगियों, उनकी मृत्यु हो जाने पर उनके आश्रितों को पारिवारिक पेंशन दिलाने में अपना सहयोग प्रदान करते रहने का वचन दो।''

''यह कार्य तो मैं तीन-चार वर्षों से स्वयं कर रहा हूँ। उनके प्रतिभावान बेटों-बेटियों को उच्च शिक्षा प्राप्त कराने में सहयोग देता हूँ।''

''इतना काफी नहीं है। इसके अतिरिक्त दीन-दुःखियों, भूखे-नंगों और बीमार लोगों की यथा-सम्भव शारीरिक और आर्थिक सहायता करते रहने का भी वचन दो।''

''यह कार्य मेरे लिए दुष्कर है। मैंने इस सम्बन्ध में कुछ सोचा भी नहीं है। सच पूछो मेरी एक गुप्त इच्छा है, वह यह है कि मैं तुम्हारी गोद में आराम से अपना सिर रखकर तुम्हें अपने नेत्रों से देखता हुआ महाप्रयाण कर सकूँ, अपने शव के पास मै तुम्हें सारी रात विषादपूर्ण नेत्रों से बिठलाऊँ, परिवार की दुःखी महिलाएँ सान्त्वना देती हुई तुम्हें घेर कर बैठी रहें। मेरी मृत्यु का समाचार सुनकर जो मेरे मित्र या सम्बन्धी मेरे शव को देखने आएँ, उन्हें मेरा ढका चेहरा खोलकर दिखलाती रहो, हर बार दो चमकते मोती ऐसे आँसू, श्रद्धा सुमन के रूप में मेरे शव पर चढ़ाती रहो।''

''ऐसा कभी नहीं हो सकता। ईश्वर ने मुझ पर सारे जीवन असीम कृपा की है। मेरे अन्तिम समय में उसकी कृपा पूर्ववत बनी रहेगी। मैं कोई अभागिन नारी नहीं हूँ कि मुझे तुम्हारी विधवा के रूप में हृदय-विदारक व्यथा और पारिवारिक तिरस्कार झेलते हुए सब ओर से दुःखी होकर उपेक्षापूर्ण जीवन रो-रो कर काटना पड़े। मैं अभी से अपने बड़े बेटे की बदली-बदली आँखें, बड़ी बहू की डंड-बैठक लगाती शरारत भरी हरकतें और उसके गुप्त इशारों पर बराबर बदतमीजी करने वाली दो हड्डियो वाली छोटी पोती की हरकतें या तो मैं जानती हूं या मेरा ईश्वर जानता है। मैं यह सब न जाने कैसे झेल रही हूं ?''

''इस रहस्य को आज तक तुमने अपने सीने में छिपाकर क्यों रखा ?''

''कौन-कौन से रहस्य तुम पर प्रकट करती। तुम सदा उग्र प्रकृति के व्यक्ति रहे हो, आवेश में आकर कुछ कर बैठते, तो मेरे अपयश की गाथा वे लोग ढोलक बजा-बजाकर चारों दिशाओं में गाने लग जाते।''

"निरर्थक बातें न करो, साफ-साफ बतलाओ कि बदली-बदली आँखों से तुम्हारा क्या तात्पर्य है ?"

"देखो, तुमने घरेलू मामलों की ओर सदा अपनी आँखें बन्द रखी हैं, न कभी कुछ देखने समझने की कोशिश की और न कभी मुझसे कुछ पूछा ही।"

"कैसे मामले ?"

"घर-समाज में आए दिन अनेक ऐसी विकट समस्याएँ आ खड़ी होती हैं, जिनके निराकरण में पूरे परिवार का सहयोग आवश्यक है जब ऐसी ही किसी प्रतिकूल परिस्थिति आ जाने पर वे लोग मेरे साथ असहयोग करते हैं तो मैं अचम्भे में पड़ जाती हूँ, मन मसोसकर रह जाती हूँ।"

"कोई दृष्टान्त भी तो दो।"

"एक नहीं, अनेक।"

"तो बतलातीं क्यों नहीं।"

"बातें पुरानी हैं अब इन्हें कहने से क्या लाभ ? वर्षों पूर्व जब मैं बड़े बेटे की शादी करके एन.ई.आर. के इज्जत नगर डिपो वाले आफिस में उसे ड्यूटी ज्वाइन कराने ले गई तो मैंने उसे भरपूर गृहस्थी दी, दो महीने उसके साथ रहकर कष्ट झेलकर उसकी पूरी सेवा की—देखभाल की, मुँह-माँगे पैसे देती रही। लखनऊ में अकेले रह रहे स्कूल जाने वाले अपने तीनों बच्चों को कब तक तुम्हारे सहारे घर में यों ही छोड़े रहती। जब मैं घर वापस लौटी तो तुरन्त अपनी बड़ी बहू को बरेली भेज दिया। वहाँ पहुँचकर भिन्न-भिन्न सामाजिक स्तरों वाली और अपनी-अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि से जकड़ी, अर्ध-शिक्षित महिलाओं की सोसायटी में बैठकर उनकी गन्दी और बेतुकी बातों को सुनने का बहूरानी को प्रथम अवसर मिला। उनकी धूर्ततापूर्ण बातें सुनकर कच्ची उम्र वाली बहू कुछ ऐसी दिग्भ्रमित हो गई, कि मेरी सारी शिक्षाएँ पीछे रह गईं। पहले तो उसने अपने पतिदेव से ही छक्का-पंजा करना शुरू किया, फिर जब-जब मैं बड़े बेटे को देखने इज्जत नगर गई तो उसकी त्योरियाँ मेरी ओर चढ़ी हुई दिखीं। सास और माँ के नाते मैंने शालीनता का दोहरा जामा पहन रखा था, अतः रोज-ब-रोज उसकी जली-कटी व उकसाने वाली बातें सुनकर भी मौन बनी रहती। समय आगे बढ़ता गया। उसके एक बेटी, दूसरी बेटी, तीसरी बेटी और फिर आखिरी बेटे ने जन्म लिया। घर की समस्याएँ बच्चों के बड़े होने के साथ-साथ बढ़ती गईं। घर, शिक्षा और दवादारू में ख़र्च बढ़ता गया। बहू के भाई बहनों के शादी-ब्याह और रेलवे स्टाफ के लड़के-लड़कियों के काम-काज में रस्मी खर्चे बढ़ने लगे। एक तो कड़वा करेला, दूसरा नीम चढ़ा। बेटे ने धीरे-धीरे अपने स्टाफ जनों में बैठकर उनकी बुरी आदतें अपनाना शुरू कर दीं। खर्चे की कमी पड़ने लगी, बहू के गहने गिरवी होने लगे, मकान मालिक का किराया चढ़ने लगा। घर गृहस्थी की चीज़ें बिकने

लगी, बहू के जेवर बिकने लगे, इसी बीच बड़े बेटे के हर्पीज़-जोस्टर हो गई जिसका लम्बा इलाज लखनऊ दिल्ली में होने लगा। मैंने उसके महँगे लम्बे इलाज में भरपूर सहायता की, तब भी उसके उधार लेने की बढ़ती आदत के कारण उस पर दिनोदिन ऋण चढ़ने लगा। नकली शानो शौकत, अपनी लड़कियों की फैशनप्रियता और नित्य नई जरूरतें पूरी करने के लिए उसने दोनों हाथों से ऋण लेना शुरू कर दिया, तरह-तरह की नई-नई सच्ची झूठी बातें गढ़ अपने नजदीकी रिश्तेदारों तक से उसने ऋण लेना आरम्भ कर दिया। एक बार लिया हुआ कर्ज उतारना उसकी फितरत में शामिल नहीं था। कर्ज देने वाले बरेली से लखनऊ तक बड़े बेटे के पीछे चक्कर काटने लगे। कभी मेरे घर तो कभी उसके ससुर के घर। धीरे-धीरे बेटे बहू की मिलीभगत के कारण स्थिति बेकाबू हो गई। बेटे ने अपना सारा परिवार लखनऊ लाकर मेरे सिर मढ़ दिया। मैं तुमसे छिपा-छिपाकर उसके परिवार के उचित और अनुचित खर्चे झेलती रही। मैंने परिवार की भलाई के लिए ही तुमसे यह कहकर बहू को एक माण्टेसरी स्कूल में टीचर की पोस्ट पर नियुक्त करवा दिया। मैं पोती-पोतों का लालन-पालन लखनऊ में देखती और बेटे बरेली में अपना सारा वेतन अकेले अपने लकालक बने रहने पर खर्च कर देते। खुले जुए और लुके-छिपे शराब ने बेटे को बीमारी में ढकेल दिया। दिल का मर्ज वह भी आखिरी स्टेज पर। लखनऊ, बरेली, मद्रास में इलाज कराया, परिवार का भरण पोषण लखनऊ में और बाईपास का इलाज मद्रास मे। क्या ख़र्चा किया मैं जानती हूँ।

मद्रास में रहकर बहू ने बेटे की बीमारी में सेवा की पर हम लोगों के खिलाफ बुरी तरह कान भर दिए। लखनऊ आने पर माँ की ममता के कारण कई महीने मैंने उसकी समुचित देखरेख की और तुम्हारे बड़े भाई साहब से खुशामद करके तुम्हारे बनवाए हुए बड़े मकान की वसीयत बड़े बेटे के नाम करवा दी और एक छोटा दो कमरे वाला एल.डी.ए. का मिनी एम.आई.जी. मकान, जो तुमने रामनगर कालोनी में खरीदा था बेचकर मैंने एक एच.आई.जी.—अधबना मकान छोटे बेटे को दिखाकर खरीदवा दिया। मेरा उद्देश्य था कि दोनों भाई अलग-अलग रहकर अधिक प्रेमपूर्वक रहेंगे। विवेक ने अपनी सूझबूझ से अपने विभाग से ऋण लेकर अपना मकान ठीक करा लिया और इस समय आराम से रह रहा है।

उसी मकान को झगड़े की जड़ बनाकर सारे सम्बन्धियों में बड़ा बेटा मिथ्या दुष्प्रचार कर रहा है कि मैंने उसे कम गृहस्थी दी कम पैसा दिया, सारी गृहस्थी और सारा पैसा अपने छोटे बेटे को दे दिया।

इसी गलतफहमी के शिकार पति-पत्नी मुझसे दुश्मनी मानने लगे हैं और मेरे सगे-सम्बन्धियों के घर जा-जाकर मेरे विरुद्ध वे दोनों नाना प्रकार का अनर्गल प्रचार करने से बाज नहीं आते। आगे-पीछे सारी बातें मेरे सुनने में आ जाती हैं। अब तक

मैं तटस्थ भाव से सब कुछ सुनती, जानती और झेलती रही हूँ—तुमसे कुछ कहकर स्थिति को विध्वंसक बना देने का मेरा विचार कतई नहीं था। आज न जाने क्यों मेरे मन में कब से छिपी बैठी ये बातें एक राम-कहानी के रूप में बाहर निकल आईं। मैंने अपनी समझ से बड़े बेटे को बड़ा होने के कारण अधिक और छोटे बेटे को छोटा होने के कारण कम दिया है—इसे ईश्वर सत्यता से जानता है। मैं दोनों को अपना आशीष देकर दुनिया छोड़ूँगी।''

''बस इतनी सी बात वह भी काफी पुरानी।''

इस प्रकार धीरे-धीरे दिन बीत गया और अब शाम के चार बजे हैं। मैं उठा और श्रीमती जी के गुनगुने शरीर का थर्मामीटर लगाकर बुखार नापने लगा, बुखार नार्मल निकला। वे मुझसे फिर कहने लगीं, ''हालांकि मैं अब यह सोचती हूँ कि मैंने पारिवारिक झमेलों को तुमसे कहकर बेकार तुम्हें दुःखी कर दिया, पर मैंने तुम्हारे पुराने मकान के शान्त वातावरण में रहने की लालसा व्यक्त करते रहने के परिप्रेक्ष्य में तुम्हें वहाँ की प्रतिकूल वस्तु-स्थिति से अवगत कराना आवश्यक समझा।

आज मैं तुमसे स्पष्ट बतला देना चाहती हूँ कि मैं अब चन्द दिनों की मेहमान हूँ, पता नहीं सप्ताह के किस दिन मेरी चलती साँसें उखड़ जाएँ और मैं बिना बताए ऊपर चल बसूँ। अब मुझे अपने शरीर पर विश्वास नहीं रह गया है। मैं चारपाई पर लेट कर अपाहिज बनकर प्राण त्यागना नहीं चाहती। तुम अन्तिम सत्य को सुनने, देखने, और उसके बाद की दुःखद परिस्थितियों से येन केन समझौता करने के लिए अपना मन मजबूत कर लो।

मेरे मरने पर मेरी शानदार शव-यात्रा बैण्ड बाजे के साथ निकलवाना, धूमधाम से मेरे सनातनी संस्कार सम्पन्न कराना, मेरे बाद यहीं अपने छोटे पुत्र के पास शान्त वातावरण में रहकर पठन-पाठन और साहित्य सेवा का मनचाहा काम करना। मेरे छोटे बेटे का हृदय उदार है, छोटी बहू का हृदय उससे भी अधिक उदार है। तुम्हें यहाँ पर पितृतुल्य सम्मान, समुचित देखरेख, समय पर जलपान और भोजन, अस्वस्थ हो जाने पर कुशल चिकित्सा, पोती-पोतों का वात्सल्यपूर्ण सान्निध्य कभी तुम्हारा मन ऊबने न देगा। दूसरी बात यह सुन लो—अब समय बिल्कुल बदल गया है। हम लोगों को सास-ससुर प्रायः हमारे हितों को ध्यान में रखते हुए हमें अनुभवी परामर्श दिया करते थे, अब तुम्हें अपने पुत्रों और पुत्र-वधुओं की जीवनशैली की आलोचना करना या किसी प्रकार का परामर्श देना उचित नहीं है। वे जो कुछ कर रहे हैं, उन्हें करने दो, अपने भले-बुरे कार्यों का परिणाम वे स्वयं भुगतेंगे और अपना मार्ग बदल लेंगे, तुम्हारे कुछ कह देने पर सम्भवतः बुरा मान जाएँगे। तीसरी और अन्तिम बात यह है कि तुम अपने स्वास्थ्य का अधिक से अधिक ध्यान रखना, फल, गाय का दूध, सादा सन्तुलित ताजा भोजन, दही और नियमित शारीरिक व्यायाम तथा दैनिक

पूजा-अर्चना का कार्यक्रम इन सभी बातो पर पूर्ववत् अपना ध्यान केन्द्रित कर रखना यह लम्बी बार-बार दोहराई हुई मन-उबाऊ बातें कहकर शाश्वती मेरे गले में लिपटकर रोने लगी। उसके गर्म-गर्म आँसुओं से मेरी शर्ट का कालर नम हो गया। मैंने उसे गले लगा लिया, उसके दुर्बल और कम्पायमान शरीर का सावधानी से आलिंगन किया, एक हल्का सा चुम्बन लेकर धीरे से कहा, "एक बूढ़े पति की एक खूबसूरत भावुक पत्नी तुमने मुझसे बड़ा दिन मनवाने को कहा था कि दाम्पत्य जीवन का अन्तिम दिन मनाने को कहा था। तुम तो अपने पतिदेव को ऐसा आभास करा रही हो जैसे तुम्हारे दाम्पत्य सुख से सदा के लिए वंचित हो जाने का मेरा अन्तिम समय आ गया है। अब तुम शान्त हो जाओ, साहस और धैर्य के साथ हमेशा की तरह इलाज करो, खाओ पियो और आराम करो।" यह कहकर श्रीमती जी की आँखों के आँसू मैंने अपने नए रूमाल से पोंछ दिए। मैंने दुबारा कॉफी बनाई और एक्समस केक के एक पीस के साथ उनके सामने खड़ा होकर कहने लगा, "उठो, लो कॉफी पी लो, और एक पीस एक्समस केक खा लो। बड़ा दिन मनाओ।"

चौदहवाँ अनुच्छेद

जीवन की गति अचरज भरी है, कभी अबोध बालक के हाथों सारा आकाश नापने की कल्पना कराती है, कभी शिशु द्वारा आकाश के मध्य चाँदनी की चादर फैलाता पूर्णमासी का चन्द्रमा, अपने आँगन में रखी जल भरी थाली में उतारने की जिद कराती है, कभी अपरिमित उत्साह, अनन्त उल्लास और उद्दाम उमंगों के लहराते सागर की तीव्र तरंगों पर तैरते हुए मानव मन को जीवन के सूने तट पर लौट चलने को कहती है, और अन्त में वही गति हमें, श्वेत-केश और क्षीणकाय, करके हाथ में छडी पकड़ाकर 'वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डम्' की सन्तवाणी को प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर करा देती है। सृष्टि की सभी चर-अचर वस्तुएँ जीवन की इसी बदलती गति के कारण बनती-बिगड़ती रहती हैं, रूपान्तरित होती रहती हैं, दृश्य और अदृश्य होती रहती हैं।

जिस मुग्धा नारी के शील-सौन्दर्य और सारल्य पर पचास वर्ष पूर्व हम मन्त्र-मुग्ध रहा करते थे, जिसकी चंचल चितवन से आहत होकर हम आत्म-विस्मृत हो जाते थे, जिसकी शारीरिक सुरभि से सहज विचलित होकर हम उसके प्रेमपाश में बँध जाते थे, जो हमारी अदम्य शक्ति और अद्भुत सम्बल की प्रेरणा-पयस्विनी बनकर हमें जीवन में सदा अमृत पान कराती थी, वही नारी, मेरी भूतपूर्व धर्म-पत्नी, वर्तमान

प्रेमिका और वैराग्य का सन्देश सुनाने वाली भावी साध्वी आज मेरी आँखों के सामने बाँस की मजबूत छड़ी अपने कमजोर गोरे हाथों में पकड़कर बेड से नीचे उतर रही है। पता नहीं वह स्वयं अपने जीवन के अन्तिम बड़े दिन को विदा देने की मुद्रा में धरती पर पैर रख रही है या बड़ा दिन स्वयं उसे रुपहले दाम्पत्य के ऊँचे शिखरो से क्रमशः नीचे उतारकर आगे का अज्ञात मार्ग दिखला रहा है।

शाश्वती जमीन पर उतरीं, छड़ी के सहारे बाथरूम तक गईं कुछ देर में कराहती हुई, मुँह खोले, बड़ी-बड़ी साँसें अन्दर लेती हुई लौट आईं, चुपचाप बेड के एक कोने पर हाँफती हुई बैठ गईं। कुछ देर के बाद जब श्वास की गति सामान्य अवस्था मे लौटी तो मुझसे कहने लगीं, "अँधेरा हो गया है, सारे कमरों की मर्करी लाइट जला दो। शाम के छः बज चुके हैं, विवेक और अर्चना बच्चों के साथ इस ठण्डक मे आठ बजे से पहले ही लौट आएँगे। तुम मिश्रा जी की दुकान पर जाकर पराग दूध के चार पैकेट लेते आओ, लौटते समय ताजा पनीर और मटर लेते आना, बाहर से गेट बन्द कर लो। मैं एक पान खाकर थोड़ी देर टी.वी. देखूँगी।"

"ठीक है, अभी भी तुम्हें गृहस्थी की चिन्ताएँ सता रही हैं।" यह कहता हुआ मैं बाहर का गेट बन्द करके बाजार की ओर निकल पड़ा। लगभग एक घण्टे के बाद जब दूध, पनीर, सब्जी और गैस के गुबारे के साथ घर लौटा तो देखा विवेक, अर्चना, सौम्या और श्रेयस श्रीमती जी को घेर कर बैठे पिकनिक के किस्से सुना रहे हैं।

अभी तक गम्भीर मुद्रा में खोई हुई पत्नी, दादी अम्मा की हैसियत से पोती-पोता की हँसाने वाली बातें सुनते-सुनते अपने बचपन के दिनों में लौट आई थीं, वे कुरेद-कुरेद कर सौम्या और श्रेयस से आज की रोचक पिकनिक की एक-एक घटना पूछे ले रही थीं और साथ में मूँगफली छील-छील कर उन दोनों को बारी-बारी से खिलातीं और फिर उनकी जबान पर थोड़ा सा मसालेदार नमक रख देतीं। जल्दी-जल्दी समय कट गया। नौ बजते ही मूँग की खिचड़ी, पापड़, अचार, सलाद और एक-एक पीस छेने के रसगुल्ले से महकती हुई प्लेटें सामने आ गईं। खाना खत्म होते ही मैंने शाश्वती को दवा खिला दी, कमरे की लाइट आफ करके नाइट बल्ब आन कर दिया और बहुत गहरी नींद में सो गया।

दूसरे दिन पच्चीस दिसम्बर, रविवार की प्रातः मेरी बेटी ज्योत्स्ना आ गई, वह पास में रहती थी। इधर-उधर की दो चार हँसाने वाली बातें कहने के बाद वह बोली, "देखिए माता जी, अब आप खाइए पीजिए खुश रहिए दवाएँ छोड़ दीजिए, मायामोह कम कीजिए जो कुछ दान दक्षिणा देना है हम लोगों को दे डालिए।"

जो दो चार पैसे मैंने अपने जीवन में बचाए थे, वे रामनगर के एल.डी.ए. वाले मकान में मेरी बीमारी के दिनों में चोरी चले गए। मेरी सारी बक्सें खाली पड़ी हैं। मेरे कपडे और तुम्हारे पिताजी के जरूरी कागजात के अलावा उनमें कुछ नहीं बचा है।'' माँ-बेटी की चल रही बात के बीच में ही मैंने हस्तक्षेप करते हुए कहा, ''रखा सब कुछ है तुम्हारी माँ के बक्सों में, पर अभी किसी को कुछ दिया नहीं जाएगा।'' मेरी बात सुनकर स्वभाव से लोभी प्रवृत्ति वाली ज्योत्स्ना तुनककर अपने घर लौट गई।

नहा-धोकर मैं गीता के दूसरे अध्याय और श्रीमती जी रामचरितमानस के सुन्दर काण्ड का पारायण काल पढ़ने लगीं। कुछ देर बाद ध्यान उपासना से निवृत्त होकर मैं श्रीमती जी की दवा लाने डा. आर.पी. मिश्र विख्यात वयोवृद्ध होमियोपैथ के घर पहुँच गया, और उनकी क्लीनिक में जहाँ वे अकेले बैठे स्वयं बोर हो रहे थे, प्रवेश करके उनके सामने बैठ गया, उनका पर्चा उनके सामने रखता हुआ बोला, ''डा. साहब मेरी वाइफ को साँस लेने में बहुत तकलीफ होती है, रात में नींद नहीं आती है, खाँसी और हंफनी शुरू हो जाने पर वे उठकर सारी रात आगे तकिया रखकर उसी के सहारे अधझुकी बैठी रहती हैं। साथ-साथ उनका हीमोग्लोबिन घटता हुआ पाँच हो गया है,'' डा. मिश्रा श्रीमती जी का हाल सुनकर अपने घमण्डी स्वभाव के अनुसार एक शब्द मुझसे नहीं बोले, अपने रोगी रजिस्टर में कुछ बिन्दु नोट कर लिए और एक छोटी केबिन में जाकर थोड़ी देर में दो छोटी-छोटी शीशियाँ सफेद गोलियों से भरीं, जिनके कार्क के ऊपर नम्बर एक और नम्बर दो लिखा हुआ था लेकर बाहर निकले और मुझे दवा देते हुए बोले, ''इन्हें बदल-बदल कर तीन-तीन घण्टे के बाद खिलाइएगा—एक बार में केवल चार गोलियाँ, अनार का गुनगुना रस, पपीते की सब्जी, पालक-मूली-गाजर-शलजम-चुकन्दर और टमाटर का सूप एक बार प्रतिदिन पिलाइए। एलोपैथी की कोई दवा नहीं दीजिएगा नहीं तो आफत हो जाएगी।'' मैंने उनकी होमियोपैथी की चालीस नम्बर वाली गोलियों की दो शीशियों की कीमत साठ रुपए देकर अपने घर की राह पकड़ी।

पन्द्रहवाँ अनुच्छेद

मैंने श्रीमती जी की होमियोपैथिक चिकित्सा, अहर्निश परिचर्या और चिकित्सक के निर्देशानुसार खान-पान की व्यवस्था करने का दायित्व अपने बूढ़े पर मजबूत कन्धों पर अकेले ओढ़ लिया। मैंने सोचा कि परिवार के थके-माँदे सदस्यों पर एक बारहमासी

रोगी की अप्रिय सेवा का भार क्यों डालूँ--चुपचाप खामोशी से अपनी जिम्मेदारी अकेले निवटाने लगा। सवेरे जागते गीजर का गर्म पानी एक मग, कोलगेट टूथपेस्ट ब्रश सहित उनके बेड के पास स्थायी रूप से पड़ी मेज पर रख देता। जब तक वे हाथ-मुँह धोकर अपनी रंगीन छोटी तौलिया से मुँह पोंछतीं, मैं सुन्दर नए प्याले मे खुशबूदार चाय बनाकर उनके सामने पेश कर देता। वे चाय पीतीं, मैं चाय पीता और इसी बीच आज के राष्ट्रीय सहारा में छपी नगर की सड़क दुघर्टनाएँ, सोने के चढ़ते-उतरते भाव सुना देता। वे कभी-कभी अपना चश्मा लगाकर अखबार में छपे चित्रों में श्री अटल बिहारी वाजपेयी और सोनिया गाँधी को पास-पास बैठे देखकर खुश होतीं और मजाक में कह देतीं--इन दोनों समझदार राष्ट्रीय नेताओं को एक साथ इसी तरह हमेशा एक होकर बैठना चाहिए। एक दिवसीय क्रिकेट की टेस्ट शृंखला में भारत की टीम का स्कोर देखना शायद ही कभी भूलतीं। उन्हें दवा खिलाकर अखबार की हल्की-फुल्की बातों में व्यस्त रखकर अपनी डेली शेविंग का काम कर डालता। कभी-कभी अखबार पढ़ते-पढ़ते वे इतनी ध्यानमग्न हो जातीं कि उन्हें दीन-दुनिया की खबर न रहती। एक दिन ऐसे क्षणों में उनसे प्रश्न कर लिया, आप अखबार पढ़ते-पढ़ते कहीं खो क्यों जाती हैं ?

"जब मैं अखबार में पढ़ती हूँ कि नवविवाहिता युवा पत्नियाँ अपने पतियों द्वारा दहेज कम लाने के कारण जला दी गई, तो मेरा मन रोने लगता है। कौन माँ-बाप अपनी बेटी की खुशी के लिए सामर्थ्य भर दहेज नहीं देता ? सभी परिवारों की अपनी-अपनी आर्थिक सीमाएँ होती हैं। वे कितने बड़े हत्यारे हैं जो अपनी पत्नी को जला देते हैं। युवा पत्नी को जलाते समय उनकी मनुष्यता कहाँ लुप्त हो जाती है। मैं समझती हूँ दहेज़-हत्याओं में सारा दोष पतियों का होता है। वे शार्ट-कट अपना कर पैसे कमाना चाहते हैं। पुलिस स्टेशन पर एफ.आई.आर. दर्ज करने पर दोहरे-चेहरे वाले पुलिस-अधिकारी हत्यारे पति और उसके परिवार के सदस्यों को पकड़कर जेल में बन्द करवा देते हैं आरोप पत्र दाखिल होने ही अभियुक्तों पर न्यायालय में लम्बा मुकदमा चलता है। दोनों ओर से अख़बारबाजी होती है, पर अन्त में वही ढाक के तीन पात। पतिदेव जेलखाने से छूट कर खुली हवा में निकल आते हैं और समाज के दूसरे कमीने लोग फिर उसी हत्यारे नवयुवक के साथ अपनी पुत्री की शादी के फेरे लगवा देते हैं। शायद कोई अपवाद सूचक दिन होगा जब किसी नव-विवाहिता नारी शरीर के जलाए जाने की हृदयविदारक घटना का दुःखद समाचार मुझे इन अखबारों मे पढ़ने को न मिलता हो। इस राक्षसी दुष्प्रवृत्ति का अन्त नवयुवक आगे बढ़कर स्वयं कर सकते हैं। क्या हो गया है भारत के अर्थ-लोलुप भद्र-समाज को ? देश भर में छाए सशक्त नारी संगठन ऐसे हत्यारों के घरों के सामने बैठकर आमरण अनशन-प्रदर्शन और सत्याग्रह क्यों नहीं शुरू करते ? ऐसे पत्नी-हन्ताओं की काली

सूची तैयार करके महिला आयोग द्वारा उनका सार्वजनिक बहिष्कार क्यो नही कराया जाता ? कानून अपना काम धीरे-धीरे करे पर समाज तो अपना काम तेजी से करे। ऐसे हत्यारे पतियों के साथ अपनी बेटी की शादी रचाने वाले पिताओं को भी कठोर दण्ड दिए जाने का कानून बन जाना चाहिए, जैसे कि हत्या के षड्यन्त्र में वे स्वय एक सहयोगी बन चुके हों। मुझे लगता है शायद हमारा नारी समाज स्वयं संवेदना-शून्य होता जा रहा है, आज आर्थिक विषमता के वातावरण में नारी की सबसे बड़ी शत्रु नारी स्वयं हो रही है चाहे वह खुलकर दहेज़-हत्या के दुष्कृत्य में शामिल होती हो चाहे प्रच्छन्न रूप से, इस घृणित कार्य में अपना समर्थन प्रदान करती हो।''

''मैं तुम्हारी सामाजिक चेतना की सराहना करता हूँ, तुम इन सुझावों को लिखकर 'सम्पादक के नाम पत्र' शीर्षक के अन्तर्गत किसी दैनिक में प्रकाशित क्यों नहीं करवा देतीं ?'' मैंने श्रीमती जी के अबाध चिन्तन मे व्यवधान डालते हुए कहा। वे नाराज हो उठीं और बोलीं--

''सुनो तुम मेरा ध्यान भंग न करो।''

''मैं ध्यान भंग नहीं कर रहा हूँ, मैं कहना चाहता हूँ कि दहेज हत्याओं के सम्बन्ध में तुम्हारे मौलिक विचार नई सामाजिक चेतना को जन्म दे सकते हैं।''

''मेरी पूरी बात सुनो। प्रश्न यह है कि पत्नी हन्ताओं को नौकरी से निकाला क्यों नहीं जाता ? चाहे सार्वजनिक उपक्रम हो चाहे निजी उपक्रम हो, दोनों पर यह वैधानिक जिम्मेदारी डालनी चाहिए कि वे पत्नी-हन्ताओं को तुरन्त सेवा से मुक्त कर दें। इसके अतिरिक्त समाज द्वारा उन्हें चिन्हित करके तिरस्कृत किया जाना चाहिए, ताकि कोई दूसरा व्यक्ति ऐसे हत्याभियुक्तों के साथ अपनी प्यारी बेटी न ब्याह सके। हर गरीब घर में जन्म लेने वाली पढ़ी-लिखी बड़ी हो रही कन्याओं की इस दुःखद परिणति का अन्त कब होगा ? उन्हें स्वावलम्बी बनाकर उत्पादक आर्थिक इकाई के रूप में अपने परिवार के विकास में जुड़ जाना चाहिए। जब तक कोई जरूरतमन्द नवयुवक उनसे विवाह करने में स्वयं इच्छुक न हो। शिक्षित कार्यरत नवयुवक बिना दहेज के विवाह करने में स्वयं अग्रणी बनें, अन्तर्जातीय विवाहों की सांस्कृतिक परम्परा का श्रीगणेश हो गया है। राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक उत्सवों के अवसर पर सामूहिक विवाहों की नई परम्परा चल पड़ी है। लखनऊ के शास्त्री नगर में तो इस परम्परा का कब का बीजारोपण हो चुका है।'' जब इस प्रकार श्रीमती जी का आवेशपूर्ण दहेज-हत्या विरोधी चिन्तन चल रहा था और मैं बैठा-बैठा बोर होने लगा था तभी अर्चना टोस्ट मक्खन और चाय लेकर माताजी के सामने आ खड़ी हुई। उसे नाश्ते के साथ आया देखकर मैं प्रसन्न हुआ, मैंने देवी जी के हाथ से अखबार छीन लिया और प्रातःकालीन नाश्ते का श्रीगणेश करने को कहा।

सोलहवाँ अनुच्छेद

मृत-प्राय अन्तिम सप्ताह का एक-एक दिन जैसे-तैसे बीतता जा रहा था और मुझे नित नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था। आज सत्ताईस दिसम्बर का प्रातःकाल मुश्किल से देखने को मिला, शाश्वती अभी तक बेड पर ही अपने शारीरिक कष्टो का अनुभव करती हुई पड़ी थीं। रात में-तेज बुखार, लगातार खाँसी, साँस फूलना, लिहाफ ओढ़े बैठे-बैठे सारी रात काटना--इन सबसे क्लान्त, अशक्त और भविष्य की शारीरिक चिन्ताओं से ग्रस्त श्रीमती जी सोती-जागती, करवटें बदलती बिस्तर पर अपनी अस्तप्राय संज्ञा का अनुभव करा रही थीं। अपनी आदत से मजबूर दीवाल पर टँगी क्लाक को मैं बार-बार देखता और कह देता, सात बज चुका है, क्या अभी बेड पर से उठने का मन नहीं हो रहा है ? वे मेरे शब्द सुनकर भी मौन रहीं, बिना सोचे-समझे मैं किचेन में जाकर चाय बनाकर साथ में एक भगौने में खौलता पानी ले आया। पहले चाय पिला दी, फिर प्लास्टिक के हरे रंग के इनहेलर में गर्म पानी डालकर पास की छोटी मेज पर रखते हुए बोला, "लीजिए मैडम। अब गर्म-गर्म बफारो द्वारा गले का सेंक कर लीजिए।" भारी मन और बोझिल तन से नाराज होकर श्रीमती जी उठीं, मुझे देखा खामोश रहीं। फिर कुछ देर में धीरे से बोलीं, "क्या बात है ? आजकल मेरी नर्सिंग के अलावा तुम्हारे पास और कुछ काम नहीं रह गया ?"

उनके इस प्रश्न का उत्तर मेरी जबान तक तो आया पर मैं ख़ामोश बना रहा।

उन्होंने प्लास्टिक की बोतल अपने सामने रखी, तीस-चालीस साल पुरानी गाँधी आश्रम वाली हरी धारीदार ऊनी-चादर पास से उठाकर अपना शिर ढक लिया और बफारें लेने लगीं। कुछ देर तक गला और साँस की नली भाँप से सेंककर सिर से चादर उठाकर दूर फेंक दिया, बड़ी तौलिया से चेहरे पर निकला पसीना और भाप की नमी को पोंछ लिया। इतने में मैंने अदरक और श्यामा तुलसी की चाय की पत्ती से तैयार गर्मागर्म कड़क चाय का एक प्याला उनके सामने पेश कर दिया। मुझे पूरी तरह देखती हुई हल्की-हल्की मुस्कराईं, बोलीं, "तुम क्यों कर रहे हो मेरी इतनी सेवा ? थोडी देर में अर्चना नीचे उतरेगी, स्वयं चाय बनाएगी, थोड़ी सी प्रतीक्षा कर लेते।" अपने चेहरे पर मैंने स्वावलम्बन की झलक छिटकाते हुए कहा, "देखिए मैडम सात बजकर तीस मिनट हो चुके हैं। हम लोगों की बेड-टी का टाइम जाड़े के मौसम मे हमेशा सात बजे रहा है, कभी-कभी पौने सात बजे भी बेड-टी मिल जाती थी। ऐसी दशा में अपनी आदत का गुलाम मैं उठ बैठा, थोड़ा सा काम कर डाला, हाथ-पैर चलाकर थोड़ी सी शारीरिक चेतना प्राप्त कर ली।" मेरी बातें सुनकर श्रीमती जी उठीं, छड़ी के सहारे ट्वायलेट जाकर फ्रेश हुईं, बेड पर बैठ दो थ्रेपटीन बिस्कुट और

एक कप दूध लेकर आज का दैनिक जागरण उठाकर पहला पन्ना देखने लगी। मैंने हँसकर कहा, "देखिए मैडम—आज आप अखबार न देखिए आज ऐसा मनहूस दिन है कि लखनऊ अथवा उत्तर प्रदेश में कोई भी दुर्घटना नहीं हुई। बदकिस्मती से आज किसी नव-विवाहिता का किचेन में स्टोव भी नहीं फटा। लीला टाकीज में रिलीज हो रही है आण्टी नम्बर वन, हास्य-रस की नई फिल्म आ गई है।"

उन्होंने अखबार के पहले पन्ने पर लालू यादव को जेल जाते और साथ मे राबड़ी देवी को मुख्यमन्त्री बिहार के चित्र को चश्मे से देखा, फिर हँस के बोली, "तुम भी जरा देखो, यह राबड़ी कितनी सीधी सादी, रोटी चौका वाली घरेलू माडल की महिला दिख रही है, यह क्या चलाएगी सरकार ? इसको तो अधिकारी वर्ग खुद ही चलाएगा, अनेक गड़बड़ घोटाले और अनेक सेनाओं वाले बिगड़े बिहार में इस सीधी-सादी औरत को मुख्यमन्त्री क्यों बना दिया गया?"

"ताकि बिहार सरकार की सारी सत्ता और राजनीतिक शक्ति परोक्ष रूप से 'लालू' के हाथ से निकलने न पाए," मैंने उन्हें समझाने की कोशिश में कहा। "शासन सत्ता की बागडोर जब तक लालू के हाथों में रहेगी, उन्हें जेल में आराम मिलेगी, जेल जाने से बचने में आसानी रहेगी, पत्नी के मुख्यमन्त्री पद पर बने रहने से वास्तव मे 'लालू' स्वयं पर्दे के पीछे मुख्यमन्त्री बने रहेंगे। जब तक उनका मुकदमा अनेक अदालतों के बीच चक्कर लगाता रहेगा, उनकी टिमटिमाती लालटेन बिहार में जलती रहेगी—जब तक समोसे में आलू—बिहार में लालू की कहावत चरितार्थ रहेगी।"

पति-पत्नी की संयुक्त रूप से आज के समाचारों पर एक नजर पड़ रही थी, मेरे एक रिश्तेदार डाक्टर ए.पी. दुबे होमियोपैथ वह भी टू-इन-वन थे। यानी सरकारी स्कूल में साइंस टीचर और होमियोपैथी के डाक्टर मेरे घर आकर श्रीमती जी को प्रणाम करके अलफा-अलफा की टानिक और स्पांजिया तीस शक्ति की दो शीशियाँ दे गए। और उनके सेवन की तरकीब बतलाकर थोड़ी देर बैठकर अपनी क्लीनिक चले गए।

दो-तीन दिन मेहमानों के आने-जाने व बड़े दिन की छुट्टियों में दोनों बच्चो के घर में मौजूद रहने के कारण आसानी से गुजर गए। अब इकतीस दिसम्बर आ पहुँचा, मुझे प्रातःकाल से ही इस बात की खुशी थी कि आज टी.वी. के विभिन्न चैनलों पर नए वर्ष के आगमन के अवसर पर रोचक रंगारंग कार्यक्रम देखने को मिलेगा। पर दूसरी ओर श्रीमती जी का स्वास्थ्य प्रत्यक्ष रूप से गिरता जा रहा था। मैंने उनसे कहा, "अपना ट्रांजिस्टर खोल दो, इस समय भक्ति-संगीत का प्रोग्राम चल रहा होगा, उसे सुन लो मुझे भी सुना दो।"

मेरी बात सुनकर आन्तरिक प्रसन्नता से आलोकित मुख मण्डल की आभा मेरी ओर प्रत्यावर्तित करते हुए बोलीं, "इधर आ जाओ, मेरे पास बैठो, तुमसे कुछ

"मैं दवाएँ कैसे बन्द करूँ ? वास्तव में दवाएँ तुम्हें मैं इसलिए खिलाता हूँ कि तुम अपनी न्यूनतम शारीरिक क्षमता बनाए रख सको और अपने दैनिक कार्य स्वयं निबटाती रहो। मेरी बात मानो, हल्की-फुल्की होमियोपैथी की दवाइयाँ यो ही लेती रहो।"

"बिल्कुल नहीं, तुमने सारी जिन्दगी मुझे दवाओं के अलावा और खिलाया ही क्या है ?"

"दूध की बरफी, सफेद रसगुल्ले, मथुरा के पेड़े, मेरठ की नान खटाई, रामपुर का हलवा और अलमोड़ा के बाल, आगरा का पेठा और दालमोट, इलाहाबाद के लोकनाथ के चने—किसने खाए हैं ?"

"मैंने, मगर काफी नाक रगड़ने के बाद।"

"तो फिर मिथ्या बात क्यों बोलती हो ?"

"मैं अपनी कही बात का संशोधन किए देती हूँ। सारी जिन्दगी तुमने मुझे एलोपैथी की कड़वी गोलियाँ, नशीले कैपस्यूल, पीड़ादायक इन्जेक्शन, आयुर्वेद के तेज गन्ध वाले आसव, हर तरह की सूखी घास-फूस के हकीमी काढ़ों द्वारा मेरा स्वास्थ्य ठीक रखा है।" जब जब जिद की, तुमने मेरी पसन्द की मिठाइयाँ भी खिलाईं, पर दवाएँ हर दिन, बिना माँगे और मिठाई महीने में एक दिन बार-बार माँगने पर।"

"बस।"

"हाँ बस, अब मैं कोई भी दवा नहीं खाऊँगी। अब मेरी अधिक जीने की इच्छा नहीं है, मैं अपनी शारीरिक शक्ति को भी बनाए रखने के पक्ष में नहीं हूँ। मै आज ही तुम्हारी लाई हुई सारी दवाएँ पुरानी और नई सभी डस्टबिन में फेके दे रही हूँ।" यह कहकर पहले से पास रखा दवाओं से भरा एक बड़ा पालीथीन का थैला उन्होंने घर की महरी के हाथों मेरी आँखो के सामने डस्टबिन में फेंकवा दिया।

मैं उनके इस कार्य को देखकर भौचक्का रह गया, कुछ सहम गया, फिर राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन के दलों की भाँति समझौता फार्मूला अपनाते हुए बोला, "अगर दवाओं से तुम्हें एलर्जी हो गई है तो तुमने दवाएँ फेंकवाकर ठीक ही किया। मन चाहा नाश्ता करो, खाना खाओ और विश्राम करो, मघई पान से अपनी मुख-शुद्धि करो, जब तक ऊपर वाला चाहेगा, यों ही जीती रहोगी।"

"मुझे ताज्जुब है कि आज तुमने पहली बार समझ से काम लिया है, पर अब अपनी कही हुई बात पर अटल रहना।"

"हाँ हाँ बिल्कुल, जैसे अटल जी अटल रहते हैं," कहकर मैंने श्रीमती जी का आक्रामक रुख कुछ सामान्य कर दिया।

वे धीरे-धीरे आत्म-तुष्टि की मुद्रा में मुस्कराती रहीं और मैं अचरज भरी पैनी नजर से उनके कमजोर गोरे चेहरे पर उनकी आन्तरिक भावनाओं की बनती-बिगडती

रेखाओं का अवलोकन करता रहा।

विवेक द्वारा कल शाम लाए हुए मघई पान का जोड़ा प्रेम से लगाकर उन्होने अपने मुँह में दबा लिया। कुछ आराम के बाद धीरे से कहने लगीं, "देखो, मैं तुम्हे कितनी बार समझा चुकी हूँ कि पति और पत्नी का संयुक्त भाग्य परिवार के सदस्यो पर अपना असर दिखलाता है। तुम मानो या न मानो यह बात तुम्हारी समझदानी पर निर्भर करती है, पर सच्चाई यह है कि तुम्हारे टूटे-फूटे कच्चे-पक्के घर में ज्योही मेरा पैर पड़ा, तुम प्रथम श्रेणी में छात्रवृत्ति सहित इण्टरमीडिएट परीक्षा में उत्तीर्ण हुए, तुम्हारा नया घर बन गया, उस नए मकान में सबसे पहले मैंने अपना पैर रखा, तुम्हे शीघ्र शिक्षा विभाग में अधिकारी का पद मिल गया, लखनऊ में ट्रान्सफर हो आया, बेटे-बेटियाँ घर के आँगन में किलकारियाँ भरने लगीं। लखनऊ आकर तुमने सीख लिया अपने अफसरों व उनकी बीवियों की खुशामद करना, इसका पुरस्कार तुम्हे मिलने लगा, लगातार लखनऊ में ही प्रोन्नतियाँ मिलती रहीं, पुरस्कार मिलते रहे, अखबार वाले तुम्हारी योग्यता और कर्मठता के कामचलाऊ कालम लिखते रहे। तुम राजधानी में अंगद के पाँव की तरह जमे रहे, जबकि लखनऊ तुम्हारा गृह-जनपद था जन्म-स्थान था और राजपत्रित अधिकारी अपने गृह-जनपद में उन दिनों नियुक्ति नहीं पा सकते थे।"

"अच्छा अब बस करो, आत्म-श्लाघा के गीत तुमने कभी नहीं गाए आज तुम क्यों बहकी जा रही हो ?" मैंने श्रीमती जी की बात का टापिक बदलना चाहा।

"अब इस विषय में मेरी तुमसे आख़िरी बात है, ख़री और कड़वी तुम्हें सुन लेना चाहिए।"

"बोलो।"

"शिक्षा अधिकारी के पद पर, राजधानी में जमे रहने से तुम्हारा परिचय क्षेत्र दिनोंदिन विस्तृत होता गया, नए-नए व्यक्ति तुम्हारे सम्पर्क में आते गए, जिनमे प्रभावशाली महिलाओं की संख्या अधिक थी। यद्यपि तुमसे और परिवार जनों से निकट सम्पर्क में आ गई महिलाओं में अधिकांश भारतीय नारियों के चारित्रिक आदर्शो की रक्षा करने वाली थीं, फिर भी मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि उनमें से कुछ सुन्दर और स्मार्ट दिखने वाली महिलाएँ तुम्हें अपने रास्ते पर ले चलने में सफल हो गई। मैने उनकी गतिविधियों पर सूक्ष्म नजर रखना शुरू कर दिया, जहाँ-जहाँ उन्हें तुम्हारे साथ बहकते हुए देखा मैंने उनके आचरण पर कठोर रुख अपनाया, तुम्हें उनके चगुल से न जाने कैसे बचाया।

उन दिनों तुम उन तितलियों के इशारे पर नाचने लगे थे। तुम घर बैठे मेरी गुप्त योजनाओं के संचालन सूत्र को समझ न सके। मैं फोन द्वारा दिन भर की तुम्हारी विभागीय गतिविधियों से इस चतुरता से अवगत होती रहती थी कि तुम्हारे आफिस

के किसी कर्मचारी का मेरी इन सामान्य क्रियाओं की ओर कभी ध्यान नहीं गया। तुम्हें आज बता रही हूँ कि तुम्हारे डायरेक्टर डा. मेहरोत्रा ने तुम्हारे हरदोई के जिला विद्यालय निरीक्षक के कार्य काल में तुम्हारे विषय में मुझसे न जाने क्या-क्या जानकारियाँ प्राप्त करनी चाही थीं। वह बहुत घाघ टाइप के अधिकारी थे और मेरा अत्यधिक सम्मान करते थे, पर तुम्हारी महिला मित्रों के कार्यकलापों के सम्बन्ध में मैंने उन्हे कोई हवा नहीं दी। मैंने तुम्हारी व्यक्तिगत रंगीन जिन्दगी पर ऐसा पारिवारिक आवरण डाल दिया कि उनके हाथ कुछ नहीं लगा। मैं मानती हूँ कि यौवन की एकान्तता पुरुष और नारियों को दो-चार कदम अपनी तेज़ हवा में इधर-उधर उड़ा ले जाएँ, तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं।

तुम प्रोन्नतियाँ पाते गए, नए-नए पद और नए-नए हेडक्वार्टर्स तुम्हें मिलते गए और मैं तुम्हारे कदमों के साथ अपने कदम मजबूती से आगे बढ़ाती रही। तुम्हे शायद स्मरण नहीं होगा कि हरदोई जनपद के हत्याहरण नामक स्थान पर स्थित किसी इण्टर कालेज के भवन के शिलान्यास-समारोह में अपने अस्वस्थ हो जाने और वहाँ के दो विरोधी गुटों में गोली बारूद चल जाने से बिगड़ी कानून व्यवस्था को ध्यान मे रखकर तुम वहाँ रात्रिकालीन कार्यक्रम में सम्मिलित होने में आगा-पीछा कर रहे थे, पर मैं तुम्हें रात्रि में वहाँ अपने साथ दो सशक्त कार्यक्रम-सहयोगियों की उपस्थिति मे अपने साथ युक्तिपूर्वक ले गई, जहाँ हजारों ग्रामवासी तुम्हारे शुभागमन की प्रतीक्षा मे घण्टों से बैठे हुए थे। तुमने विद्यालय भवन का शिलान्यास मुझसे करवाया मेरे नाम का पत्थर लगा। हत्याहरण के जलाशय के पास स्थित किसी प्रायमरी स्कूल के भवन में हम दोनों ने रात्रिवास किया और अगली प्रातः मुख्यालय लौट आए।"

"अच्छा अब बस करो, अतीत की इन पुरानी स्मृतियों को कुरेदने से तुम्हे कौन सा सुख मिल रहा है?" श्रीमती जी को अकेला छोड़कर टेलीफोन सुनने जाने लगा।

"बस एक और रोचक प्रकरण की तुम्हें याद दिलाना चाहती हूँ, उसे भी सुनो। किसी सनातन धर्म कालेज की प्रबन्ध समिति के निर्वाचन कराने का दायित्व जब तुम्हें शासन द्वारा सौंपा गया, तो वहाँ के दो परस्पर विरोधी गुट पैसा देकर विद्यालय की प्रबन्ध समिति का गठन स्थगित करा देना चाहते थे। उन्होंने उच्च्य न्यायालय से दो बार स्थगन आदेश प्राप्त किया और तुमने दोनों बार अपने दृढ़ संकल्प और अथक प्रयास से स्थगन आदेश निरस्त करा दिया। समाज विरोधी तत्त्वों द्वारा तुम्हे जान से मार देने की धमकी भरे पत्र मिलने लगे और तुम्हारी हत्या करने वाले गुण्डो का प्रबन्ध कर लिया गया। तुमने मेरे परामर्श के अनुसार जिलाधिकारी और पुलिस अधीक्षक की सहायता से निर्वाचन स्थल को पी.ए.सी. से सुरक्षित करवाकर सारे मतदाताओं की बन्दूकें, रायफल्स, कार्बाइन, पिस्टल आदि हाल के बाहर ही रखवा

कर एक-एक पद के लिए अलग-अलग हाथ उठवाकर निर्वाचन कार्य निर्विघ्न रूप से सम्पन्न करा लिया, जबकि मैं प्रधानाचार्य कक्ष में ए.डी.एम. श्री गोयल के साथ स्वयं तुम्हारा पिस्टल रखे हुए सारी स्थिति पर कड़ी नजर रखे हुए थी। नव-निर्वाचित पदाधिकारियों को तुमने कार्यभार सौंपकर शासन को तार/फोन द्वारा सूचना भेज दी। तुम्हारी निर्वाचन प्रक्रिया के विरुद्ध वर्षों तक कोर्ट में समावेश याचिका लम्बित रही पर अन्त में तुम्हारे निर्णय को माननीय उच्च न्यायालय द्वारा वैधानिक घोषित कर दिया गया। वही प्रबन्ध समिति अभी तक विद्यालय का सुन्दर ढंग से प्रबन्ध संचालन कर रही है।

अतीत में खोई उक्त घटनाओं का स्मरण कराने का मेरा एकमात्र उद्देश्य यही है कि तुम्हारी सतत सहयोगिनी के रूप में मैं सदा तुम्हारे साथ हर संकट की घडी में दृढ़तापूर्वक चलती रही हूँ।

तुम्हारे रूढ़िवादी परिवार जन पहले तो मेरे इन कार्यों का हास-परिहास करते रहे पर बाद में उन सभी लोगों ने मेरे साहस-शौर्य, दूरदृष्टि और पातिव्रत की भूरि-भूरि सराहना की।

मेरी ऐसी जीवन-संगिनी प्राप्त करके तुम आज नाना/बाबा और न जाने क्या-क्या बन बैठे हो, तुम्हें मेरे प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए—पर मैं ऐसी इच्छा कभी नहीं रखती और न ऐसा कभी अपने मन में सोचती ही हूँ।''

''अच्छा मैडम अब तो शान्त हो जाओ—आज तुमने मुझे न जाने क्यों इतना बोर किया है। मैं यदि पहले से तुम्हारा इरादा जान जाता तो मैं घर से सवेरे ही नौ दो ग्यारह हो जाता।'' मैंने श्रीमती जी का दाहिना कन्धा पकड़कर धीरे से हिला दिया। वे चौंक पड़ीं, हल्के-हल्के हँसते हुए कहने लगीं, ''मैं तुम्हें केवल यह समझाना चाहती हूँ कि पति-पत्नी अपने जीवन काल में चाहे जितना प्रेम करते रहे हों, पर वृद्धावस्था आते ही उनमें से एक साथी को पहले दुनिया छोड़नी ही पड़ेगी। जो पीछे इस दुनिया में अकेला रह जाएगा उसे अपने वैधुर्य के उत्पीड़क वातावरण में हँसकर जीवित रहने की नई कला सीखनी पड़ेगी, उसे सुखी जीवन व्यतीत करने का सफल अभिनय करना पड़ेगा। मेरी एक सहेली, जो एक दिवंगत आई.ए.एस. अधिकारी की द्वितीय पत्नी की हैसियत से अपना विधवा जीवन व्यतीत कर रही है, अक्सर मुझसे कहा करती है कि पुरुष हो अथवा नारी उसका वैधुर्य काल जीवन का सबसे सुखी कालखण्ड होता है, उसके व्यक्तित्व के सर्वतोमुखी विकास के नए-नए द्वार खुलने लग जाते हैं। आध्यात्मिक साहित्य का मनन, हिमाच्छादित पर्वतों और विकराल ज्वारभाटा वाले समुद्र-तटों का पर्यटन, दर्शन, योगनिद्रा और शून्य-साधना का अभ्यास करने वाले मूल्यवान क्षणों की उपलब्धि और संसार की निस्सारता की आत्मानुभूति करके प्रभु के चरणों पर आत्म-समर्पण आदि कुछ ऐसे कार्य हैं जिनके द्वारा तुम

मेरे दिवंगत हो जाने पर सुख-शान्ति और चिन्तन-मनन में अपने शेष जीवन का मूल्यवान समय आनन्दपूर्वक व्यतीत कर सकते हो। मेरे कटु और यथार्थवादी शब्दों को सुनकर बुरा न मान जाना। मैं चाहती हूँ तुम्हारी कामनाएँ और वासनाएँ नष्ट हों, तुम्हारी सोई हुई आँखें खुलें और मेरे वृद्ध रोगी शिथिल शरीर को वह परम शक्ति जितने दिनों तक इस धरती पर नचाना चाहती हो, उतने दिन तुम मुझे सुख चैन से जीने दो, बोलो अब सहमत हो ?"

इतना लम्बा सारगर्भित और विचारोत्तेजक भाषण शाश्वती ने मेरे दाम्पत्य जीवन मे मुझे पहली बार सुनाया। मैंने परास्त मुद्रा में तत्काल कह दिया, "हाँ-हाँ, भाई सहमत हूँ अब तुम कुछ देर विश्राम कर लो।"

अपने उद्वेलित अंतःकरण में मैं अपने को डूबता उतराता देखता रहा, फिर कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि मेरे सुखी-दाम्पत्य के विस्तृत नभ में चारों दिशाओ से घिरते हुए तिमिर का कुहासा छँट गया। स्थान, समय और अपनी थकी साँसो मे कुछ ताजगी अनुभव होने लगी। झिलमिलाती और बुझती दीप-शिखा की निस्तेज ज्योति सहसा तीव्र प्रकाश छिटकाने लगी।

सत्तरहवाँ अनुच्छेद

मे घर की चहारदीवारी में ही सीमित रहकर अपनी साहित्यिक मित्र मण्डली से दूरभाष द्वारा सम्पर्क करके अपनी मानसिक उद्विग्नता उनसे व्यक्त कर देता, दो-चार पत्र लिख डालता, 'चुन्नू फकीर' शीर्षक उपन्यास के दस-पाँच पन्ने रंग डालता, शाश्वती के साथ दोनों समय की चाय-नाश्ता खाना और गपशप में किसी गैर-आदमी की तरह साथ निभाता। शाश्वती की दिनचर्या में कुछ खास परिवर्तन तो नहीं झलका, पर उनके मुख मण्डल पर अलबत्ता एक नई झलक दिखलाई पड़ने लगी। नौ-दस बजे गीजर के गर्म पानी में विधिवत स्नान करके एक नई साड़ी पहनना, काले चमकीले बालों में सावधानी से कंघा करना, मत्थे पर साड़ी के रंग से मेल खाती गोल बड़ी बिन्दी लगाना, और अन्त में मुँह में मघई पान दबाकर गाव तकिया के सहारे तिरछी मुद्रा में धुली बेडशीट पड़े बेड पर इस प्रकार बैठ जाना जैसे कि कोई सुन्दर गृहस्वामिनी अपने जीवन की उपलब्धियों का ध्यानपूर्वक आगणन करती हुई आन्तरिक उल्लास की प्रत्यक्ष अनुभूति कर रही हो अथवा किसी विराट कवि सम्मेलन में अपने सुमधुर कण्ठ से सुन्दर कविता पाठ करके, श्रोताओं की करतल ध्वनि से आह्लादित होकर

कोई कवयित्री मंच पर तिर्यक् आसीन हो अन्तरिक्ष में देख रही हो। व्यक्ति का चेहरा प्रायः उसके हृदय का दर्पण कहा जाता है। इसी लोकोक्ति को वे चरितार्थ करती। एक दिन ऐसे ही सुखद क्षणों में मैंने शाश्वती से प्रश्न कर दिया, "जब तुम इस ससार में अदृश्य हो जाओगी तो मेरे लिए गौतम बुद्ध का कालचक्र घूमना बन्द हो जाएगा वह स्थिर हो जाएगा और एक ऐसा महाशून्य इस धरती पर उतर आएगा जिसमें मेरी सारी सृष्टि आँखों से ओझल हो जाएगी। सूनी साँसें, बन्द स्पन्दन-सूना हृदय, सूना जीवन यानी मेरे भीतर बाहर सर्वत्र एक भयानक शून्यता की त्रासदी। क्या ऐसी स्थिति में दुनिया के रंगे-सियारों की तरह मैं भी मक्कारी की बातें करूँ ? सच बात तो यह है कि मैं "गतासून गतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः" अर्थात् मरे हुए और न मरे हुए दोनों प्रकार के व्यक्तियों के विषय में ज्ञानी लोग नहीं सोचते।" गीता के द्वितीय अध्याय की इस पंक्ति का शाब्दिक अर्थ समझता हुआ भी यथार्थ मे मैं इसकी भावना को अभी तक हृदयंगम नहीं कर सका। मैं अभी तक तुम्हारी आसन्न मृत्यु की शून्यता का सामना करने का साहस नहीं जुटा पा रहा हूँ। तुम्हारे द्वारा समझाए गए अनेक दृष्टान्त मैं सुनता गया, भूलता गया और कुरुक्षेत्र के मैदान मे अर्जुन की भाँति पूरी तरह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया हूँ ? मोहित हो गया हूँ।"

मेरा प्रश्न सुनकर मुस्कराती हुई वह सँभलकर बैठ गई और बोलीं, "इस सुन्दर परन्तु क्षण-भंगुर संसार में मानव जीवन की अन्तिम परिणति का सामना एक न एक दिन हर पुरुष और हर नारी को करना ही पड़ेगा। माया के अलौकिक आवरण मे और प्रकृति और नारी के सुन्दर साहचर्य में पुरुष इस सत्य को भूला रहता है, अगर ऐसी स्थिति न हो तो विशाल मनुष्य समाज गृहस्थ धर्म का पालन कैसे करे ? इस नश्वर शरीर का कितने दिनों तक भरोसा किया जाए ? मेरा सुन्दर बचपन, अल्हड यौवन और ऐश्वर्यमयी प्रौढ़ता इसी धरती पर न जाने कहाँ मेरे देखते-देखते तिरोहित हो गई ? इस शरीर की बची-खुची चन्द साँसें न जाने कब मेरा साथ छोड़ दें ? मै एक हिचकी लेकर तुम्हारे सामने ही न जाने कब आँखें बन्द कर लूँ ?

अतः मेरी बात मानो अपनी वृद्धावस्था में अब किसी मृग मरीचिका के पीछे दौडना बन्द कर दो। मैंने तुम्हें कई बार समझाया है कि इस सृष्टि में रचना और प्रलय दोनों अवश्यंभावी है। दृश्य जड़-जगत् प्रलय काल में नष्ट हो जाता है, केवल स्रष्टा की महाचेतन शक्ति और उसका दुबारा सृष्टि रचने का संकल्प शेष रह जाता है, हम तुम समस्त प्राणी, धरती के समस्त मानव, समस्त जड़ और चेतन सूक्ष्मरूप मे उस महाशक्ति में संविलीन हो जाते हैं, दुबारा सृष्टि होती है—जड़-जगत् की और जड चेतन के आपसी संयोग से नई सृष्टि का नया क्रम पुनः शुरू हो जाता है।

इस ध्रुव सत्य की यथार्थ अनुभूति करो, उस पर विश्वास करो उसी महाप्रकाश का मैं और तुम एक अंश मात्र हैं। हमारी एकता, सह-अस्मिता जन्मगत है। इस

सत्य की अनुभूति होते ही कौन पति कौन पत्नी और कैसा वियोग ? पति पत्नी के मधुर या कटु जैसे भी सम्बन्ध हों—वे केवल शारीरिक धरातल तक ही सीमित होकर रह जाते हैं। स्थापत्य-कला के शिल्पी, मूर्तिकार, संगीतकार, साहित्यकार और इतिहासकार संसार के प्रसिद्ध प्रेमी-प्रेमिकाओं, सम्राट-सम्राज्ञियों और प्रसिद्ध पति-पत्नियों की प्रेरक स्मृतियों को समय की शिलाओं पर उकेरकर कब तक सुरक्षित रख पाएँगे ? एक न एक दिन उन स्मृतियों को भी महाकाल के विशाल उदर में समाकर नष्ट हो जाना पड़ेगा।

कालचक्र सदा घूमता रहता है रुकता नहीं है। प्राचीन का विनाश और नवीन का निर्माण करता रहता है। इस सुन्दर संसार की कौन सी सुन्दर वस्तु, कौन सी सुन्दर नारी और कौन सा महाबली पुरुष काल का ग्रास होने से बच पाया है ? तुम क्यों नहीं समझते—उस दिव्य शक्ति द्वारा यह मनुष्य योनि और यह अति सुन्दर नारी शरीर मुझे यानी मेरी आत्मा को पूर्व कर्मानुसार प्रदान किया गया था। मैं अपने इस शरीर में अब तक निवास करती रही, पर मैं न तो शरीर थी और न इसका मस्तिष्क और न इसके द्वारा किए गए कार्य ही थी। मैं तो इसकी एक चेतना, एक ऊर्जा, एक दीप-शिखा मात्र थी। मुझे इस अनुपयोगी शरीर को छोड़ना ही पडेगा, देहान्तर प्राप्ति के लिए मैं प्रतिक्षण प्रतीक्षारत तैयार बैठी हूँ।

तुम मेरे इस कल्याणकारी कार्यक्रम में अविवेकपूर्ण विघ्न न उत्पन्न करो," यह कहकर वह नीले रंग की सनील की जयपुरी रजाई से मुँह ढक कर सोने की तैयारी करने का अभिनय करने लगीं।

शाश्वती का निरन्तर ज्ञान प्रदर्शन और आध्यात्मिक प्रवचन मेरे पल्ले नही पड़ रहा था। मेरे मन में उसकी बातों के प्रति अनेक शंकाएँ उत्पन्न हो रही थी। पर उसकी शारीरिक अशक्तता पर विचार करके मैं प्रायः मौन रह जाता था। उसके ज्ञान-वर्धक वाक्य मेरे अन्तस में त्रिशूल की नोकों की तरह चुभने लगे थे।

मैं अब तक जिस भावी अनिष्ट की आशंका से आँखें चुराता रहा, उसके सम्बन्ध में कभी विचार विमर्श करने का दुस्साहस नहीं कर सका, अनेक शारीरिक और मानसिक कष्टों को हँसकर झेलता हुआ अपने परिपक्व जीवन में अमन-चैन की साँसें लेता रहा, दिन भर के निर्णायक संघर्षों से जूझता हुआ। जाड़े की रातों में सारी राजधानी के लोगों के साथ गहरी नींद में सोता रहा, कभी-कभी बचपन यौवन-वार्धक्य के रंगीन सपने भी देखता रहा। उसी कटु यथार्थ के प्रति मेरी श्रीमती जी मुझे बार-बार सचेत कर रही हैं। भाव-विह्वलता से ग्रस्त, भारी तन और निराश मन होकर मैं घर से बाहर की पार्क में कुछ देर के लिए टहलने निकल गया।

अठारहवाँ अनुच्छेद

31 दिसम्बर 1999 अपनी अन्त्येष्टि की ओर अग्रसर था। उन्नीस सौ से शुरू होने वाले अन्तिम वर्ष के अन्तिम मास दिसम्बर का दिन समाप्त हो रहा है। अन्तिम वर्ष के अन्तिम मास का अन्तिम सायंकाल अपने काले अन्धकार में सूर्य को निगल रहा है। सायंकालीन अन्धकार की छाया गहराती हुई काली पड़ने लगी। कठोर शीत अपने कष्टप्रद समीर के साथ नगर की सड़कों पर अपना ताण्डव दिखलाने लगा। जाडे से सारा नगर कँपकँपाया, पार्क का घूमना बन्द करके मैं अपने घर वापस आकर, ड्राइग रूम में पड़े तख्त पर कुछ भाव-विभोर मुद्रा में बैठ गया। कभी सामने की दीवार पर टँगे कैलेण्डर में राष्ट्रपिता की सपाट खोपड़ी ध्यानपूर्वक देखता, कभी छोटे गोल शीशे वाली पुरानी स्टाइल की उनकी ऐनक के अन्दर से झलकते उनके दुःखी नेत्रो को ताकता, पर न तो कहीं शान्ति दिखी, न शीत का अभाव और न मन मे अकस्मात व्याप्त कोलाहल कम हुआ। जो विचार आलपीन की नोक की तरह मेरे मन में लगातार चुभ रहा था, वह यह था कि क्या शाश्वती किसी परामनोवैज्ञानिक समस्या से संत्रस्त होकर इस प्रकार की दुर्बोध बातें मुझसे करने लगी है अथवा उसके अन्तस में परत दर परत छिपी कोई ज्ञान-ज्योति सहसा प्रकाशमान हो उठी है। चिन्तातुर और शंकालु होते हुए भी अब तक मेरी जिन्दगी अच्छी-खासी गुज़र रही थी। श्रीमती जी की जिन्दगी की शमा सारे घर को रोशन किए हुए थी। अपने साहित्यिक मित्रो की मण्डली में हाथ से छूटे गैस के गुब्बारे की तरह उड़ना प्रकाशक के शोरूम मे सजी हुई नई पुस्तकों के शीर्षक पढ़ना, दलित लेखन के एकांगी दृष्टिकोण की समीक्षा करना, रेडियो वार्ता के आलेख तैयार करना, कभी-कभी पुराने श्वेत-श्याम चित्रों वाले अलबम निकालकर अपने विभागीय कार्यकलापों में पधारे विशिष्ट अतिथियों के बीच विराजमान शाश्वती और अपनी छोटी पुत्री ज्योत्स्ना के छाया चित्रों को ध्यान से देखना इसी प्रकार की कुछ मनचाही बातों में सारा दिन आया-गया हो जाता था। हालांकि नौ की संख्या मेरे लिए हमेशा कुछ न कुछ कष्ट देती रही, फिर जब नौ की संख्याएँ तीन-तीन बार एक साथ मिलकर मुझे घेर लें तो मेरा क्या होगा ? पिछला वर्ष यानी मेरे जीवन का सर्वाधिक कठिनाई वाला वर्ष न जाने कैसे गुजरा था। श्रीमती जी की बारहमासी बीमारी, उनकी लगातार घटती जीवन-शक्ति, नित्य नए आर्थिक सकटों से जूझता मैं, उनकी सेवा-शुश्रूषा में सारे दिन भागदौड़ और फुरसत के दुर्लभ क्षणों में उनके बेड पर बैठकर गम्भीर चिन्ताओं में डूबकर उन्हें देखते रहना, और दैव योग से कभी आ गई उनके अधरों की अर्थपूर्ण मुस्कराहट देखकर अपना दुखदर्द भूल जाना—बस इसी का नाम था 'मेरी जिन्दगी।'

वर्ष 1999 आज दिल्ली और लखनऊ दोनों के दूरदर्शन प्रसारण केन्द्रो पर नए वर्ष के शुभागमन के अवसर पर रोचक रंगारंग कार्यक्रम प्रसारित होने को था। मैंने रात्रिकालीन खाने में एक कटोरी खीर, एक पूड़ी खाई, श्रीमती जी ने आधी कटोरी खीर खाकर मेरा साथ निभाया। दस बजे से ग्यारह बजे तक बिस्तर पर लेटे-लेटे विविध भारती के फिल्मी गीत सुने और दूरदर्शन पर राजनीतिक घटनाक्रम की समीक्षाएँ सुनता रहा। इसी बीच विवेक ने अपने कमरे से आवाज दी, पिताजी, अब टी.वी. पर नए वर्ष का विशेष प्रोग्राम शुरू होने जा रहा है, आप माताजी को हाथ पकड कर मेरे ऊपर के कमरे में ले आएँ या कहिए तो मैं ऊपर आने में माताजी की मदद कर दूँ। मैंने उत्तर दिया, "नहीं मैं स्वयं तुम्हारी माताजी को हाथ पकड़कर ऊपर लिए आ रहा हूँ।" जब मैंने श्रीमती जी से अपनी छड़ी व मेरा हाथ पकड़कर जीना चढ़ने को कहा, तो वे बोलीं, "अभी बहुत जल्दी है, प्रोग्राम शुरू होने दो, फिर चलेंगे या तुम पहले चलो, मैं बाद में अपने-आप चली आऊँगी।" वे ऊपर नहीं गईं और इसीलिए मैं भी ऊपर नहीं गया। मैंने अपने ट्रांजिस्टर का एफ. एम. चैनल खोलकर लेटे-लेटे दिल्ली से आ रहे रंगारंग प्रोग्राम को सुनना शुरू कर दिया।

मध्यरात्रि साढ़े बारह बजे तक हम दोनों नए वर्ष का आकाशवाणी का रोचक कार्यक्रम मजे में सुनते रहे। थोड़ी देर में विवेक और अर्चना पुत्र और पुत्रवधू ने मेरे कमरे में आकर हम लोगों का चरण स्पर्श करके नव वर्ष की शुभकामनाएँ प्राप्त कीं। वे अपने बेडरूम में सोने चले गए। मैंने श्रीमती जी की ओर अपना मुँह घुमाकर कहा, लो नई सहस्राब्दि का नया दिन हम लोगों के पास आ पहुँचा, तुम्हें नूतन वर्ष की हार्दिक बधाई।

"तुम्हें भी मेरी ओर से नए वर्ष की अन्तिम बधाई" यह कहते हुए श्रीमती जी ने दीवाल की ओर अपना मुँह फेर लिया। थोड़ी देर मौन धारण करके मैंने धीरे से उनके कान में कहा, "देखिए मैडम, पुराना वर्ष चला गया, पुरानी बातों को विदा कर दिया। नया वर्ष आ गया है—अब नई बातें शुरू करो। सबसे पहले तुम अपने विशाल गोरे मस्तक पर प्रेम के प्रतीक के रूप में अपने जीवन के असंख्य चुम्बनो की लम्बी शृंखला में मुझे एक और चुम्बन जोड़ लेने दो।" यह कहकर श्रीमती जी की मनो-भावना के विपरीत मैंने उनके मस्तक को नए वर्ष में चूम लिया। उन्होने तुरन्त नाराजगी भरे स्वरों में कहा, "देखो, मेरे जीवन में ही तुम्हें चिर तृप्ति मिल जानी चाहिए ऐसी कि भविष्य में किसी अन्य नारी के चुम्बन लेने की लालसा तुम्हारे मन में शेष न रहे।"

मैंने कहा, "नहीं, अगले वर्ष आज के ही दिन इसी समय तुम्हारा दूसरा चुम्बन लिया जाएगा।"

"असम्भव—बिल्कुल असम्भव—इस धोखे में न रहिएगा श्रीमन्। मैं तुम्हारे

भावी-चुम्बन के लिए घोर शारीरिक यातनाएँ भोगती रहूँ—क्या तुम हृदयहीन होकर यही चाहते हो ?"

"बिल्कुल नहीं, स्वप्न में भी नहीं। मैं दिल्ली की उत्कृष्ट चिकित्सा अहर्निश सेवा और शक्तिदायक आहार के सेवन द्वारा तुम्हें एक वर्ष के लिए कदम से कदम मिलाकर जीवनसंगिनी के रूप में देखना चाहता हूँ। उस परमशक्ति से यही याचना करता हूँ।"

"तुम्हारी इन अभिलाषाओं का अन्त कब होगा ?"

"अभिलाषाएँ तो होती ही इसलिए हैं कि उनके सहारे मनुष्य जीवन दिन-रात चलता रहे। यदि अभिलाषओं का अन्त हो जाएगा, तो जीवन का भी अन्त उन्ही के साथ हो जाएगा। हमारी नई-नई अभिलाषाएं हमारे जीवन को उषा-कालीन नई प्रेरणा देती हैं, हमें और अधिक जीवन दान देती हैं।"

"अब मुझे कोई नई प्रेरणा नहीं चाहिए, और न अधिक जीने का सम्बल।" टार्च जलाते हुए सामने की घड़ी की ओर उन्होंने मुझसे समय देखने को कहा।

"अरे दो बज गया है" यह कहकर मैंने आँखें बन्द कर लीं, सोने की चेष्टा करने लगा। हम दोनों सो गए। प्रातःकाल कुछ अनमना, कुछ थका-थका जब मै सात बजे जगा तो देखा कि श्रीमती जी किचेन में कुछ खटपट कर रही हैं। थोडी देर में अपनी छड़ी खट-खटाती मेरे पास आकर खड़ी हो गईं, हाँफते हुए बोलीं, "मैने चाय छानकर केटली में रख दी है, जाओ दो प्याले और केटली उठा लाओ, मैनें जागते-जागते सोचा कि आज नए वर्ष की नई-नई सुबह को मैं तुम्हें अपने हाथो से बनाई चाय का एक कप क्यों न पिलाती जाऊँ?"

"बहुत-बहुत धन्यवाद" कहते हुए मैंने उनसे प्रश्न किया, तुमने मुझे जगा क्यो नही दिया ? आज मैं स्वयं तुम्हें चाय बनाकर पिलाता। नए वर्ष की प्रथम नई खुशी हासिल करता। तुमने यह दुस्साहसपूर्ण कार्य क्यों कर डाला ?

मैं चाय उठा लाया, दो कपों में उसे उँड़ेलते हुए प्रसन्नता, दाम्पत्य की पूर्णता, निश्चिन्तता और सन्तोष के वातावरण में धीरे-धीरे चाय पीनी शुरू कर दी।

उन्नीसवाँ अनुच्छेद

वर्ष दो हजार पूरा-पूरा। सहस्राब्दि के प्रथम मास का नूतन दिवस न जाने क्या-क्या अपने विशाल गर्भ में छिपाए हुए, कितने आने वाले शिशुओं के जन्म, कितने प्रतीक्षारत

नवयुवकों के दाम्पत्य का श्रीगणेश, जीवन के सर्वोच्च बिन्दु पर आसीन ऐश्वर्य ओर मदमस्त कितनी नारियों का विधवाकरण और कितने सत्तासीन सामर्थ्य-युक्त पतियो के वैधुर्य का दुखद सूत्रपात लाएगा, मुझे क्या पता था कि मेरे लिए नया वर्ष मित्रगणो की मंगलकामना के विपरीत हमेशा की तरह मंगलमय न होकर इस बार अमगल की अकल्पित वर्षा करेगा।

दस बजते ही घर आने वालों की मंगल कामनाओं की चहल-पहल शुरू हो गई। टेलीफोन की घंटियाँ टनटनाते लगीं। सगे सम्बन्धीजन 'ड्राईफ्रूट्स' के सुन्दर पैकेट लाने लगे। इस जोशीले वातावरण में शाश्वती प्रसन्न दिखने लगीं। बारम्बार, चाय-नाश्ता, बधाइयाँ देने और स्वीकार करने में आधा दिन न जाने कितनी तूफानी गति से बीत गया। दो बजे अर्चना ने हम दोनों को एक ही बड़ी प्लेट में खुशबूदार मटर पुलाव, अचार, सलाद हम दोनों के सामने रख दिया। बूढ़े दम्पति खाने के मामले में प्रायः जिह्वालोलुप हो जाते हैं। मुझे खुशी है कि हम दोनों पति-पत्नियों में एक भी इस कुप्रवृत्ति का शिकार नहीं हुआ था। पन्द्रह मिनट में खाना खत्म, आगन्तुको का आना शुरू। रंग-बिरंगे परिधानों में फूलों की तरह खिले बच्चों की पंक्ति में सौम्या और श्रेयस का खोजना मुश्किल दिख रहा था। मेहमानों का जमघट कम हुआ और विवेक और अर्चना गोविन्दा की नई सुपरहिट फिल्म देखने निकल गए। घर में अकेले होकर हम दोनों अपना-अपना लिहाफ खींच कर बेड पर लम्बे हो गए। फिर आज के समाचार पत्रों में छपे समाचारों की समीक्षा शुरू हुई। जब मैंने प्रधानमन्त्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी के भोजन में मछली खाए जाने की चर्चा की—श्रीमती जी सहसा नाराज हो उठीं। वे कहने लगीं—"अपने स्वास्थ्य की रक्षा में यदि वे कुछ मनचाहा भोजन अपने चिकित्सकों के परामर्श पर कर लेते हैं तो अखबार वाले उसका अनुचित प्रचार क्यों करते हैं। मैंने सुना है कि अब तो भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री और पामेला माउण्टबेटन के प्रेमालाप और विदेश यात्रा के दौरान एकान्त मिलन पर रोचक सच्चे झूठे किस्से छुपकर बाजार में बिकने लगे हैं। आज तक वर्तमान प्रधानमन्त्री के निष्कलुष चरित्र पर किसी ने उँगली भी नहीं उठाई है। खाने-पीने का प्रकरण नितान्त निजी मामला है। इसी प्रकार वाजपेयी जी कुँआरे हैं, तो उनकी बेटी व दामाद कहाँ से पैदा हो गए—यह प्रश्न भी प्रायः कुछ शरारती तत्त्व करते रहते हैं। मैं अखबार वालो व कुर्सी पकड़ नेताओं से प्रश्न करती हूँ कि यदि वाजपेयी जी ने किसी लड़की को अपनी धर्मपुत्री के रूप में मान्यता प्रदान कर दी तो इसमें कौन सी कयामत बरपा हो गई। धर्मपुत्री का पति दामाद नहीं तो क्या लड़का कहा जाएगा। मैं समझती हूँ भारत के राजनीतिज्ञ एक-दूसरे पर कीचड़ उछालने में कभी पीछे नहीं रहते। यह सब घटिया और शरारती तत्त्वों का व्यक्ति कुण्ठा के कारण दुष्प्रचार मात्र है। देशहित के विरुद्ध बोलने वाले बूढ़े नेताओं को कुछ समय के लिए कारावास में बन्द कर

देना चाहिए। संविधान में संशोधन करके कठोर कानून बनवाकर देश से भ्रष्टाचार, बलात्कार, अपहरण, जातीय हिंसा, पुलिस की निष्क्रियता आदि पर प्रभावी अंकुश लगाकर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा की जानी चाहिए। देश में छिपे आई.एस.आई के एजेण्टों की व्यापक खोज करके आन्तरिक सुरक्षा के निरन्तर बढ़ रहे खतरों पर काबू पाना चाहिए। नियन्त्रण रेखा पर बढ़ते खतरे को सैनिक कार्यवाही द्वारा मजबूती से कुचल देना चाहिए—विश्व मत यों ही तमाशा देखता रहेगा, जैसे कि बंगलादेश के बनने के समय उसने देखा था।"

"ठीक है, मैं तुम्हारी इन बातों से कुछ-कुछ सहमत हूँ"—मैंने उन्हें आगे बढ़ने से रोकना चाहा।

"आज सवेरे से ही नव वर्ष के प्रथम दिवस पर तुमने मेरा अच्छा-खासा मनोरंजन किया है—क्यों किया है मैं यह बात भी समझता हूँ—पर अपने मुँह से कहना नही चाहता।" "तुम एक और बात सुन सको, तो मैं कहूँ"—श्रीमती जी ने मुझसे प्रेमपूर्वक कहा।

"हाँ-हाँ क्यों नहीं सुनूँगा—तुम्हारी बातें तो ऐसे सुनूँगा जैसे कोई बूढ़ा प्रेमी अपनी नव-युवती प्रेमिका की दोनों कानों से सुनता है"—मैंने जिज्ञासापूर्ण नेत्रों से उनके नेत्रों की गहराई को नापते हुए कहा।

"अब मुझे जनवरी के बाद जीने की इच्छा नहीं है। मेरी जिजीविषा पूरी तरह समाप्त हो चुकी है।"

"क्या यह तुम्हारे वश में है कि तुम अपने जीवन की दौड़ती हुई रेलगाड़ी बिना अगला स्टेशन आए बीच में ही वैकुअम ब्रेक लगाकर रोक दो ?"

"ऐसा मैं अवश्य करती यदि मेरे हाथ में एमरजेन्सी ब्रेक सुलभ होता।"

"तो फिर पागलों की तरह बार-बार उसी बात की रट क्यों लगाए रहती हो ? मैं तुम्हारी इस बात को सुनते-सुनते थक गया हूँ, बोर हो गया हूँ।"

"देखो वृद्धावस्था के आ जाने पर मेरे हाथ-पैरों में कितनी बड़ी-बड़ी झुर्रियाँ पड़ गई हैं, पेट सूख कर पीठ में मिलने जा रहा है, टाँगें कितनी पतली पड़ गई है, सूखी-सूखी कमजोर हो गई हैं। आँखें अन्दर गड्ढों में घुसने जा रही हैं, गाल अन्दर पिचके जा रहे हैं, जैसे कि ब्लेडर की हवा किसी ने निकाल दी हो, पूरे शरीर मे बचा है कोई अंग तो वह है मेरा सक्रिय मस्तिष्क और चौड़ा मस्तक जो उसी तरह अपनी लम्बाई चौड़ाई बरकरार रखे हुए है, बाल भी नब्बे प्रतिशत काले और चमकदार दिख रहे हैं। एक दाँत घिस कर टूट गया है, पर सारे दाँत अपनी-अपनी जगह पर बिजली के खम्भों की तरह कायम हैं क्योंकि सारी जिन्दगी मैंने प्रेम से तम्बाकू का सदुपयोग किया है।

मेरी स्मरण शक्ति और श्रवण-शक्ति ईश्वर की कृपा से आज तक युवतियों

की तुलना म कहा अच्छी है। वे कभी अपनी कुजियो का गुच्छा भूल जाती हैं, कभी नहाते समय बाथरूम में अँगूठी निकालकर दुबारा पहनना भूल जाती हैं और कभी-कभी तो जल्दी में सब्जी या दाल में नमक डालना भी उन्हें याद नहीं रहता, हाँ ब्यूटीपार्लर जाकर अपने बदसूरत चेहरे का सुन्दरीकरण और साड़ी के कलर से मैच करती हुई बदनुमा बिन्दी मस्तक पर सजाना कभी नहीं भूलतीं। हाथों की दोनों हथेलियो पर पिसी मेहँदी की फूल पत्तीदार करवाचौथ मार्का गहरी डिजाइन बनवाना और बीच में 'इलू' या 'आई लव यू' छपवाना भी नहीं भूलतीं। छोटे बच्चे के सिर का रिबन चाहे जहाँ ढीला होकर गिर पड़े, उसके पैर का मोजा चाहे जहाँ खिसक कर रास्ते में गिर जाए--उन्हें याद नहीं रहता। पैसे तो हर दूसरे तीसरे दिन किचेन में रखकर भूल जाती हैं। मैं नकली जिन्दगी या भुलक्कड़पने की आदतों वाली जिन्दगी से दिली नफरत करती हूँ जितनी जिन्दगी जियो, कायदे से जियो, अपने सहारे जियो, चहल-पहल और हँसी-खुशी में जियो, पोती-पोते, नाती-नातिनों, घर परिवार और समाज के बीच खुशियाँ बाँटते हुए जियो, खूब जियो, मगर अपने लिए नहीं औरों के लिए, क्योकि इस दुनिया में कोई गैर नहीं है--कोई और नहीं है। मैं अब तक, मैं नहीं मेरा न नहीं की भावना से जीती रही हूँ। मज़ाक नहीं--मैं तुमसे सच में पूछती हूँ कि मेरे बुढ़ापे की मीटर गेज वाली रेलगाड़ी आज की दुनिया के ब्राड गेज वाली पटरियो पर शो पीस बनकर कैसे चल पाएगी ? मैंने तुमसे बार-बार कहा है कि मैं अपनी मजबूत बॉस की छड़ी के सहारे बेडरूम और ट्वायलेट के बीच अपनी साँसों की गाड़ी दौड़ाने में ही बुरी तरह हाँफने लग जाती हूँ। मैं जानती हूँ सारी दुनिया को बुढ़ापा इतना ज्यादा नहीं सताता, मेरी एक सीनियर सहेली कुछ दिन पूर्व नार्वे मे बसे, अपनी बेटी और दामाद को देखने के लिए गई है, हालाँकि उनके दोनों पैर गाउट से बुरी तरह से जकड़े रहते हैं। पर यह तो अपनी-अपनी किस्मत है। हर औरत तो मदर टेरेसा नहीं बन सकती। वाराणसी और वृन्दावन के आश्रमों में मैंने तो सौ सौ बरस की वृद्धाओं को वहाँ के अन्नक्षेत्र में बँटने वाले स्वादिष्ट भोजन लेने के लिए, लाइन में घण्टों खड़ी रहते और आपस में जबर्दस्त 'तू-तू मैं-मैं' करते हुए खुद देखा है।"

"अच्छा एक बात मेरी भी सुन लो," मैंने श्रीमती जी के बाएँ कन्धे को धीरे से हिलाते हुए और हल्की सी आँख मारते हुए कहा, "मैं चाहता हूँ तुम सन् 2002 तक मेरा साथ जरूर निभाओ और मैं किसी प्रकार वैष्णव देवी के दर्शन तुम्हारे साथ कर आऊँ--जैसा कि मैंने उस समय माना था जब बलरामपुर अस्पताल के पुराने प्राइवेट वार्ड नम्बर चार में तुम्हारे प्राण निकल रहे थे।"

"असम्भव ! यह तुम्हारा दिवास्वप्न कभी साकार नहीं होगा। जब-जब तुमने मेरे हृदय का ई.सी.जी. करवाया है, तो डाक्टरों ने उसे हमेशा नार्मल बतलाकर तुमसे

पैसे ले लिए, पर मेरी हंफनी केवल पुरानी ब्रांकाइटिस के कारण नहीं होती। हालाँकि वे कहते है कि जब-जब मौसम बदलेगा मेरी ब्रांकाइटिस मुझे परेशान करेगी, इसलिए मुझे इनहेलर द्वारा गले और साँस की नली में उसमें गैस के साथ मिली दवा डालना चाहिए, पर कमजोर उँगलियों के कारण मैं यह काम नहीं कर पाती। मैं इनहेलर का प्रेस बटन नहीं दबा पाती अगर तुम मेरी सहायता न करो तो मेरे गले में दवा भी न पहुँचे।" शाश्वती और मेरी इस आत्मीयतापूर्ण वार्ता में विघ्न डालती हुई उनकी एक ममेरी बहन जो किसी गर्ल्स कालेज में संस्कृत की प्रवक्ता थी, बेडरूम में आकर टपक पड़ी और बोली, "जिज्जी, पहली जनवरी को बेडरूम में अकेली बैठी जीजा से क्या गुपचुप बातें कर रही हो, मैंने शायद गलत मौके पर कमरे के अन्दर पदार्पण किया।"

"क्यों मेरा मजाक बना रही हो सरला ? तुम अब भी अपने लड़कपन की आदतों से बाज नहीं आ रही हो ? मेरी यह उम्र, पूरी तरह सत्यानाश हो गया मेरा सुन्दर स्वास्थ्य, न जाने कहाँ खो गई मेरी चलने-फिरने की शक्ति, सारा दिन बिस्तर पर बैठे-लेटे सरकारी अस्पताल में भरती रोगी की तरह कटती जिन्दगी, मरे हुए आदमी से भी बदतर हो गई है मेरी हालत। कभी-कभी न सह सकने वाली अपनी बढ़ती तकलीफों को तुम्हारे जीजा जी से कहकर कुछ क्षणों के लिए अपना मन हलका कर लेती हूँ, तो तुम मुझे दूर से ही देखकर गुपचुप बातें करने का मनगढंत खिताब दिए दे रही हो, यों ही इण्टर कक्षाओं की अपनी सयानी छात्राओं पर आरोप लगाती रहती होगी अपनी क्लास में। मैं समझ गई क्लास में न पढ़ाने वाली और रंगीन बातें बनाने वाली तुम्हारी टीचरी हरकतें। आ जाओ, मेरे पास इसी लिहाफ में आकर तुम भी बैठ जाओ, इस कड़ाके की सर्दी में गर्मागर्म चाय पीकर अपनी ठण्डक दूर करो और फिर अपने जीजा जी से मनचाही कानाफूसी कर लो, मैं बड़ी बहन की तटस्थ भावना से तुम्हारी लच्छेदार बातें सुनकर मजा लेती रहूँगी। मैं अर्चना को बुलवाकर तुम्हारे लिए नाश्ता मँगवा रही हूँ"—यह वाक्य पूरा करते हुए शाश्वती ने अपने बेड के तकिए में लगी कालबेल का बटन दबा दिया। तुरन्त हँसती और दौड़ती हुई पौत्री सौम्या वहाँ आ पहुँची, बोली, "दादी जी—दादी जी ममी से क्या कह दूँ ? मेरी मम्मी तो टी.वी. देखते-देखते सो गई है।"

"यही कह दो कि तुम्हारी सीतापुर वाली सरला दादी मुझे देखने आई हुई है, इनके लिए चाय-नाश्ता जल्दी तैयार कर दें, यह आज शाम को ही सीतापुर लौट जाएँगी।"

इतने में विवेक श्रेयस को गोद में लिए अर्चना के आगे-आगे चलता हुआ अपने माताजी के रूम में आ पहुँचा।

"कौन आया है माता जी," पूछते हुए वह उन्हीं के पास बैठ गया।

"तुम्हारी सीतापुर वाली सरला मौसी अभी-अभी आई हैं—मुझे देखने और अपने कालेज का कुछ काम कराने के लिए। वे बाथरूम गई हैं। इस दाँत कटकटाने वाली शीत लहर में वे सीतापुर से बस की यात्रा करके आ रही हैं, उनके लिए चाय व कुछ नाश्ता बनवा दो।" श्रीमती जी ने अपने बेटे के सिर पर हाथ सहलाकर वात्सल्य की मुद्रा में कहा। यह सुनकर अर्चना श्रेयस को उसकी दादी के पास छोटे बच्चो वाले एक सुन्दर लिहाफ से ढककर बिठला गई और स्वयं किचेन में जाकर खटपट करना शुरू कर दिया। विवेक ने रूम हीटर आन कर दिया, सामने छोटी टेबल पर अपनी मौसी जी का नाश्ता लगा दिया। सरला मौसी ने जी भरकर नाश्ता किया। दो पान लगाए, एक अपनी जिज्जी को देकर दूसरा पान तपाक से अपने मुँह मे रख लिया।

"जिज्जी आजकल आपकी तबीयत कुछ ज्यादा ढीली चल रही है। मैंने सुना है कि आप रात भर बेड पर बैठे-बैठे बिताती हो।" सरला ने प्रश्न किया। "हाँ सरला तुम देख रही हो, कि मैं किसी तरह अपना समय पूरा कर रही हूँ। दिन कट जाता, पर रात काटे नहीं कटती। हंफनी और खाँसी से सारी रात हलकान हो जाती हूँ, कूल्हे की हड्डियों की दर्द से चलने-फिरने में लाचार हूँ, दाहिना पैर न होने के बराबर है। बिना चश्मा लगाए न पास की चीज दिखलाई पड़ती और न दूर की। बस इतनी ही मेरी जिन्दगी है। तुम्हारे जीजा दिन भर डाक्टरों व केमिस्ट की दुकानों के चक्कर लगाते हैं, और सारी रात मेरे बेड के पास आरामकुर्सी डाले बैठे-बैठे मुझे देखते रहते हैं। इसी का नाम है बूढ़ों का दाम्पत्य—बूढ़े पति-पत्नियों का साहचर्य, जब न पेसा काम देता है और न अक्ल ही काम करती है। साथ देती है मेरे बेटे की छड़ी, सौम्या और श्रेयस की प्यार भरी बातें और भगवान की सर्वशक्तिमान सत्ता जो मुझे चलाती है और मेरे साथ स्वयं चलती है। अब तक दवा के सहारे चल रही थी, तीन-चार दिनों से मैंने सारी दवाएँ बन्द कर दी हैं, अब भगवान के सहारे चल रही हूँ। चौबीस घण्टों में दो छोटी-छोटी रोटियाँ खाकर और एक गिलास गुनगुना पानी पीकर सारा दिन यों ही बिस्तर पर पड़ी रहती हूँ। कभी-कभी अपनी अँगूठी के मूँगे को देख लेती हूँ जैसे तुम मुझे इस समय स्वयं देख रही हो। मैं तुम्हारे जीजा जी को समझाती रहती हूँ कि वे अब भाग्यशाली पति की सर्वोच्च जिम्मेदारी निभाते हुए अपने कन्धो पर उठाकर मेरी अन्तिम यात्रा में मुझे श्मशान घाट तक मुस्कराते हुए भेज आएँ, अपनी आँखों से आँसू न निकालें अन्यथा मेरी आत्मा को कष्ट पहुँचेगा। इन्होंने अपने छात्र जीवन में मुझे अनेक कष्ट दिए हैं, पर अपनी सेवा काल में उससे असख्य सुख और सुविधाएँ भी दी हैं। वर्षों से मेरी इतनी देखरेख, इतनी अधिक शारीरिक सेवा, इतनी परिचर्या, इतनी उत्तमोत्तम चिकित्सा कर रहे हैं, जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। इतना अधिक पैसा खर्च करके मेरे लिए दिन-रात घोर तपस्या कर

रहे हें। मैं इनके कष्टों को देखकर अपना कष्ट प्रायः भूल जाती हूँ। मैं उस परमशक्ति से मन ही मन विनती करती हूँ कि अब इनको और अधिक कष्ट न मिले, मेरे शरीर की छाया मात्र बनकर इन्होंने इसी कमरे में अपने सारे कार्यकलाप समेट लिए है। मै इन्हें शीघ्र बन्धनमुक्त करने की इच्छुक हूँ। अपने जीवन के विशाल गगन की चारों सीमाओं में सशक्त समीर की भाँति उन्मुक्त होकर मेरे पति सदा उड़े हे, प्रातःकालीन पक्षियों की भाँति धरती के ऊपर उड़कर सूर्योदय के प्रथम दर्शन किए है, घर, परिवार, सामाजिकता के बन्धनों से मुक्त रहकर आनन्द, उल्लास ओर निश्चिन्तता के वातावरण में अपने मस्तीभरे दिन साहित्यिक मित्र मण्डली में बिताए है। आज वे ही मेरे पतिदेव पिंजड़े के पक्षी की भाँति गतिहीन होकर कातर दृष्टि से मुझे चुपचाप न जाने क्यों देखते रहते हैं ?

मैंने इनसे अनुरोध किया है जब मेरी शव यात्रा घर के बाहर निकले तो मेरा स्वर्ग-विमान रंग-बिरंगे सुगन्धित फूलों से सजा हुआ हो, चमचमाती यूनिफार्म में सजे बेण्ड बाजे वाले मेरे शव के आगे बैण्ड बजाते हुए चलें, किसी प्रकार की मातमी धुन न बजाएँ, जिन्दगी का मैच जीतकर दुनिया छोड़ने की खुशी का गीत गाएँ। मे बिल्कुल नहीं चाहती कि सारी जिन्दगी झूठ बोलने वाले, अपने-अपने तराजू के नकली बाटों में कम तौलने वाले, छोटे बच्चों की दवा में, मजदूरों का पेट भरने वाले गेहूँ के आटे में, और बूढ़ों की अन्त्येष्टि में काम आने वाली हवन-सामग्री में मिलावट करने वाले लोग मेरे शव के आगे-पीछे 'राम-राम सत्य है' का रस्मी नारा लगाएँ। पारिवारिक संस्कारों में पली पोसी मैं बचपन से ही मर्यादा पुरुषोत्तम राम की अनन्य भक्त रही हूँ, रामचरित मानस मेरा पुनीत धर्म-ग्रन्थ रहा है। मेरे निष्प्राण शरीर को गोपाल काम सत्य है, हर का नाम सत्य है—का रस्म-अदायगी वाला उद्‌बोधन सुनाने की जरूरत नहीं है। हालाँकि तुम्हारे जीजा जी मेरी सभी बातें मानने लगे हैं, पर मुझे विश्वास नहीं है कि मेरी मृत्यु होने पर अपनी शोकाकुलता से त्रस्त मेरा शव निकालते समय यह बैण्ड बजवाने का अपना वचन निभा पाएँगे।''

''तुम माताजी, अपने मरने जीने का चरखा सारे दिन क्यों चलाया करती हो ? इतने दिनों के कड़ाके की सर्दी में लम्बा सफर करके मौसी जी मेरे घर पर आई हैं, तुम इन्हें अपने पास लिटाओ, इनका दुःख-दर्द पूछो, इनसे प्यार भरी अच्छी-अच्छी बातें करो। पास बैठे अपने पोते कुन्दरू (श्रेयस का घरेलू नाम) की मीठी-मीठी बातें सुनो। खाना तैयार हो रहा है, सब लोग साथ-साथ खाना खाओ, डी.डी. वन की रोचक फिल्म आ रही है हम आपके हैं कौन ? मन आए तो उसे देखो।''

''अच्छा तो जरूर देखूँगी। तुम जाकर मौसी जी के खाने का जल्दी इन्तजाम करवाओ।''

बीसवाँ अनुच्छेद

इस प्रकार प्रतिदिन कोई-न-कोई दूर रहने वाला रिश्तेदार घर आता रहता। शाश्वती के तीन बहनें थीं, प्रकाशिनी, विमला और निर्मला। बड़ी बहन होने के कारण वे सभी के साथ मातृवत् स्नेह करती रहीं। सभी के घर शादी-ब्याह के आयोजनो मे जाती रहीं और बढ़-चढ़ कर व्यवहार करती रहीं। उन्हें दान-दक्षिणा देती रहीं। इसी पारस्परिक प्रेम की भावना से ओतप्रोत उनकी हरेक बहन उनके लिए जीने मरने को हर समय तैयार बैठी रहती।

जब जिस वहन को पत्र भेजकर वे बुलातीं, वह तुरन्त उनके पास लखनऊ आ जाती। उनके पास प्रेमपूर्ण आत्मीय वातावरण में खुश होकर रहती, उनकी सेवा शुश्रूषा मनोयोग से करती, उनकी सारी बातें मानती, और अपने घर लौटते समय उनसे नई-नई डिज़ाइन की साड़ियाँ, नकद दक्षिणा व रामआसरे हलवाई की मिठाइयो के डिब्बे प्राप्त करती।

एक ओर सरला वापस गई तो दूसरी ओर निर्मला सदैव की भाँति अत्यन्त व्यस्त रहने वाले कालेज प्रवक्ता पतिदेव के साथ आ गई। श्रीमती जी अपनी छोटी बहन निर्मला को देखकर हर्षातिरेक से अभिभूत होकर अपनी बूढ़ी आँखों में छिपे प्रेमाश्रु बाहर निकालने लगीं—कुछ देर बाद अपनी साड़ी के पल्लू से आँसू पोछते हुए बोलीं, "धन्यभाग मेरे जो तुम इतने वर्षों के बाद मेरी बहन के साथ इस नए घर में आए हो। वर्ष 1992 में मैं जब संजय गाँधी पी.जी.आई. में भरती थी, तब तुम मुझे देखने लखीमपुर से आए थे। हालाँकि उसके बाद तुम अपने कोर्ट कचहरी के काम से कई बार लखनऊ आए पर मेरे घर तक नहीं आए। आज मेरी किस्मत जगी और तुम्हें मेरी याद न जाने कैसे आ गई।"

"सच बात कहूँ आपसे" निर्मला के पतिदेव कालेज प्रोफेसर डा. द्विवेदी ने गम्भीरता का नकली मास्क मुँह पर चढ़ाते हुए कहा।

"तुम्हें भैया कौन मना कर रहा है सच कहने से ?"

"मैं आपकी बहन को स्वयं लेकर आया हूँ। यह मुझसे कह रही थी अभी तुम मेरी जिज्जी को अकेले देख आओ। जब तुम लौटकर घर आ जाओगे तब मै उन्हें देखने चली जाऊँगी। आजकल बच्चों के सहारे घर छोड़ना ठीक नहीं है।"

"क्यों निर्मला ?" मेरी श्रीमती जी ने हँसते हुए प्रश्न किया।

"हाँ जिज्जी यह आपसे सच कहते हैं झूठ सिर्फ मुझसे बोलते हैं। मैंने इनसे कहा था कि यदि तुम मुझे अपने साथ जिज्जी को देखने ले चलोगे और अपने साथ ही वापस लौटने को कहोगे तो मैं नहीं आऊँगी क्योंकि आपके पास कुछ दिनों तक

रुकने की मेरी इच्छा थी। मैं भी आपकी कुछ सेवा करना चाहती थी। मैं आपके पास निश्चिन्तता की मुद्रा में ठहरकर कुछ समय आपकी देखरेख करने की बहुत इच्छुक थी ताकि मैं जीजा जी को कुछ राहत दे सकूँ। यह मेरी इस शर्त पर पहले राजी नहीं हुए। फौरन न जाने किस मुद्रा में मुझसे आज प्रातःकाल उठते ही कहने लगे, तुम मेरे साथ आज ही लखनऊ चलो, मैं तुम्हें लखनऊ छोड़कर वहाँ से अकेला लौट आऊँगा।''

''यह तो तुम दोनों ने विवेकपूर्ण निर्णय लिया। आजकल मेरी तबीयत काफी खराब चल रही है। मैं अब थोड़े दिनों की और मेहमान हूँ।'' श्रीमती जी निर्मला की ओर अपनी दुर्बल दृष्टि डालते हुए धीमी आवाज में बोलीं। उनके ये शब्द सुनकर निर्मला अपनी आँखों में बड़े-बड़े आँसू भरकर रोने लगी। जब दो बहनों का यह प्रेम रोदन चल रहा था तभी प्रकाशिनी और विमला भी सहसा आ पहुँचीं और देखते ही देखते बारी-बारी से अपनी जिज्जी के गले लिपटकर रोने लगीं। इस असामयिक रुदन प्रतियोगिता को देखकर मुझे कुछ आश्चर्य मिश्रित हँसी आ गई। मैंने श्रीमती जी को सम्बोधित करते हुए कहा, ''मैडम अब तुम स्कूल की हेड मिस्ट्रेस की तरह छडी पकड़कर डायनिंग टेबल पर चलकर बैठो, अपनी तीनों बहनों को अपने सामने बिठलाकर खाना खिलाओ। मैं इतने लम्बे अन्तराल के बाद अपने साढ़ू भाई के साथ खाना खाऊँगा, बातें करूँगा, उनके उच्चस्तरीय ज्योतिष के ज्ञान का कुछ लाभ उठाकर तुम्हारे ग्रह दशा की चर्चा करूँगा। तुम लोग खाना खाकर अपने-अपने मुँह में पान चबाओ, प्रेम से बतियाओ, रुदन प्रतियोगिता का समय खत्म हो गया, सभी बहने अब धीरे-धीरे एक साथ मुस्कराओ और तुम लोगों के तिगड्डे का एक पोज अपने कैमरे में ले लूँ। बोलो मेरी सालियो—तुम लोग मेरे इस सुझाव से असहमत तो नही हो?''

''नहीं-नहीं, बिल्कुल नहीं—आप जिज्जी को पकड़कर चलिए हम आप लोगो के पीछे-पीछे चल रहे हैं।'' मैंने श्रीमती जी को बीच में, उनकी बहनों को दाएँ बाएँ, साढ़ू भाई को उनके भी दाएँ बिठलाकर एक फोटो खींच लिया—और फिर श्रीमती जी के पीछे खड़ा होकर उनके कन्धे पर हाथ रखकर मुस्कराता हुआ साढ़ू भाई से बोला, ''आइए अब आप हम लोगों का फोटो इस मुद्रा में खींच लीजिए।''

इस प्रकार घर आने वाले सम्बन्धियों, सुहृदजनों, पड़ोसियों, परिचितों और विभागीय अधिकारियों के मेरे घर आने का क्रम बढ़ता गया, ऐसा कुछ अनुभव होने लगा कि मेरे घर पर कुछ विशेष घटना या दुघर्टना घटित होने जा रही है। नए वर्ष की शायद चार या पाँच जनवरी रही होगी। राजधानी में भयंकर शीतलहरी का विकट प्रकोप था नगर की सभी सड़कों पार्कों स्कूलों कालेजों बाजारों व्यापारिक

पडने लगा था नगर की सडको पर रात मे रिक्शा चलाने वाले गरीब रिक्शा मजदूर ठण्डक की अधिकता से मरने लग गए थे। नगर के प्रमुख चौराहों पर नगर निगम द्वारा लकड़ी के अलाव जलवा दिए गए थे, जहाँ पर राह चलने वाले ठण्डक से ठिठुरे राहगीर बैठकर अपने हाथ-पाँव सेंक सकते थे। ठण्ड के कारण रेलगाड़ियो मे रात्रिकालीन यात्रा करने वाले यात्रियों की भीड़ कम पड़ने लगी थी। प्रदेश के अधिकाश जिलाधिकारियों ने अपने-अपने जनपदों के स्कूल और कालेजों को सप्ताह भर के लिए बन्द कर दिया था। प्रमुख चौराहों पर ट्रैफिक ड्यूटी करने वाले पुलिस जनो की हालत खराब होने लगी थी। पार्कों में घूमने वाले आवारा पशु रात की ठण्डक को बरदाश्त न कर सकने के कारण मरने लग गए थे। वृक्षों के नीचे मरे हुए पक्षीगण प्रातः टहलने वाले व्यक्तियों को दिखलाई पड़ने लगे थे। लम्वी दूरी की रेलगाडियॉ घण्टों विलम्ब से चलने लगी थीं और कई महत्त्वपूर्ण गाड़ियाँ निरस्त कर दी गई थी। सड़क के नुक्कड़ों पर गर्मागर्म चाय और अण्डों का आमलेट बेचने वालों की पौ-बारह हो गई थी। विलायती शराब की बड़ी दुकानों पर सुरा प्रेमियों की लम्बी-लम्बी कतारें दुकान खुलते ही लग जाती थी। दोपहर में बादलों के छँटने और जरा सी धूप निकल आने पर पार्कों, सड़कों और घरों के कम्पाउण्डों में रंग-बिरंगे ऊनी कपड़े पहने बच्चे और सिर से पैर तक जोकरनुमा परिधान धारण किए खूसट मार्का बूढ़े तुरन्त दिखलाई पड़ने लग जाते थे। सड़कों की पटरियों पर दुकानों से बाहर निकलकर दुकानदार और उनके कर्मचारी धूप का सेवन करने हेतु एक साथ खड़े हो जाते थे। अपने जीवन की कठोरतम शीत ऋतु में शाश्वती अपने बेड पर ही सारा समय बिताया करती थी।

बेडरूम में रखा तीन राडवाला रूम-हीटर हर समय जलता रहता था। ऐसे दुश्मनी मौसम में भी प्रातःकाल सात बजे अपनी हिम्मत जुटाकर बाँस की छड़ी की मुठिया पकड़कर संगमरमर के फर्श पर खटर-पटर करती हुई श्रीमती जी ट्वायलेट चली जाती, गीजर का गर्म पानी निकालकर मुँह-हाथ धोती, निरन्तर ताम्बूल सेवन से लाल दॉतो को कोलगेट टूथ पेस्ट लगाकर टूथब्रश से साफ करती वहीं टँगी तौलिया से मुँह-हाथ अच्छी तरह पोंछती, फिर बूटीदार गुलाबी रंग की अपनी मैक्सी पहने छड़ी पकडे धीरे-धीरे बेडरूम में लम्बी साँसें लेती हुई आ जाती, कुछ देर बिल्कुल शान्त और हफती हुई बैठी रहती। किसी से कुछ भी न बोलती। थोड़ी देर में अर्चना अदरक पड़ी गर्मागर्म चाय का एक सुन्दर प्याला उन्हें पेश कर देती, वे उसे देखकर खुश हो जातीं—कहतीं पता नहीं भगवान क्या करने वाला है ? दिनोंदिन बढ़ रही इतनी ज्यादा ठण्डक में कौन जिन्दा बचेगा ? स्कूली बच्चों की भगवान रक्षा करें। मेरा बडा पोता ऋषि सायकिल पर दो किलोमीटर की दूरी तय करके सवेरे-सवेरे अपने स्कूल कैसे जाता होगा ? मैंने सुना है कि उसके मूर्ख मैनेजर ने अभी तक सरकारी आदेशों

की अवहेलना करके स्कूल बन्द नहीं किया यह सुनकर मेने उन्ह बतलाया कि जिलाधिकारी ने सख्ती करके अब शहर के सारे स्कूल दस दिनों के लिए बन्द करा दिए हैं।

"तो फिर तुम ऋषि को इन्दिरा नगर क्यों नहीं बुलवा लेते?"

"मैं आज ही फोन करके उसे बुलवा लूँगा।"

"साथ में उसकी ममी पुष्पा को भी, क्योंकि वह स्कूल बन्द हो जाने से घर पर ही रहती होगी। उसको सूचित कर दो कि मेरी तबीयत दिनोंदिन खराब होती जा रही है, लखनऊ के बाहर के रिश्तेदार एक-एक करके मुझे देखने आ रहे है, पर अपने घर की बड़ी बहू के कान में जू भी नहीं रेंगती। यदि वह यहाँ कुछ समय के लिए चली आएगी तो तुम्हारा रात भर जगकर मुझे बार-बार गर्म पानी का बफारा कराना, खाँसी की दवा पिलाना, मेरे पास सारी रात कुर्सी डालकर बैठे रहना–इन सब रात्रिकालीन कष्टप्रद कार्यों से तुम्हें राहत मिल जाएगी। मैं देख रही हूँ कि तुम महीने से रात भर अपना स्लीपिंग गाउन पहने मेरे बेडरूम और किचेन के बीच चक्कर लगाते रहते हो। तुम टालमटोल मत करो–अभी फोन कर दो।"

"जरूर कर दूँगा"–मैंने उन्हें आश्वस्त कर दिया।

हालाँकि मैंने पुराने घर पर उसी दिन फोन करके श्रीमती जी का सन्देश अपने बडे बेटे को पहुँचा दिया, पर दो-तीन दिन बीत जाने के बाद भी अशरफाबाद से कोई भी पारिवारिक सदस्य झाँकने भी नहीं आया। एक दिन दोपहर में कुछ देर के लिए मेरा बड़ा बेटा अपनी माँ को देखने अवश्य आया, कुछ धीमे-धीमे स्वरो मे बातें कीं और तुरन्त उठकर चला गया। जब वे मेरे पुराने घर पर पहुँचे तो उन्होने अपने परिवार के सदस्यों से कह दिया कि माताजी बिल्कुल ठीक हैं। हट्टी-कट्टी है, पिताजी बेकार में माँ के बीमार होने की डुग्गी पीटा करते हैं। मैं उनकी बातो से समझ बैठा था कि माँ सचमुच बीमार हैं और अब चन्द दिनों की मेहमान रह गई हैं।

बड़े बेटे के द्वारा अपने परिवार जनों के बीच उच्चारित बातें घूम-फिरकर जब स्पेशल बेब साइट द्वारा मेरे कानों तक पहुँचीं तो मुझे आश्चर्य और दुःख दोनों का एक साथ अनुभव होना स्वाभाविक था। मैंने अपने मन में सोचा कि शचीन्द्र अपनी माँ को उस समय बीमार समझेगा जब बीमारी के कारण उनका प्राणान्त हो जाएगा।

उसी शाम प्रदेश के प्रशासनिक न्यायाधिकरण के एक अधिवक्ता श्री आर सी. वाजपेयी, जो मुझे अपने ज्येष्ठ भ्राता का दर्जा दिए हुए थें, सहसा मेरे घर आ गए। वे एक बहुत लम्बे अर्से से शाश्वती को भाभी जी कहकर सम्बोधित करते थे। जब वे मेरे साथ पत्नी के बेडरूम में पहुँचे तो उन्होंने चरण-स्पर्श करते हुए अर्धस्मित मुद्रा में प्रश्न किया, "क्या हुआ भाभी ? सुना है आजकल आप बहुत बीमार चल

रही हैं ? क्या तकलीफ हो गई है आपको ?"

"भइया, एक तकलीफ हो तो मैं तुम्हें बतलाऊँ—बहुत दिनों से एनीमिया, हीमोग्लोबिन बहुत कम हो जाना, कूल्हे की दोनों ओर की हड्डियों में सारे दिन तेज दर्द, चलने-फिरने पर हंफनी, आर्थीराइटिस, ब्रांकाइटिस में सूखी खॉसी, रात भर नींद न आना, दमा के रोगियों के लक्षणों वाली तेज हंफनी शुरू हो जाना ये सभी रोग एक साथ मुझे घेरे हुए हैं। अब तो मेरा दोनों समय का खाना भी छूट गया है। तुम्हें यह सुनकर ताज्जुब होगा कि मैं चौबीस घण्टे में आधी रोटी खा पाती हूँ। अब काफी कमजोरी आ गई है। नींद बड़ी मुश्किल से, वह भी नहीं के बराबर आती है। मैं भगवान से प्रतिदिन केवल एक ही प्रार्थना करती हूँ, कि वह अब मुझे अपन पास जल्दी बुला ले, मुझसे इतने अधिक शारीरिक कष्ट सहन नहीं हो पाते।

तुम्हें क्या बतलाऊँ भैया ? मैं अपने कर्मदण्डों को भोग रही हूँ। इस जन्म में मैंने तो अपनी जान में अच्छे ही अच्छे कर्म किए हैं। सबका भला किया बुरा किसी का भी नहीं किया, सदा सच बोली और सबके साथ सच्चा व्यवहार किया। सास ससुर और परिवारजनों की निष्ठापूर्वक सेवा की, बाद में अपने बच्चों के लाड़-प्यार पर ध्यान दिया। गरीबों की मदद की। हरेक इन्सान को इन्सान समझा अपने बराबर का स्थान दिया। बीमार और दुःखीजनों की सेवा की। पूर्व जन्म के कर्मविधान की मुझे क्या जानकारी ? मेरी अकस्मात् बढ़ गई अशक्तता और वृद्धावस्था को चारो ओर से प्राण-घातक बीमारियों ने घेर लिया है। इस वर्ष हड्डियों तक गला देने वाला जाड़े का मौसम, इतनी भयंकर ठण्डक, तेज सरसराती हवा, सब कुछ मेरे प्राण हरने के लिए एक साथ यहाँ इकट्ठे हो गए हैं। तुमको मैंने बतलाया न कि मैं दिन रात भगवान से हाथ जोड़कर यही प्रार्थना करती हूँ कि वह मुझे अपने पास जल्दी से बुला ले, पर यमराज को अभी तक शायद मेरा कागज नहीं मिल रहा है। इन दिनो रोज कालोनी के दो-चार बूढ़े 'राम नाम सत्य' है के उद्घोष के साथ दुनिया से विदा हो रहे हैं, पर पता नहीं मेरी शव-यात्रा निकलने में क्यों देर लग रही है ? अब मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। सारी जिन्दगी पान खाने का शौक मुझे बना रहा, पर वह भी आजकल न जाने कहाँ छूट गया ?" यह कहकर वह अपना नया मुलायम ऊन वाला कम्बल ओढ़कर लेट रहीं। अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपना सिर झुकाए हुए वाजपेयी जी चरण-स्पर्श करते हुए वापस चले गए।

इक्कीसवा अनुच्छेद

आठ जनवरी सन् 2000 का द्वितीय शनिवार। आज मुसलमान भाइयों के पवित्र महीने रमजान के रोजे ख़त्म। कल रात में चन्द्र दर्शन के कारण आज ईदुलफित्तर मनाए जाने की घोषणा। सरकारी कार्यालयों, बैंकों, व्यापारिक प्रतिष्ठानों में सार्वजनिक अवकाश की घोषणा।

आज प्रातःकाल अर्चना ने दस बजे तक हम लोगों के लिए खाना बनाकर रख दिया। ग्यारह बजते ही विवेक, अर्चना के साथ अपने यूनिवर्सिटी कालीन दो मित्रों के घर ईद मिलने चला गया। दोनों बच्चे अपनी नानी के घर चले गए। बडे घर में मैं एक अदद बूढ़ा और एक अदद बीमार बुढ़िया मकान की चौकीदारी करने के लिए शेष रह गई। सारे घर के अन्दर ईद के दिन भी सांय-सांय होने लगा--जैसे कि आज घर के अन्दर मुहर्रम का माहौल उतर आया हो। ड्राइंग रूम में सन्नाटा, आगे-पीछे के दोनों कम्पाउण्ड खामोश, घर में सब तरफ मातमी सन्नाटा, ठण्डी हवा की सरसराहट, आकाश में काले भूरे बादलों की बेवक्त की भागदौड़, जैसे कि वे कोई जरूरी काम निपटाने जा रहे हों। मेरा मन कहीं भी नहीं लग रहा था। न तो पत्नी के पास बैठने का मन हो रहा था और न गेट खोलकर बाहर खड़े होकर उधर से आने जाने वालों को देखने का मन हो रहा था। आज का टाइम्स आफ इण्डिया तो सवेरे ही पढ़ चुका था। टी.वी. आन किया, डिस्कवरी चैनल लगाकर देखा कि वही शार्क मछलियों का समुद्र की गहराइयों में भोजन की तलाश में इधर-उधर झुण्ड के झुण्ड में मँडराने का पुराना दृश्य। अतः टी.वी. बन्द कर दिया। मरता क्या न करता, जाए तो जाए कहाँ, न मन में चैन न घर में चैन। मरियल मन में जीवन-दर्शन का न जाने कौन सा टापिक सोचता रहा। किसी आसन्न संकट की आशंका से न जाने क्यों समय से पूर्व ही सशंकित-भयभीत जैसा। मानव-जीवन भी क्या अनबूझ पहेली है। महावीर और गौतम बुद्ध का जीवन दर्शन पढ़कर भी मेरे पल्ले इस समय कुछ नहीं पड़ रहा था। कल तक घर की सारी चीजें मुझे अच्छी लगती थीं। आज वही चीजें मुझे काट-काट खा रही हैं। विवश होकर कुछ देर गीता का दूसरा अध्याय पढा। "गतासूनगतासूनुच नानुशोचन्ति पण्डिताः" अर्थात् जिनके प्राण निकल गए है और जिनके प्राण अभी नहीं निकले हैं--उन दोनों प्रकार के व्यक्तियों के सम्बन्ध मे बुद्धिमान व्यक्ति नहीं सोचते, पर मैं तो इतना बुद्धिमान नहीं हूँ कि जिनके प्राण निकलने की तैयारी कर रहे हैं उनके विषय में कुछ भी न सोचूँ।

गीता का दूसरा अध्याय बिना पूरा किए उसे यों ही पुस्तकों की अलमारी मे रख दिया। इधर-उधर दो-चार टेलीफोन मित्रों और निकट सम्बन्धियों को किए पर

कोई भी अपने घर पर मौजूद नहीं मिला। फिर अपने पारिवारिक चिकित्सक डा हलीम को फोन मिलाया, दैव योग से रिसीवर डा. साहब ने स्वयं उठा लिया, मैंने फोन पर ही ईद मुबारक कह दिया और जवाब में उन्होंने मुझे भी मुबारकबाद देकर पूछा।

"भाभी जी कैसी हैं ?"

"अपनी जिन्दगी के आखिरी दिनों के आखिरी हिस्से में हैं" मैंने उन्हें उत्तर दिया।

"क्यों ?" उन्होंने फिर चिन्ताग्रस्त स्वरों में पूछा।

"मैंने श्रीमती जी की सारी तकलीफें एक-एक करके उन्हें गिनवा दीं।"

"मैं भाभी जी को देखने बहुत जल्द आऊँगा, मैं एक दिन गया भी था, पर आपका घर नहीं खोज पाया। क्या बतलाऊँ पण्डित जी, मैं और बेगम साहिबा बुढापे में अकेले रह रहे हैं। आप जानते हैं बड़ा लड़का एम.डी. करके आस्ट्रेलिया चला गया, जहाँ डाक्टरी करते-करते वहीं का नागरिक बन गया और एक आस्ट्रेलियन लड़की से शादी रचा डाली। दूसरा लड़का जामिया-मिल्लिया दिल्ली में इंजीनियरिंग कालेज में लेक्चरर है, तीसरा लड़का भारतीय विदेश सेवा में चुन लिए जाने के बाद इजिप्ट में पोस्टेड है। उसने एक हिन्दू आई.एफ.एस. लड़की से शादी कर ली। दोनो लड़कियाँ अपनी-अपनी ससुराल में हैं। अब घर में कौन बचा ही ? एक दो दिन के लिए दिल्ली वाला लड़का आ जाता है—मेहमान की तरह अपने घर में रहकर बातें बनाकर वापस चला जाता है। नाती-पोते सब अपने-अपने माँ-बाप के साथ रहते हैं।

मै मौका निकालकर जल्दी ही भाभी जी को देखने आऊँगा उनसे मेरा नमस्ते कह दीजिएगा।" दूरभाष की वार्ता समाप्त हो गई, मेरे मूड में बदलाव तो आ गया, पर मेरा अन्तर्मन कोलाहलपूर्ण था जैसे कोई नया ज्वार भाटा उठने की तैयारी कर रहा है। इसी बीच श्रीमती जी ने मुझे कालबेल बजाकर बुलाया, मेरे पास पहुँचने पर धीरे से कहा "मुझे कुछ खाने का मन हो रहा है। जाओ किचेन में मेरे लिए एक फुलका, थोड़ी सी शोरवेदार सब्जी, दो चम्मच दाल, आधी कटोरी सिवइयां—बस इससे अधिक न लाना। हाँ एक गिलास गुनगुना पानी और खाने के बाद में पीने वाली दवा 'अलफा अलफा' की शीशी।" मैं एक-एक करके सभी चीजें ले आया, उनके बेड से सटी हुई मेज पर सारी चीजें हमेशा की तरह करीने से रख दीं। अलबत्ता गुनगुना पानी मैं दो गिलास ले आया, क्योंकि आज कल मैं स्वयं भी ब्रांकाइटिस से ग्रस्त हो जाने के कारण गुनगुना पानी पीने लगा था।

खाना धीरे-धीरे शुरू हुआ, कुछ-कुछ बातें—जो बूढ़े पति-पत्नियों की अन्तिम जीवन यात्रा से जुड़ी थीं। खाना खत्म होते ही वहाँ से सारे बर्तन हटाकर यथास्थान

रख आया और श्रीमती जी का अलफा अलफा की टानिक के दो चम्मच पिलाकर आराम करने को कहा, मैं स्वयं भी अपना ठण्डा-ठण्डा लिहाफ खींचकर उनकी दाहिनी ओर हमेशा की तरह आराम से लेट गया। श्रीमती जी की मुँह की साँसों के साथ लौंग, इलायची, पेपरमेण्ट, तम्बाकू आदि की अलग-अलग और मिलीजुली खुशबू निकलने लगी। वे मेरी ओर अपने जीवन में अन्तिम बार प्रणयपूर्ण दृष्टिपात करते हुए बोलीं--सुनते हो जी ?

"हाँ-हाँ सुन रहा हूँ--बोलो क्या मैं बहरा हूँ ?"

"हाँ, मैं बार-बार कह चुकी हूँ कि मेरी बातें सुनने के लिए तुम अक्सर बहरे बन जाते हो ?"

"कुछ मुँह से बोलोगी भी या केवल प्रस्तावना ही तक सीमित रहोगी ?"

"धीरज रखो, अभी कह रही हूँ। पहले एक घूँट गुनगुना पानी पिला दो।"

मैंने पास रखे थर्मस से पानी निकालकर दो घूँट गुनगुना पानी पिला दिया और फिर बेड पर बेतरतीब फैले हुए अपने लिहाफ में घुस गया।

"सुन रहे हो या सोने की तैयारी कर रहे हो ?" श्रीमती जी ने प्रश्न किया।

"सुन रहा हूँ--पर मुँह ढक कर" मैंने उनकी ओर अपना मुँह करके उनके कानों के पास हल्के स्वर में कहा।

"तो ध्यान से सुनो मैं अब दो-चार दिनों की मेहमान और रह गई हूँ, पता नही कब मेरी साँस उखड़ जाए और मैं फुर्र से उड़ जाऊँ।"

"तो ?"

"तो बात यह है कि मैंने तुम्हें जीवनसंगिनी के नाते जीवन के सारे सुख दिए है। अपने स्वास्थ्य की चिन्ता किए बगैर मैंने पूरी निष्ठा के साथ तुम्हारी सेवा की है। विश्व में चर्चित भारतीय नारी के आदर्शों की रक्षा करते हुए हर विषम परिस्थिति में मैंने पत्नीव्रत का पालन किया है। तुमको खुश रखा, दो बेटे-बेटियाँ दीं, बड़ी हुई तो शादी ब्याह करके उन्हें अपने-अपने पैरों पर खड़ा कर दिया। जब मेरी ऑखे बन्द हो जाएँ तो तुम यहीं पर रहकर विवेक के साथ अपना लघुशेष जीवन व्यतीत करना। अशरफाबाद में मत रहना वहाँ अच्छी तरह से तुम्हारी कोई देखरेख नही करेगा। अगर वहाँ तुम्हें कोई एक खुराक खाना खिलाएगा, तो उसी शाम तुमसे दस बीस रुपए किसी न किसी बहाने से वसूलने की सोच लेगा। पुराने मकान पर गृहकर, जलकर, विद्युत कर और न जाने कितने कर वह भी सब मिलाकर हजारों में निकलेंगे, तुमसे भुगतान करने को कहा जाएगा। मुझे मालूम है मेरे लम्बे इलाज में अब तुम्हारी सारी बैंक की किताबें एक-एक करके खाली होती गई। पंचम वेतन आयोग की सिफारिशों के लागू हो जाने पर बड़े बेटे को मिली हुई धनराशि यदि करों के भुगतान मे खर्च कर दी जाती तो आज यह कष्टप्रद स्थिति मुझे न सताती।

जब तुम वहाँ रहोगे तो पारिवारिक उपेक्षा के कारण तुम्हारा मूड खराब रहा करेगा। तुम अपनी थोड़ी-सी पेंशन की धनराशि से अपनी दवा-दारू, कपड़े-लत्ते, घूमना-फिरना और घर आए नाती-पोतों का खर्च तो निपटा ही सकते हो, कोई बडी धनराशि कभी नहीं जुटा पाए और न जुटा सकते हो, ईमानदार सरकारी अधिकारियो की बात मैं नहीं करती। ज्यादातर अधिकारी दोनों हाथों से पैसा बटोरते हैं, ड्राइवर, स्टेनो, बड़े बाबू, दलालों और अपनी पत्नी के माध्यम से लम्बी-लम्बी रकमें डकार जाते हैं, भगवान के सिंहासन के नीचे करोड़ों रुपयों की नई गड्डियाँ छिपाकर रखे रहते हैं, बेनामी सम्पत्ति खरीदते रहते हैं या घर के सदस्यों के नाम नकली खाते खोल कर इनकम टैक्स विभाग की आँखों में धूल झोंकते रहते हैं। कई जिलो मे मैंने ऐसे उच्च प्रशासनिक अधिकारी भी देखे हैं जो सफेद खद्दर का सफारी सूट पहनते हैं, मस्तक पर हनुमान जी के मन्दिर का टीका हर मंगलवार की प्रातः वहाँ के पुजारी जी से लगवाकर आफिस जाते हैं और देखते-देखते सैकड़ों बीघा कृषि-योग्य भूमि के स्वामी बनकर उसमें फार्म हाउस बनवाकर शादी ब्याह में मनमाना किराया वसूल कर रहे हैं, कोई उनमें खूबसूरत मनचली कालगर्ल्स को ले जाकर भोग-विलास का आनन्द उठाते हैं। ऐसे नम्बर दो की कमाई करने वाले और उसको कानूनी जामा पहनाने वाले अधिकारियों की सम्पदा में इन दिनों लगातार वृद्धि होती जा रही है, उनके विभागीय मन्त्रियों में स्वयं इतना नैतिक साहस नहीं है कि वे उन महाभ्रष्ट अधिकारियों को हाथ लगा सकें। उन पतित अधिकारियों की पत्नियाँ, एक तो लोक-विदित किन्तु अनेक गुमनाम जिन्दगी बिता रही हैं नीचे से ऊपर तक सोने के लेटेस्ट डिजाइन के आभूषणों से सजी रहती हैं, उनके घर में जितने घर के सदस्य उतनी ही ए.सी. कारें। खैर मुझे क्या करना ? यह सब कलियुग की माया कहे या भ्रष्ट शासन की देन कहें, देश के प्रधानमन्त्री, प्रदेश के मुख्यमन्त्री, प्रदेश शासन के मुख्य सचिव सार्वजनिक भ्रष्टाचार की वर्तमान स्थिति पर काबू पाने में लगातार कानूनी अड़चनों के कारण विफल हो रहे हैं। मेरे जीवन के प्रारम्भिक दिनों में भ्रष्टाचार की जड़ें न जाने कहाँ गहरी जमीन में छिपी हुई थीं। खैर दुनिया छोड़ते समय मै उस परमशक्ति से यही विनती करती जा रही हूँ कि हमारे 'राम और कृष्ण' की जन्मभूमि व कर्म-भूमि वाले भारत देश के नवयुवकों की आगामी पीढ़ियों द्वारा भ्रष्टाचार मिटाया जाए, चाहे सैनिक शासन ही कुछ अवधि के लिए क्यों न लगाना पड़े, ताकि ऐसे लोग कानून के फन्दे से बार-बार बच न सकें।"

"तुम्हारे हृदय में इस समय देश के भ्रष्टाचार की पीड़ा कैसे उत्पन्न हो गई ?" मैंने आश्चर्यपूर्वक श्रीमती जी से प्रश्न किया।

"क्योंकि तुम जब कम वेतन पाते थे, तो हमारा परिवार अधिक सुखी था और ज्यों-ज्यों तुम्हारा वेतन व महँगाई भत्ता बढ़ता गया रुपए की क्रय शक्ति कम

होती गई और हमारे परिवार के रहन-सहन का स्तर भी क्रमशः गिरता रहा।''

''हटाओ अब इन पुरानी बातों को। विकासशील देशों में बहुधा भ्रष्टाचार ऊपर से शुरू होकर नीचे तक कैंसर की तरह फैलता जाता है--पाकिस्तान, बंगलादेश और भारत सभी इस मामले में एक ही तराजू में तौले जा सकते हैं।''

''ठीक है, वे दैवी प्रकोप के शिकार एक न एक दिन अवश्य होंगे। आजकल मै न जाने क्या-क्या सोचती रहती हूँ न जाने क्या-क्या सपने देखती रहती हूँ। कभी-कभी बहक जाती हूँ। अतः मेरी बातों का बुरा न मान जाना।

मेरा केवल तुमसे इतना कहना है कि अपनी वृद्धावस्था और घटते स्वास्थ्य के हित में और मानसिक तनाव से बचने के लिए पुराने मकान में बड़े बेटे के साथ किसी भी दशा में न रहना।

यह बात और है कि कभी-कभी सप्ताह में एक दो दिन यानी शनिवार और इतवार को रुककर अपने पुराने वृद्ध मित्रों और निकट सम्बन्धियों से प्रेमालाप करके सोमवार की प्रातः यहीं लौट आया करना।''

''क्यों ? इतनी जल्दी क्यों ?''

''इसलिए कि मेरी अर्चना उदार प्रकृति की और विशाल हृदय की सुशिक्षित छोटी वधू है। वह तुम्हारे खाने-पीने और चिकित्सा व्यवस्था का पूरा ध्यान रखेगी। बेटे पैसे और बहू प्रेम से तुम्हारी यथोचित सेवा करेगी।''

''अच्छी बात है, मैं समझता हूँ कि तुम मृत्यु पूर्व अपने हृदय में संरक्षित भावनाओ को धीरे-धीरे प्रकट कर रही हो, मुझे तुम्हारा सुझाव स्वीकार है।''

''और सुनो, जहाँ तक विवेक के स्वभाव का प्रश्न है, वह तुम्हारी तरह वाणी का कठोर है, तुम्हारी ही तरह बड़बड़ाता रहता है। तुम्हारी कुछ खराब आदतें उसको भी मिली हैं, यह गिलास यहाँ क्यों पड़ा है ? यह गेंद रसोई में क्यों पड़ा है ? यह तौलिया बेड पर क्यों रखी है ? जूते यहाँ कैसे रखे हैं ? इसी तरह की दसों बातें तुम्हारी तरह प्रातः आफिस जाते समय और सायं आफिस से लौट कर घर आने पर अवश्य बकेगा। फिर भूल जाएगा कि उसने किससे क्या कहा था ?

तुम यह समझने की कोशिश करो कि वह अत्यन्त संवेदनशील, स्वच्छ हृदय और उन्मुक्त स्वभाव वाला मेरा होनहार बेटा है। मुझे ऐसे बेटे पर गर्व है। हर माँ ऐसे बेटे पर गर्व का अनुभव करती है। ईश्वर उसकी रक्षा करे, अगर तुम अकस्मात् बीमार पड़ गए तो तुम्हारी दवा-दारू पर आँख बन्द करके, पैसे खर्च करेगा।'' श्रीमती जी इतना अधिक बोलने के कारण थक गईं और लम्बी साँसें लेने लगीं।

फिर रुककर दुबारा धीरे-धीरे बोलीं, ''तुम मेरे न रहने पर दुःख मत करना। मुझसे पहले तुम्हारे आधे दर्जन मित्रों की पत्नियाँ दिवंगत हो चुकी हैं, पर ये सभी लोग प्रसन्नचित्त रहकर सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। मैं तो अपने दाम्पत्य जीवन

के अट्ठावनवे वर्ष मे तुमसे विदा ले रही हू। मेरे न रहने पर खूब घूमना, देश-विदेश के रमणीक स्थानों का भ्रमण करना, समुद्र के तटों पर चाँदनी रातों में, हिमालय के ऊँचे-ऊँचे स्थानों पर बसे स्थानों पर रात्रि के गहन अन्धकार में बैठकर दूर पर जलते हुए विद्युत प्रकाश को देखना और बीच-बीच में मुझे याद करना, मनचाहा धार्मिक साहित्य पढ़ना, जीवन के रोचक और मर्मस्पर्शी संस्मरणों पर छोटी कहानियाँ और लघु उपन्यास लिखना। दैनिक योगासन, सात्विक भोजन, प्रचुर विश्राम और तनाव शून्य जीवन व्यतीत करना।

उत्तर प्रदेश सरकार अपनी आर्थिक खस्ताहाली में भी तुम्हें पेंशन में इतनी धनराशि देती ही है कि तुम आराम से अपना जीवन व्यतीत कर सको और अपनी उपयुक्त चिकित्सा करा सको। अब तीसरी और शेष अन्तिम इच्छा है कि मेरा सीतापुर वाला मकान—जो मेरे पिताजी ने मुझे दिया है किरायेदारों से खाली करवाकर मेरा हिस्सा मेरी बड़ी बेटी जो इस समय परिस्थितिवश सबसे अधिक आर्थिक संकटो मे है, दे देना अथवा उसे बेचकर प्राप्त धनराशि उसे ही भेज देना। मेरी विधवा छोटी बहनों का मान-सम्मान और संकट पड़ने पर आर्थिक सहायता कर देने का ध्यान रखना।"

उपर्युक्त वाक्य पूरे होते ही उनकी मुरझाई आँखों से बड़े-बड़े मोती के दानो की तरह सफेद चमकीले आँसू निकल आए और सूखे ढलुआ कपोलों पर टूट-टूटकर नीचे लुढ़कने लगे। मैं अपने खद्दर के कुरते की जेब से रूमाल निकालकर प्यार से उनके आँसू धीरे-धीरे पोंछने लगा और भीगे कपोलों को हाथ से सहलाते हुए मैंने कहा, "एक ओर तो मुझे जीवन-संग्राम में अर्जुन की भाँति संघर्ष करते रहने की प्रेरणा दे रही हो तो दूसरी ओर तुम स्वयं नारी सहज सुकोमल मनोवृत्तियों का इस प्रकार शिकार क्यों होती जा रही हो ?"

बाईसवाँ अनुच्छेद

ईद की शाम को मेरे अनुजवत श्री विनोद चन्द्र मिश्र सेवानिवृत्त सहायक सूचना निदेशक आ पहुँचे और पड़ोस में रहने वाले भारतीय खाद्य निगम वाराणसी के प्रबन्धक श्री अंसारी के घर चलकर उन्हें ईद-उल-फितुर की शुभकामनाएँ प्रदान करने का मुझे स्मरण कराया। इस कार्य के लिए मैं मानसिक रूप से पहले से ही तैयार बैठा था। मैंने घर से बाहर जाने से पूर्व श्रीमती जी से कहा, "मैं पड़ोस में रहने वाले अंसारी

साहब के घर मिश्रा जी के साथ जा रहा हूँ। ड्राइंग रूम के बाहरी किवाड़ ढक दिए है, चाहो तो अन्दर से बन्द कर लो, तुम शाम के समय घर में बिल्कुल अकेली रहोगी।''

''तुम निश्चिन्त होकर अंसारी साहब के घर जाओ पर बहुत देर न लगाना। दरवाजा बन्द करने की इतनी जल्दी क्या जरूरत है ? कोई अन्धेर मचा हुआ है क्या ?'' ''ठीक है।'' कहते हुए प्रतीक्षारत मिश्रा जी को लेकर मैं अंसारी साहब के घर पहुँचा। वहाँ चार-पाँच मेहमान रंग-बिरंगी नई पोशाकों में पुरुष और महिलाएँ पहले से ही उनका सोफा गर्म कर रहे थे। हम दोनों को देखकर अंसारी साहब अपनी काले उड़द की खिचड़ीनुमा अधपकी दाढ़ी के बीच चमकते दाँतों से मुस्कराए, फौरन खडे होकर दिल खोल कर गले मिले, हमने उन्हें ईद का मुबारकबाद दिया। अन्दर के दरवाजे से उनकी सूखी और दुबली-पतली बेगम सूखी सेवइयां और गर्मागर्म छोले की दो प्लेटें दोनों हाथों में पकड़े हुए आ गई—मेज पर रखकर मुझसे कहा, नोश फरमाइए और वहीं पर रखी चाय की केटली से दो सुनहरी लाइनों वाले सफेद हल्के प्यालों में खुशबूदार चाय उँड़ेल दी। अंसारी साहब के ईद मुबारक से सम्बन्धित रोचक लतीफे सुने, नाश्ता खत्म किया और फिर उनसे इजाजत लेकर घर लौट आया। ज्यो ही में अपने गेट के पास आकर रुक गया, मिश्रा जी बोले, ''क्या आसिफ साहब के यहाँ नहीं चलेंगे ? वे हम लोगों का इन्तजार कर रहे होंगे।''

''नहीं, अब मैं सीधे आपकी भाभी जी के पास जाऊँगा—मुझे देर हो गई है। आठ बज चुका है रात का समय है। घर में श्रीमती जी बीमारी की अवस्था में अकेली है, इस समय मेरे अलावा घर में कोई नहीं है। आसिफ साहिब से मेरी मजबूरी बतला दीजिएगा मगर आप अवश्य चले जाएँ।'' यह कहकर ज्योंही ड्राइंग रूम का दरवाजा खोलकर अन्दर प्रवेश करने लगा—''कौन ?'' जोर की आवाज़ में अन्दर से श्रीमती जी बोल उठीं।

''मैं,'' मैंने आवाज़ बदलकर उत्तर दिया।

''मैं कौन ?'' श्रीमती जी ने कड़े शब्दों में जोर की आवाज़ में पूछा।

''मैं तुम्हारे होनहार बच्चों का पिता जी''—मैंने फिर नकली आवाज़ से उत्तर दिया।

''यह नौटंकी क्यों कर रहे हो ? आवाज़ बदलकर तुमने मुझे शंका में डाल दिया, बिना मतलब पहेली बुझाने की तुम्हारी आदत मुझे कतई पसन्द नहीं है। अन्दर आते क्यों नहीं ?'' श्रीमती जी फिल्मी स्टाइल में कड़कती आवाज में बोलती चली गई।

''लो सीधे तुम्हारे पास आ गया।''

''मेरे बच्चों के पिता जी पहले आप मुझे यह बतलाइए कि आप मेरे लिए असारी साहब के यहाँ से सेवइयाँ लाए या नहीं।''

"नही।

"क्यों ?"

"मिसेज अंसारी अपनी नौकरानी के हाथों द्वारा आपके लिए सारी चीजें भेज रही हैं ?"

"क्या-क्या था ?"

"बहुत कुछ, सूखी व दूधिया सेवइयाँ, छोले भटूरे, आलू की टिकिया, उबले हुए मीठे मटर और न जाने क्या-क्या ?"

"विवेक के लौटने तक तुम मेरे पास यहीं बैठो, अपने को पूरी तरह लिहाफ से ढक लो। आज प्रदेश का सबसे ठण्डा दिन है। टी.वी. के समाचारों में मैंने स्वय सुना है कि यू. पी. में अब तक एक सौ चालीस लोग दिनोंदिन बढ़ती ठण्डक के कारण अपनी जान गँवा चुके हैं।"

इतनी देर में अंसारी साहब की छोटी लड़की नौकरानी के साथ करीने से ढकी हुई दो बड़ी किश्तिओं में सेवइयां और आलू की टिक्की यानी श्रीमती जी की मनपसन्द चीजें ले आई और बोली, "दादी अम्मा, मेरी अम्मी जान ने आपको आदाब कहा है और आपकी सेहत के बारे में पूछा है। लीजिए थोड़ा सा नाश्ता कर लीजिए।" यह कहकर सलाम करती हुई वह अपनी नौकरानी के साथ वापस लौट गई।

मैंने एक गिलास गुनगुना पानी उनके बड़े काले थर्मस से निकालकर उनके सामने मेज पर रख दिया और बोला, "अंसारी साहब की सूखी सेवइयाँ खाओगी तो तबीयत खुश हो जाएगी।"

मैडम ने सेवइयों के चार-पाँच चम्मच स्वाद ले-लेकर खाए, आधी आलू की टिक्की खाई, फिर बची हुई चीजें उसी तरह ढककर रख दीं, पहले से लगा पान मुँह में रखते हुए बोलीं, "इस तरह की सूखी सेवइयाँ एक बार मैंने भी बनाने की कोशिश की थी पर इनका स्वाद ही कुछ और है।"

"अब मेरी सुनो।"

"बोलिए मैडम।"

"अपना यह अंग्रेजी चारजामा उतार डालो, अपना स्लीपिंग गाउन और पायजामा पहनकर मेल अटेण्डेण्ट की तरह नाइट ड्यूटी के लिए तैयार हो जाओ।"

मैंने शाश्वती की इच्छानुसार रात्रिकालीन घरेलू कपड़े पहन लिए, पास का टेबल लैम्प जला लिया और तसलीमा नसरीन का उपन्यास 'लज्जा' पढ़ना शुरू कर दिया। मैडम मुझे अपने चश्मे के अन्दर छिपी हुई बड़ी-बड़ी आँखों से मन लगाकर देखती रहीं, बीच-बीच में टूथपिक से दाँत साफ करती रहीं और फिर हँसकर धीरे से बोली, "मेरी स्मृतियों की गहराई में छिपा हुआ तुम्हारे कालेज के विद्यार्थी वाला रूप न जाने आज बार-बार मुझे क्यों याद आ रहा है ? सारी जिन्दगी तुम पढ़ते रहे पर

कबीर के कहे हुए 'ढाई अच्छर प्रेम के पढ़े सो पण्डित होय' का मर्म तुम आज तक नहीं समझ पाए," श्रीमती जी की यह बात सुनकर मैने विस्मयपूर्ण मुद्रा में प्रश्न किया।

"कैसे ?"

"इसलिए तुम प्रभु-प्रेम का प्रथम पाठ नहीं पढ़ पाए न संसार के दीन-दुखियो से प्रेम करना ही सीख पाए। यदि किसी से तुमने प्रेम किया भी तो वह केवल स्वार्थवश।" शाश्वती के इन शब्दों पर मैंने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। इतने मे विवेक और अर्चना आ गए, कुछ देर माँ से बात करके वे आराम करने चले गए। मैंने गेट बन्द कर लिया, फिर बेडरूम समेत घर की सारी बत्तियाँ बुझा दी, टार्च के सहारे आकर बेडरूम में शाश्वती के दाहिनी ओर लिहाफ से मुँह ढक कर लेट गया।

मैं बहुत दिनों के बाद आज गहन निद्रा में सो गया था। मुश्किल से आधी रात गुजरी होगी, मैंने श्रीमती जी की ओर मुँह करके करवट बदली तो मुझे धीरे-धीरे उनके कराहने की आवाज सुनाई पड़ी। मैं चुपचाप बेड से नीचे उतरा। अँधेरे मे बेडरूम का स्विच बोर्ड टटोला, मर्करी लाइट आन कर दी, प्रकाश होते ही मैंने देखा कि शाश्वती लिहाफ से अपने को अधिकाधिक ढके हुए आगे की ओर झुकी बैठी, गाव तकिया पर टेक लगाए हाँफ रही हैं, रुक-रुक कर कराह रही हैं।

"मुझे तुमने जगाया क्यों नहीं ? मैंने अत्यन्त पश्चात्तापपूर्ण मुद्रा में उनसे पूछा।" वे निश्शब्द थीं।

"कितनी देर से इस हालत में बैठी कराह रही हो"—मैंने फिर पूछा। "क्या जगाती ? अभी तो तुम्हें सोए हुए दो घण्टे ही बीते हैं, रात के साढ़े बारह बजे है। जल्दी से थोड़ा पानी खौला लाओ, मैं बफारा लेना चाहती हूँ, मेरी साँस की नली कफ से चोक हो गई है—साँस लेने पर व बाहर निकलने पर यानी दोनों हालतो मे अजब खड़खड़ाहट हो रही है। इस जिन्दगी से मौत अच्छी है, पता नहीं भगवान मुझे इतना क्यों सता रहे हैं।"

मैंने पूर्वाभ्यास के अनुसार किचेन में जाकर आनन-फानन भगोने में थोड़ा पानी खौलाया, उसमें डाक्टर द्वारा दिया गया हरे रंग का एक छोटा सा कैपस्यूल काटकर डाला, भाप निकलता हुआ भगोना श्रीमती जी के सामने मेज पर रखकर उनके सिर पर एक बड़ा तौलिया डालकर उनका चेहरा ढक दिया। वे आधा घण्टा बफारा लेती रहीं, पर न खाँसी कम हुई और न हंफनी ही। आधी रात में नीचे खटपट की आवाज और हम दोनों की बातचीत सुनकर विवेक नीचे उतर आया। अपनी माँ की यह कष्टदायक स्थिति देखकर वह तुरन्त अदरक की चाय बना लाया पर श्रीमती जी ने चाय नहीं पी। लगातार कराहती रहीं और उसे देख-देख कर रोती रहीं।

विवेक अपनी माँ का वर्तमान कष्ट देखकर बहुत दुःखी हो गया फिर पूछने लगा, "माताजी आज तो आपको काफी कष्ट हो गया है। पिताजी अकेले पानी गर्म करके आपको बफारा दिला रहे हैं, दवा पिला रहे हैं। आपने मुझे क्यों नहीं जगवा लिया।"

"तुमने अपने पिताजी को और मुझे इस संकटग्रस्त दशा में शायद आज पहली वार देखा है, इसीलिए तुम इतने दुःखी हो रहे हो। मुझे तो पिछले दस-बारह दिनो से सारी रात यों ही बैठे-बैठे और कराहते-कराहते काटनी पड़ रही है। तुम्हारे पिताजी मेरे साथ सारी रात यों ही कुर्सी पर बैठे-बैठे या घर में इधर-उधर भाग-दौड़ करते रहते हुए काटते हैं। दिन में मुझे दवा खिलाते, अनार का गुनगुना रस पिलाते, इधर-उधर अपने मित्र डाक्टरों से फोन पर मेरा हाल कहकर अपना दुःख कम करने की कोशिश करते हैं। रात में वे क्या करते हैं—तुम आज पहली बार देख रहे हो। बेटा पूर्व जन्म में मैंने जैसे कर्म किए हैं उनका फल तो मुझे ही भोगना पड़ेगा। क्या कर पाएँगे डा. मिश्रा और क्या कर पाएँगे तुम्हारे पिताजी ?" माँ की नैराश्यपूर्ण बातों को सुनकर और उनके टूटते मनोबल को भाँप कर विवेक चुपचाप ऊपर सोने के कमरे में लौट गया।

दूसरे दिन नौ जनवरी सन् 2000 का द्वितीय रविवार था। काफी लोग अपने-अपने घरों में बैठे नए वर्ष के रविवार का आनन्द ले रहे थे। श्रीमती जी आठ बजे तक शिथिल अवस्था में शैया पर पड़ी रहीं। साढ़े आठ बजे अर्चना ने उन्हें वडी मिन्नतों से आधी कप चाय पिलाई। दूसरी ओर विवेक ने (चेस्ट स्पेशलिस्ट) डा ए.के. श्रीवास्तव एम.डी. से फोन पर बात करके अपनी माँ की बिगड़ती हालत बतलाकर उनसे उपयुक्त चिकित्सा का अनुरोध किया।

डा. श्रीवास्तव हिन्दुस्तान एरोनाटिकल्स लिमिटेड फैजाबाद रोड के नव निर्मित चिकित्सालय के अधीक्षक और अनुभवी चेस्ट रोग विशेषज्ञ थे। वे विवेक के मित्र और मेरे सेवाकालीन सहयोगी और मित्र एस.एन. श्रीवास्तव के सुपुत्र थे। डा. श्रीवास्तव ने रविवार होते हुए भी प्रातः आठ बजे अपना बन्द चिकित्सालय खुलवाया और विवेक अपनी माँ को आराम से कार में लिटाकर चिकित्सालय के परीक्षण रूम में साढ़े आठ बजे पहुँच गया। डा. श्रीवास्तव ने श्रीमती जी का हृदय, फेफड़ा, रक्तचाप, नाड़ीगति, श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया, शारीरिक वजन, टेम्प्रेचर, लीवर, कोलन आदि का परीक्षण सावधानी के साथ किया, तुरन्त डेरीफाइलीन और गैरामाइसिन का एक इन्जेक्शन अपने हाथों से लगाया। फिर चेस्ट का एक्स-रे, टी.एल.सी., डी.एल.सी., ई.एस.आर., हीमोग्लोबिन, सेरम क्रियेटीनाइन, सेरम बिलीरुबिन, रक्त का व्यापक परीक्षण, थूक का परीक्षण, ई.सी.जी. बोनमेरो आदि का तुरन्त टेस्ट करा लेने का परामर्श दिया। औषधि के नुस्खों में दो तीन तरह के इन्जेक्शन, कैपस्यूल, गोलियाँ, दो तरह के इनहेलर उन्होने

लिख दिए। दवा और डाइट लेने की विधि सविस्तार समझा दी। यह भी सुझाव दिया कि यदि उनकी औषधि से श्रीमती जी को लाभ न हो तो या स्थिति में कुछ नई समस्या उत्पन्न हो तो तुरन्त उन्हें सीधे के.जी.एम.सी. भेजकर तत्काल भरती करा दिया जाए।

विवेक ने अपनी माँ के सारे टेस्ट इन्दिरा डाइग्नोस्टिक सेण्टर फैजाबाद रोड मे सम्पन्न करा दिए और घर पर एक अनुभवी कम्पाउण्डर बुलाकर इन्जेक्शन लगवा दिया। डा. के परामर्श के अनुसार उन्हें शीत प्रवृत्ति वाली भोजन छोड़कर दाल, चावल, सब्जी, रोटी, सलाद, पापड़ सब कुछ खाने को दिया गया पर उन्होंने बड़ी मुश्किल और बेमन होकर थोड़ा दाल-चावल सब्जी के साथ खाकर हाथ-मुँह धो डाला। थोडी ही देर में विवेक और अर्चना, सौम्या, श्रेयस, छोटी पुत्री ज्योत्स्ना श्रीमती जी के चारो ओर आत्मीयता और निश्चिन्तता का एक ऐसा सुरक्षा-कवच बनाकर बैठ गए जेसे वे प्रत्येक अप्रत्याशित परिस्थिति से निपटने के लिए डट कर बैठ गए हैं। श्रीमती जी अपने बढ़ते शारीरिक कष्टों और जानलेवा पुरानी व्याधियों के अस्तित्व की उपेक्षा करते हुए गाव तकिया लगाए बड़े साहस के साथ इस प्रकार कृत्रिम-प्रसन्नता का आवरण ओढ़े सबकी ओर ऐसे देख रही थीं जैसे कि वे पूर्ण स्वस्थ हो गई हों ओर हम लोग उनकी अनावश्यक देखभाल क्यों कर रहे हैं ? वहाँ पर बैठे सभी बच्चे और समझदार व्यक्ति लगातार हँसाने वाली बातें सुनाकर उनका मनोरंजन करते रहे थे। सायंकाल तक इस प्रकार पड़ोस की महिलाएँ और घर के सदस्य कोई न कोई उन्हें घेरे बैठा ही रहा।

आठ बजे रात को विवेक अपनी माँ के सारे टेस्टों की रिपोर्ट ले आया मैंने प्रत्येक रिपोर्ट का सावधानी से अवलोकन किया प्रत्येक रिपोर्ट नार्मल निकली। तीव्र ब्राकाइटिस के लक्षणों की एक्स-रे रिपोर्ट से भी पुष्टि हुई। दूसरे हीमोग्लोबिन का प्रतिशत घट कर पाँच प्रतिशत रह गया था। वर्षों से उनका हीमोग्लोबिन छः प्रतिशत पर स्थिर चल रहा था। इन रिपोर्टों को देख लेने के बाद निश्चिन्तता की साँस लेता हुआ मैं आज अकेला डायनिंग टेबल पर बैठकर खाना खाने लगा। श्रीमती जी की रिक्त कुर्सी आज मुझे भावी स्थिति की पूर्व सूचना दे रही थी, पर अधिकांश मूढ़मति व्यक्तियों की भाँति मैंने भी उसे अनसुना कर दिया। खाना शुरू करने से पहले मैंने शाश्वती से अनुरोध किया वे मेरे साथ बैठकर या जैसे उन्हें सुविधा हो—रात्रिकालीन भोजन में मेरा साथ निभाएँ, पर अपनी सामयिक असमर्थता व्यक्त करते हुए उन्होने कहा, "मैं विवेक के साथ बैठकर खाऊँगी—अभी नहीं—वह मेरी दवाएँ लेने बाजार गया हुआ है।"

मैं सारे दिन का थका-माँदा और लगातार तनावग्रस्त रहने के कारण ड्रांइगरूम मे जाकर अपना लिहाफ ओढ़कर लेट गया, पता नहीं मृत्युकालीन पूर्वाभास की उपेक्षा करते हुए मुझे गहरी नींद क्यों और कैसे आ गई।

उसके बाद मेरे घर में मेरे परिवार में मेरे जीवन में कौन कब और क्या घटनाएँ दुर्घटनाएँ घटती गईं मुझे नहीं मालूम। नियति ने कितना क्रूर मजाक किया मेरे साथ ? मेरी सदा सक्रिय रहने वाली अन्वेषी दृष्टि अकस्मात् मन्द पड़ गई ? क्या किसी ब्रह्म-लेखनी द्वारा मेरे भाग्य में गुप्त अक्षरों में लिख दिया गया था कि आज सोने से पूर्व तुम शाश्वती को भली-भाँति देख लो, इसके बाद तुम्हें सारा जीवन, इनकी वियोग-व्यथा में विधुर होकर झेलना पड़ेगा। आज की रात तुम्हारे और शाश्वती के दाम्पत्य जीवन की इस घर में ही नहीं इस दुनिया में आखिरी रात है।

मैं प्रातःकाल अपनी प्रवृत्ति के अनुसार पाँच बजे अपने आप जग गया। अदरक डालकर चुपचाप चाय बनाई और श्रीमती जी के बेडरूम में जाकर उन्हें जगाने की कोशिश करता हुआ बोला लो चाय पी लो—मैं बना लाया हूँ। मेरे जगाने पर शाश्वती के लिहाफ के अन्दर से मेरी छोटी बेटी ज्योत्स्ना निकली, वह उठकर बैठ गई, रोने लगी, बोली, "पिताजी जब आप रात सो गए तो माताजी को साँस लेने में अधिक कठिनाई अनुभव होने लगी। उन्होंने विवेक को बुलाकर अपनी बढ़ती तकलीफ बताई और रोने लगीं। ऐसी स्थिति में विवेक डा. श्रीवास्तव से रात के ग्यारह बजे तक लगातार फोन पर सम्पर्क करता रहा पर वे किसी मैरेज पार्टी में सपरिवार गए हुए थे, अतः फोन की घण्टी बेकार में घनघनाती रही। अन्ततोगत्वा रात में साढ़े बारह बजे जब डा. से विवेक की बात हो पाई और उसने अपनी माँ की बिगड़ती हालत के विषय में उन्हें सूचित किया तो वे बोले, 'ऐसा करो विवेक तुम आंटी जी को अपनी कार में लिटाकर सीधे मेरे घर ले आओ। मैं अभी-अभी घर लौटा हूँ। आई.एम.सो सॉरी मेरे घर में मौजूद न रहने के कारण आंटी जी को इतनी परेशानी झेलनी पड़ी। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

विवेक अपनी माँ को लेकर डा. श्रीवास्तव के घर पर रात में बारह बजे पहुँच गया। उन्होंने अपनी आंटी जी की साँस लेने व बाहर निकालने की गति और विधि को ध्यान से देखा और तुरन्त डा. राजीव अग्रवाल कार्डियोलाजिस्ट के पास भेज दिया। डा. राजीव अग्रवाल भारतीय जीवन बीमा निगम से जुड़े डाक्टर और विवेक के पूर्व परिचितों में थे। उन्होंने श्रीमती जी की नाड़ी-गति, रक्तचाप और श्वास-प्रश्वास की क्रिया में बढ़ रही तकलीफ को ध्यान में रखकर फोन करके नीरा नर्सिंग होम महानगर विस्तार में शीघ्र भरती करा दिया और ड्यूटी पर उपलब्ध डाक्टर खन्ना ने आक्सीजन मास्क लगा दिया। आई.सी.यू. की केबिन नं. 57 में वे इस समय भरती हैं।" ज्योत्स्ना यह कहकर अपने आँसू पोंछने लगी। क्रमवार ऐसी घटनाएँ सुनकर मेरे होश उड़ गए, मैं कभी विवेक की दिलेरी की दाद देता तो कभी उसकी मातृ-पितृ भक्ति की सराहना करता—पर बीच-बीच में एक प्रश्न भी अपने से पूछता, क्या विवेक को नीरा नर्सिंग होम में जो लखनऊ नगर का एक साधारण श्रेणी का

नर्सिंग होम अब कहा जाने लगा है, अपनी माँ को बिना मेरे परामर्श के भरती कराना चाहिए, क्या कोई दूसरा उससे अच्छा नर्सिंग होम लखनऊ में नहीं था ? क्या विवेकानन्द पाली क्लीनिक में अथवा के.जी.एम.सी. में करा देने पर डा. श्रीवास्तव के निजी प्रयासों के बावजूद शाश्वती की उपयुक्त चिकित्सा न हो पाती ? यह सुनकर मैं अविलम्ब नीरा नर्सिंग होम विवेक के सहोदर भ्राता से अधिक हितैषी और मित्र विकास के साथ पहुँच गया, आई.सी.यू. केबिन खोजी, पहुँचते-पहुँचते वहाँ का भयानक दृश्य देखकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए। श्रीमती जी नाक में आक्सीजन की नली लगी हुई थी एक हाथ की नस में खून चढ़ रहा था, रात भर में तीन-चार बोतलें ग्लूकोज चढ़ चुका था, साँस की खड़खड़ाहट दूर खड़े व्यक्ति को सुनाई पड़ रही थी। दस जनवरी सन् 2000 की कितनी अशुभ प्रातःकाल। असाधारण ठण्डक के बावजूद श्रीमती जी के सिर पर केबिन का पंखा पूरी स्पीड से चल रहा था। विवेक ने मुझे देख लिया तुरन्त केबिन से बाहर आकर मुझसे कहने लगा—पिताजी रात में आप सो चुके थे आपको जगाना मैंने ठीक नहीं समझा। माताजी की हंफनी बुरी तरह बढ़ रही थी। डा. श्रीवास्तव के परामर्श के अनुसार इन्हें आक्सीजन लगाए जाने व ब्लड चढ़ाए जाने की तत्काल आवश्यकता थी। अतः डा. श्रीवास्तव और डा. राजीव अग्रवाल के संयुक्त परामर्श पर मैंने माताजी को नीरा नर्सिंग होम में भरती करवा दिया। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें—यहाँ की सारी चिकित्सा व्यवस्था मै स्वयं देख रहा हूँ और मेरे मित्र विकास मुझे कल रात से हरेक प्रकार का सहयोग दे रहे हैं।

आप अन्दर आ जाइए—इसी केबिन में रखी कुर्सी पर बैठकर माताजी की देखभाल कीजिए। मैं डा. राजीव अग्रवाल से फोन पर बात कर लूँ और कुछ देर के लिए अपने आफिस का चक्कर लगा लूँ—एक बजे तक मैं लौट आऊँगा, आप हर तरह से निश्चिन्त रहें पिताजी। "जैसी ईश्वर की इच्छा होगी वैसा ही होगा।"

"ठीक है, तुम शीघ्र जाओ बेटे, पैसों की जरूरत हो तो मुझसे लेते जाओ।" मैंने विवेक की ओर चिन्ताग्रस्त दृष्टि से देखते हुए कहा।

"नहीं पिताजी, मेरे पास पैसे हैं। जब जरूरत पड़ेगी तो अवश्य ले लूँगा। अभी नहीं।" यह कहकर उसने अपनी माताजी के मस्तक का हाथ से स्पर्श किया। उन्होंने पल भर के लिए अपनी आँखें खोलीं और तुरन्त ही बन्द कर लीं।

दोपहर में एक बजे विवेक लौट आया और आई.सी.यू. के केबिन नं. 57 के अन्दर रखी कुर्सी पर बैठ गया। इतनी देर में अशरफाबाद से ज्येष्ठ पुत्र, वधू श्रीमती पुष्पा वाजपेयी जो श्रीमती जी के द्वारा बुलाए जाने पर उनके जीवन-काल के अन्तिम दिनों में घर पर उन्हें देखने नहीं आई थीं, आज विवेक के आमन्त्रण पर नीरा नर्सिंग होम आकर केबिन में पड़ी कुर्सी पर बैठकर अपनी माताजी की साँसों को ध्यान

से देखने लगी। वह सास, जिसने उन्हे मेरे घर की बहू बनाने मे मेरे प्रबल विरोध के बावजूद अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और विवाह के समय से लेकर अब तक हरेक प्रकार से मान-सम्मान और निरन्तर सहयोग प्रदान किया था।

मुझे घर लौट जाने दोपहर का खाना खाकर आराम करने का विशेष अनुरोध करके विवेक ने येन केन प्रकारेण मुझे घर वापस कर दिया।

तेईसवाँ अनुच्छेद

दिनांक 10 जनवरी, 2000, समय—सायंकाल 6 बजे, स्थान— 21/1029, इन्दिरा नगर।

आज सायंकाल 6 बजे अपने घर के बाहरी लान पर आराम कुर्सी पर बैठा, ऑखें बन्द किए किसी भयंकर दुर्घटना की आशंका से उत्पन्न दुश्चिन्ताओं के महासागर मे डूबता-उतराता किसी छोटे तिनके के समान इधर-उधर प्रबल लहरों के थपेड़े खाकर अस्तित्वहीन हो चुका था। अनेक प्रकार के दिवास्वप्न दिखलाई पड़ते और क्रमश. दृष्टिपथ से ओझल हो जाते। जीवनसंगिनी की सत्तावन वर्षीय सुख-दुःख-मिश्रित संघर्षो की अवधि में, उनके समर्पित सान्निध्य की विशाल सीमाएँ भरभराकर मेरी ऑखो के सामने गिर रही थीं। मेरे जैसा सामान्य मनुष्य तो क्या ? कोई भी संवेदनशील और निष्ठापूर्ण पति अथवा प्रेमी अथवा मेरी तरह से दोनों ऐसी दुस्सह और दारुण स्थिति में पत्नी को फँसा देखकर अपने को किस प्रकार सन्तुलित रख सकता है ? यह दुनिया कितनी मायावी है और किस प्रकार दो-दो मुखौटे पहनकर अपनी जिन्दगी गुजारती है—इस रहस्य की यथार्थ अनुभूति मुझे अपनी शाश्वती की रुग्णावस्था के अन्तिम चरणों में हुई।

ऐसे मायावी लोग जो अपने मित्रों, सहयोगियों और सम्बन्धियों को उनकी पत्नी की आसन्न मृत्यु के संकटपूर्ण क्षणों में जिस ज्ञान का मार्ग दिखलाते हैं उस मार्ग पर वे स्वयं कभी पदार्पण भी नहीं करते। मुझे बचपन से ही सांसारिकता, लौकिकता और छलप्रपंचपूर्ण आचरण से स्वाभाविक चिढ़ थी, घृणा थी और शब्दों के साथ इस प्रकार बलात्कार करने वाले व्यक्तियों का मैं घोर विरोधी था। इस समय मैं ऐसी अकल्पित दैवी विपत्ति का शिकार बन गया था कि केवल अधरगत सहानुभूति रखने वाले मेरे मिथ्या-भाषी मित्र मुझे भाँति-भाँति से सान्त्वना देने आ रहे थे। मेरी अवसादपूर्ण मनःस्थिति और मेरे चारों ओर फैलता सायंकालीन अन्धकार मुझे व्याकुल किए हुए था और उसी समय नीरा नर्सिंग होम से विवेक का फोन आ गया कि खून चढ़ाने

के बाद माताजी को गहरी नींद आ गई है वे बहुत दिनो के बाद गहन निद्रा का सुख अनुभव कर रही हैं। मेरी शोकाकुल चित्तवृत्ति को क्षणिक शान्ति अनुभव हुई। जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूरज की तेज धूप से मुरझाए पेड़ पौधों की मरियल पत्तियों पर पानी की चार बूँदें आकस्मिक वर्षा हो जाने के कारण हल्की सी हरियाली वापस ले आई हों। मैं नीरा नर्सिंग होम की आई.सी.यू. की केबिन में जब श्रीमती जी को देखने गया, तो उन्हें अचेतनावस्था में लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए देखा, उनका रक्तचाप तो लगभग सामान्य था यानी 140/90, नाड़ी की गति 82, पर साँस आने-जाने की गति बहुत तेज दिख रही थी। सारे जीवन में रक्ताभ दिखने वाला उनका मुँह आक्सीजन मास्क से ढका हुआ था।

दस जनवरी की रात्रिकालीन कड़ाके की ठण्डक में उनके बेड के सिर पर की ओर वाल-फैन पूरी स्पीड से चल रहा था, हालाँकि पूरा शरीर दो नए कम्बलो से अच्छी तरह ढका हुआ था। सार्वजनिक अवलोकनार्थ प्राणी उद्यान लखनऊ में रखे ब्रिटिशकालीन पुराने स्टेचू की भाँति मैं प्रस्तरवत खड़ा उन्हें पास से देखता रहा, उनके खुले मस्तक को अपनी हथेली से स्पर्श किया, निराशा की नई लहर मुझे अपने साथ तेजी से कहीं दूर तक बहा ले गई। मैं कुछ कहना चाहता था पर वहाँ अदृश्य दैवी शक्ति के अतिरिक्त सुनने वाला था ही कौन ?

जिन श्रीमती जी को मैंने अब तक के जीवनकाल में सर्वाधिक आत्मीयता प्रदान की थी, जिनके सामान्य से सामान्य रोगों की चिकित्सा मैंने राजधानी के विशिष्ट चिकित्सकों के द्वारा करवाई थी, उन्हीं श्रीमती जी की अनाप-शनाप चिकित्सा के कारण अधकचरे चिकित्सकों के हाथों मारा जाता हुआ देख रहा था और अपना मुँह सिले हुए था। जो नौसिखिया चिकित्सक उन्हें उस समय अटेण्ड कर रहा था वह प्रदेश के एक निम्नकोटि के मेडिकल कालेज का साधारण मेडिकल ग्रेजुएट था। उसका बौद्धिक स्तर और ज्ञान गरिमा उसकी बातों से स्वतः उजागर हो रहे थे। बेकारी के आलम में थोड़े पैसे लेकर वह मरीजों को मार-मार कर अपने व्यावसायिक अनुभव की प्राप्ति कर रहा था। जो चिकित्सक उसका मार्गदर्शन कर रहा था, वह सामान्य मेडिसिन के एम.डी. थे न तो चेस्ट स्पेशलिस्ट और न कार्डियोलाजिस्ट, अनाड़ी और मन्दबुद्धि डाक्टर की तरह श्रीमती जी की दवा की मात्रा बढ़ाते चले जा रहे थे, उनके सूखे शरीर और वृद्धावस्था से उत्पन्न सामान्य दुर्बलता का उन्हें लेशमात्र ध्यान नही रहता था। प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल आई.सी.यू. के बाहर तीन-चार आयुर्वेदिक या यूनानी चिकित्सा के नए बछड़ों के बीच खड़े होकर वे मूर्खराज अपना स्टैथेस्कोप हिलाते हुए अपने ज्ञान की गरिमा की गाथाएँ सुनाकर आत्मश्लाघा की तृप्ति किया करते थे। अनुभवहीनता और अपनी विभागीय मित्रता के कारण विवेक उन पर अन्धविश्वास करके 'अँधेरे में तीर' चलवा रहे थे। सफेदपोश लुटेरों की महफिल मे

मेरे बेटे की गाढ़ी कमाई का पैसा लुट रहा था।

पहले तो उन्होंने विवेक को यह समझा दिया कि श्रीमती जी की अर्ध-चेतना अवस्था वाले अधिकांश रोगी आई.सी.यू. में पड़े यों ही हफ्तों कराहा करते हैं और फिर उनकी दवा से वे ठीक होकर घर चले जाते हैं और फिर जब दो-तीन हजार के रोज दो इन्जेक्शन व सैकड़ों रुपए रोज के ढेर सारे कैपस्यूल खिलाकर श्रीमती जी की दशा में लेशमात्र सुधार न कर पाए तो तेरह जनवरी को उन्होंने पुराने जमाने के जंग लगे हुए एक चेस्ट-स्पेशलिस्ट को बुलवाकर उन्हें दिखलाया।

उस मन्द बुद्धि और आउट आफ प्रैक्टिस वाले डाक्टर ने रोगी को देखने, उसकी शारीरिक क्रियाओं का परीक्षण करने औषधियों के चयन और प्रत्येक औषधियो की उचित मात्रा आदि पर कुछ भी ध्यान न देकर सीधे संजय गाँधी पी.जी.आई. सन्दर्भित करते हुए अब तक रोगी की दी हुई औषधियों की एक लम्बी सूची बना दी। कृत्रिम श्वास-प्रश्वास हेतु 'रेस्पिरेटर' पर रखे जाने हेतु उन्हें पी.जी.आई. ले जाने का मुझे सुझाव दे डाला।

मरता क्या न करता ? मैं अपने पड़ोसी और पारिवारिक व्यक्ति की भाँति शुक्ला जी की टाटा सूमो पर अविलम्ब पी.जी.आई. पहुँचा, वहाँ के स्टाफ में कार्यरत अपने एक सम्बन्धी के माध्यम से एक विशेषज्ञ को नीरा नर्सिंग होम का सन्दर्भ-पत्र दिखलाकर एक रेस्पिरेटर की व्यवस्था करने का अनुरोध किया। उन्होंने पत्र पढ़कर गम्भीरतापूर्वक संक्षिप्त शब्दावली में व्यक्त किया कि रोगी के रोग, उसकी आयु, उसकी वर्तमान शारीरिक स्थिति आदि पर विचार किए बिना उसकी चिकित्सा ठीक नहीं की गई है। दी गई औषधियों की मात्रा आवश्यकता से कहीं अधिक होने के कारण रोगी पर अपना प्रतिकूल प्रभाव डाल रही है। वर्तमान स्थिति उत्पन्न हो जाने के कारण रोगी को पी.जी.आई. में भरती कराने से कुछ लाभ होने की सम्भावना कम है, दूसरे इस समय उनके संस्थान के दोनों रेस्पिरेटर उनके अपने रोगियों द्वारा ही प्रयुक्त किए जा रहे हैं।

मैं वहाँ से हाथ मलता हुआ अपने भाग्य को कोसता हुआ और अपनी अत्यधिक मातृभक्ति के कारण माँ की दशा से द्रवित विवेक के सूझबूझपूर्ण सामयिक निर्णय न ले सकने पर पश्चात्ताप करता हुआ सीधे के.जी.एम.सी. के चेस्ट विभाग के अत्यधिक और सुप्रसिद्ध चिकित्सक प्रो. राजेन्द्र को नीरा नर्सिंग होम अपने साथ ले आया। उन्होंने श्रीमती जी की वर्तमान स्थिति की विशेषज्ञ की भाँति सावधानीपूर्वक जॉच की। वे आई.सी.यू. की केबिन के प्रवेश-द्वार पर खड़े होकर मुझसे चिन्तित मुद्रा में कहने लगे, "आपकी वाइफ के पैरों की सूजन, चेहरे की सूजन, दी जा रही दवाइयो की अधिकता देखकर मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि आपने मुझे बुलाने में देर कर दी। इनको केवल ब्रांकल अस्थमा का दौरा पड़ा था जो ठीक हो जाने की स्थिति

हुआ योगेश पाण्डेय जी के नेतृत्व मे डार्क रूम से एक्स रे करवा लाया।

डा. अग्रवाल ने श्रीमती जी की एक्स-रे रिपोर्ट फिर देखी धीरे से बोले, "इनके दोनों फेफड़े और साँस की नली कफ से पूरी तरह भर गए हैं।"

इसी समय विवेक वहीं पर अपने आफिस से वापस आ गया और खड़ा हो गया। उसने मुझे घर जाकर आराम करने व निकट सम्बन्धियों को फोन द्वारा श्रीमती जी की चल रही अन्तिम श्वासों के सम्बन्ध में सूचना भेज देने को कहकर लगभग रोने लगा। मैंने घर लौट कर सबसे पहले मुरादाबाद में रह रही ज्योति से फोन पर बात की, उसने रोते हुए कहा कल प्रातः मैं लखनऊ पहुँच रही हूँ। फिर शाश्वती की दो बहनों को लखीमपुर फोन करके उन्हें स्थिति से अवगत करा दिया। अपनी एक बहन को जो प्रतापगढ़ थी उसे सूचित कर दिया कि वह तुरन्त लखनऊ आ जाए।

रात को केवल एक कप दूध पीकर और कम्पोज़ की एक गोली खाकर मै निर्जीव सा सो रहा।

प्रातःकाल नित्य की भाँति सात बजे ही बिस्तर छोड़ने का मन नहीं हो रहा था। मेरी ऐसी विचित्र मानसिक स्थिति उत्पन्न हो गई थी जैसे कि अब इस सूने संसार में मुझे कुछ करना शेष न रह गया हो। बार-बार सोचता मेरे जगने, उठने, चलने-फिरने, भागदौड़ करने का अब क्या उद्देश्य रह गया है। मैं अभी बेड पर लेटा हुआ दैनिक जागरण का प्रथम पृष्ठ ही पढ़ रहा था कि मेरी बड़ी बेटी ज्योति और बड़ा नाती मुरादाबाद से आ गया। अर्चना ने उन्हें चाय-नाश्ता करवाकर सीधे नीरा नर्सिंग होम भिजवा दिया।

मैं स्वयं अनमना निरुद्देश्य और उत्साहहीनता से लबरेज़ आई.सी.यू. की केबिन के अन्दर प्रवेश करके श्रीमती जी के निष्प्राण दिख रहे चेहरे को ध्यान से देखने लगा और मानव जीवन में संचित धन, ऐश्वर्य, सम्पन्नता और शारीरिक अलंकरण की क्षण-भंगुरता पर विचार करने लगा। शाश्वती की तेज़ साँसें अब सदा-सदा के लिए टूट जाने और बन्द हो जाने की कगार पर थीं। साँसों की बढ़ती तेजी चेतावनी दे रही थी कि वे वृद्ध नारी शरीर को छोड़कर शीघ्र बाहर निकल जाना चाहती है, न जाने शाश्वती के प्राण कहाँ अटके हुए थे, संकट और संघर्षपूर्ण मध्यम-वर्गीय जीवन और मेरी गृहस्थी की कठिन समस्याओं से सदा संघर्ष करने वाली और उनमे विजयी होने वाली शाश्वती आज अपने प्राणों की रक्षा का संघर्ष करती-करती इस बन्द आई.सी.यू. की केबिन में पूरी तरह पराजित हो चुकी थीं और दो-चार शेष साँसें न जाने क्यों अभी तक उन्हें काँटों की शैया पर रोके हुई थीं।

अब न घर जाने का मन हो रहा था और न आई.सी.यू. में खड़ा रहने की शक्ति थी। मैं नर्सिंग होम के बाहर पड़ी प्लास्टिक चेयर्स के पास आकर एक कोने

की चेयर पर गरदन लटकाकर बैठ गया। मै सोचने लगा शाश्वती की मृत्यु मुझे क्यो नहीं आ जाती ? उसकी तरह मेरी साँसें क्यों नहीं उखड़ जातीं ? यमराज मुझे क्यो नही उसके साथ ही साथ बुला लेते ? उसका आक्सीजन मास्क मेरे चेहरे पर क्यो नही लग जाता ? मैं इस प्रकार दुःख और निराशा के घोर अन्धकार में अज्ञानता की कोठरी में कहीं रास्ता भूल गया था। बाहर निकलने का रास्ता नहीं दिखलाई पड रहा था। अन्दर आगे जाने का रास्ता बन्द था। मैं छोटे पिंजड़े में कैद बड़े पक्षी की तरह फड़फड़ाकर भी उसी में बन्दी बना हुआ था। दूसरी ओर मेरे पास बैठे मित्र और पारिवारिक सदस्यों की अपनी समझ में न आने वाली बातें सुन रहा था, नही भी सुन रहा था, बीच-बीच में वे अपने आप मेरे कर्णछिद्रों द्वारा बलात् प्रवेश कर जाती थीं। कोई कहता था "न जायते म्रियते व कदाचित" कोई कहता था "वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहृणाति नरोऽपराणि" कोई कहता था मनुष्य के जीवन की अन्तिम घड़ियाँ अत्यन्त कष्टदायक होती हैं। मैं उन सभी प्रतिभा-सम्पन्न और ज्ञानवान व्यक्तियों के आदर्श वाक्य सुनने के लिए तैयार नहीं था।

मुझे अपने दृष्टि पथ के आगे-आगे चलता हुआ एक विशाल शून्य लगातार दृष्टिगोचर हो रहा था, आप उसे मेरे पास बैठकर भी नहीं देख सकते थे। जब उसे पकड़ने मैं दौड़ता, तो वह मुझसे और दूर भाग जाता। मैं उसे अपने हाथों से पकड कर उसके अन्दर से निकलकर उससे आगे बढ़ जाना चाहता था पर वह अपनी गति और तेज कर लेता था। परिणाम मेरा शून्य आगे-आगे और मैं उसके पीछे-पीछे निरर्थक दौड़ लगा रहा था।

यह कोई दिवास्वप्न नहीं था, प्रत्युत एक प्रत्यक्ष वास्तविकता थी जिसे मैं अपने चर्म चक्षुओं से स्पष्ट देख रहा था। एक बात जो मेरी समझ में नहीं आ रही थी, वह यह थी कि मेरी ओर उस शून्य की दौड़ में जब शून्य मुझसे आगे निकल जाता और मैं थककर पीछे एक क्षण रुकने लगता तो शाश्वती मुझे पराजित देखकर निर्णायक मुद्रा में स्वयं खड़ी होकर मुस्करा देतीं। मैं एक अदृष्टपूर्व मानसिक स्थिति से ग्रस्त था, जिसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति करना मेरे लिए मुश्किल हो रहा था।

इस प्रकार किसी दूरस्थ कल्पना लोक के लम्बे जीवन पथ पर लगातार दौडता, हॉफता, अपनी अक्षमता और सीमित गतिशीलता पर पश्चात्ताप करता, अन्त में पराजित होकर जहाँ था वहीं रुक गया। वह महाशून्य धीरे-धीरे अधिक चमकीली हो रही अपनी प्रकाशमान परिधि के द्वारा रेखांकित होकर बहुत तीव्र गति से आकाशमार्ग द्वारा शनैः-शनैः दूर होता जा रहा था, पर उसके अन्दर कभी-कभी शाश्वती का कान्तिमान मुखड़ा बड़ी लाल बिन्दी युक्त गोरा मस्तक सहसा चमक उठता था।

इसी बीच मेरे मुँह बोले अनुज ज्ञानेन्द्र ने मेरा चरण स्पर्श करके मुझे धरती पर उतार दिया। जब मैंने झिलमिलाई आँखों से उन्हें देखा तो पूछा, "तुम कब आ

गए ?"

"मुझे आए काफी देर हो गई है—मैं गोमुख का गंगाजल और तुलसी दल लेकर आया हूँ, इन्हें आप अपने हाथों भाभी जी के मुँह में डाल दीजिए। आज उनके वर्तमान शरीर का अन्तिम जीवन दिवस है। आज रात्रि के दो बजे तक उत्तरायण सूर्य होते ही उसकी अवधि समाप्त हो जाएगी।"

मैं यह सुनकर भी मौन रहा। अब मेरे मस्तिष्क में एक अजब तरह की हलचल मची हुई थी। मैं समझ रहा था कि मनुष्य अपनी असाधारण वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद अपने प्रियजन की मृत्यु देखते समय कितना असहाय हो जाता है, उसकी आन्तरिक छटपटाहट उसे प्रस्तरवत् कर देती है।

नीरा नर्सिंग होम के प्रवेश-द्वार के पास पड़ी रंग-बिरंगी प्लास्टिक की आराम कुर्सियों में सबसे किनारे की नीले रंग की एक कुर्सी पर अपनी आदत के अनुसार बैठे-बैठे मैंने शाम के छः बजा दिए। दिन भर आते-जाते और वहाँ पर मेरी सहानुभूति में बैठे आगन्तुक मित्रजन धीरे-धीरे अपने घरों को बहाना बनाकर खिसकने लगे, वे कहने लगे उनकी पत्नियाँ घरों पर उनकी प्रतीक्षा कर रही होंगी। थोड़ी देर मे विवेक अपने एक सहयोगी मौर्या जी को लेकर रात्रिकालीन दुष्कर और आज स्वतः समाप्त हो जाने वाली अन्तिम ड्यूटी पूरी करने हेतु अपनी सामान्य मुद्रा में आ गया, मुझसे बोला, पिताजी आप घर जाइए, खाना जरूर खा लीजिएगा। जो कुछ होना है वह तो होगा ही। आप कम्पोज़ खाकर सो रहिएगा। मैं यहाँ केबिन में माताजी के सामने कुर्सी पर बैठा रात भर जागता रहूँगा उन्हें देखता रहूँगा मौर्या जी मेरे साथ ठहरेंगे, मैं उसकी बात मानकर अपनी बड़ी बेटी ज्योति को लेकर हारे हुए सैनिक की तरह भारी कदमों से घर लौट आया, रास्ते भर सोचता रहा कि मैं कितना स्वार्थी हूँ, कितना कर्त्तव्यहीन हूँ, कि आज सब कुछ जानते हुए भी शाश्वती को अपनी अनुपस्थिति में प्राण त्यागने के लिए उस केबिन में छोड़ आया हूँ जहाँ वह बेचारी दस तारीख की रात में अपना बेडरूम छोड़कर स्वास्थ्य लाभ के लिए लाई गई थी और तब से अब तक लड़खड़ाती साँसों में बेहोश पड़ी है। घर आकर सिर्फ एक कप दूध व रोज़ की तरह एक कम्पोज़ की गोली खाकर मैं सो गया। रात मे दो बजे मेरे सोने के कमरे में टेलीफोन की घण्टी टनटनाई, मेरे मकान के प्रत्येक कमरे में टेलीफोन का एक एक्सटेंशन लगा हुआ था। मैं जागकर उसके पास गया कुछ ही क्षणों में फोन की घण्टी बजना बन्द हो गई।

अनागता की चिन्ता से ग्रस्त मैंने भी रिसीवर हाथ में उठा लिया, कान मे लगाया, सुना, "अर्चना विवेक को समझा रही थी, आप मत रोइए, एक दिन सबको यों ही जाना पड़ेगा—आपने तो अपनी माताजी की जीतोड़ मेहनत के साथ लगातार सेवा की है। माताज़ी ने तो उत्तरायण सूर्य में प्राण त्यागे हैं, उन्हें सद्गति अवश्य

प्राप्त होगी। गीता मे भगवान श्रीकृष्ण ने स्वय इस रहस्य का उद्घाटन किया ह।

दूसरी ओर विवेक रोकर कह रहा था, "अभी पिताजी को सोने देना, उन्हें कुछ न बताना, नहीं तो दूसरी मुसीबत खड़ी हो जाएगी।" मेरी अन्तरात्मा ने सारी स्थिति मेरी आँखों के सामने स्पष्ट कर दी। मैं एक और गोली कम्पोज़ की खाकर अपने बेड पर धम्म से गिर गया। जाने कब नशे में सो गया। नई सहस्राब्दि की जनवरी पन्द्रह की मनहूस प्रातःकाल मुझे सदा अविस्मरणीय रहेगी। लगभग साढे पॉच बजे नर्सिंग होम की एम्बूलेन्स के स्टेचर से उतरकर विवेक मौर्या जी के साथ अपनी माता जी का शरीर, जिसे नर्सिंग होम वालों ने अपनी धनलोलुपता और निम्न चिकित्सकीय ज्ञान के कारण शव में परिवर्तित कर दिया था। ड्राइंग रूम के फर्श पर नई बेडशीट बिछाकर उत्तर-दक्खिन में सिर-पैर करके चिर विश्राम करने की मुद्रा में लिटा दिया।

मैंने आँसुओं से डबडबाई आँखों से अपनी सरस्वती को देखा, उनके पार्थिव शरीर को देखकर कहीं से उनके मर जाने के चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे। और न मेरा मन इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए तैयार हो रहा था। अपने स्वभाव के अनुसार मैंने उनके मस्तिष्क का देर तक स्पर्श किया, प्रकृति के जनवरी कालीन घोर शीत वातावरण के अनुरूप उनका जड़ शरीर भी गजब का ठण्डा पड़ चुका था।

उनकी बन्द आँखें जैसा वे अभी-अभी सोई हों चेहरे पर हमेशा की भाँति झलकने वाली अभूतपूर्व सरलता, शान्ति और वैचारिक स्थिरता मुखरित हो रही थी। अधखुले अधर उनकी हल्की मुस्कराहट की झलक दे रहे थे। मैं सोच रहा था कि अब इनकी ऑखें कभी नहीं खुलेंगी, कभी मुझे न देख सकेंगी, मैं उनको देखकर उनकी मनो-भावनाओं का अनुमान नहीं कर पाऊँगा। वे मुझे कुछ नया जीवन सन्देश नहीं देंगी। इन आँखों को मैंने नौ जनवरी रविवार को रात में साढ़े आठ बजे आखिरी बार इस विश्वासपूर्ण भावना से देखा था कि ये दस जनवरी की प्रातः खुलेंगी और मैं इन्हे देखकर कहूँगा लो मैडम—चाय पी लो, मैं अदरक पड़ी गर्म-गर्म चाय तुम्हारे लिए नए प्याले में लेकर देर से खड़ा हूँ। तब कौन जानता था कि मैं, अपनी ज्ञान गरिमा का ढोल पीटने वाले अन्य पतियों की भाँति अब अपना वैधुर्य प्रारम्भ करने जा रहा हूँ और इन खुली आँखों को दुबारा कभी नहीं देख पाऊँगा। नौ तारीख की साढे आठ बजे की रात और पन्द्रह तारीख की साढ़े पाँच बजे की प्रातः मुझे अब भी प्रसाद की इन पंक्तियों का बरबस स्मरण करा देती है—

मानव जीवन-वेदी पर, परिणय है विरह-मिलन का,

मेरे हृदय की मूक वेदना, मेरी आँखों के अदृश्य आँसू, मेरे दाम्पत्य के अदृश्य पन्ने मुझे जड़ीभूत करके आत्म चिन्तन से भी लगातार विरत कर रहे थे। गीता के द्वितीय अध्याय के श्लोक अन्तवन्त इमे देहा की पंक्ति अब मेरी समझ में आने लगी थी—मै

श्रीमती जी की ओर एक बार देख लेता और फिर एक बार मौन स्वर में कहता– "अन्तवन्त इमे देहा।"

मैं उठा, अलमारी खोली। जीवन-संघर्षों के बीच, पति-पत्नी का सदा साथ निभाने वाली गीता की पचास साल पुरानी अपनी पुस्तक उठा लाया, श्रीमती जी के दाहिने कन्धे का स्पर्श करता हुआ उनकी दाहिनी ओर फर्श पर बैठ गया, उन्हें छुआ फिर द्वितीय अध्याय का सस्वर पाठ करने लगा "देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारम् यौवन ज़रा, तथा देहान्तप्तिर्धीरस्तत्रन मुह्यति" यह श्लोक पढ़ते-पढ़ते इसकी अन्तिम पक्ति पर ठहरकर श्रीमतीजी के भावी जन्म के विषय में सोचने लग गया। आज पहली बार बिना किसी गुरुज्ञान के गीता का गूढ़ अर्थ सरलता से समझ में आ रहा था। कल तक की पत्नी और आज उनका शव आँसू भरी आँखों से मैं देख रहा था। सामने विवेक बैठा हुआ फोन द्वारा मेरे बड़े बेटे, मित्रों, सम्बन्धियों, हितैषियों और पड़ोसियों को सूचना दे रहा था कि माताजी की शव-यात्रा मेरे इन्दिरा नगर निवास से लगभग बारह बजे दोपहर में आरम्भ होकर 'वैकुण्ठ धाम भैसा कुण्ड' एक बजे तक शववाहन द्वारा पहुँचेगी–आप चाहे सीधे श्मशान आ जाइए, चाहे घर पर आ जाइए। गीता पाठ पूरा करके मैं मूक पशु की भाँति अपनी बलि के लिए तैयार पूर्णतया प्रभाहीन, लकड़ी की मूर्ति की तरह निश्चेष्ट बैठा यह सब नजारा देख रहा था। सूचना पाते ही स्थानीय महिलाएँ पारिवारिक महिलाओं के साथ शव को चारों ओर से घेर कर फर्श पर बैठ गईं, और श्रीमती जी की लम्बी बीमारी में उनके जीवन सघर्ष की चर्चा करने लगीं, दूसरी ओर मेरे मित्र पुराने निवास के पड़ोसी और शाश्वती के मुँह बोले पोते और नाती ओमप्रकाश व रामसहाय बॉस-फूस, सुतली कलावा आदि की सहायता से टिकटी तैयार करने लगे। अन्त्येष्टि के काम आने वाली समस्त सामग्री विवेक के सुहृद विकास नगर में इधर-उधर अपनी कार लगातार दौड़ा कर डेढ़ घण्टे में क्रय कर लाए, घर के अन्दर श्रीमती जी का स्नान, परिधान और शृंगार कराने में महिलाएँ व्यस्त थीं। मैं बाहर लान में बैठा अपने जीवन की टिकटी बनती देख रहा था। थोड़ी देर में महिलाओं ने मुझे अन्दर बुलाकर शाश्वती के मस्तक पर पॉचो अँगुलियों से सिन्दूर लगाने की विधि समझाई। मेरे लिए यह अत्यन्त हृदयद्रावक कार्य था। तथापि विचलित मनो-भावनाओं पर असफल अंकुश लगाकर मैंने श्रीमती जी के शीतल गौर वर्ण मस्तक पर सिन्दूर की पाँच मोटी-मोटी रेखाएँ अंकित कर दीं। इसी समय हस्तक्षेप करते हुए किसी लोकाचार-निष्णात महिला ने मुझसे कहा "मॉग के बीचोंबीच में अच्छी तरह सिन्दूर लगाइए, अपने हाथों से साड़ी पर हल्का-हल्का इत्र लगा दीजिए।" लोकाचार पर आधारित अनेक हृदय विदारक कार्यक्रम इस प्रकार मुझसे अनिच्छापूर्वक सम्पन्न कराए गए।

चौबीसवाँ अनुच्छेद

थोडी देर में मेरी जीवनसंगिनी, अब तक अपनी सूझबूझ से मझदार की शरारती लहरों से मेरी जीवन नौका को बचा लेने वाली मेरी शाश्वती, मेरी शारीरिक छाया की भाँति सदा अनुगमन करने वाली मेरी सरस्वती, आज सारे समाज के सामने मुझे इस सवेदन-शून्य संसार में शेष जीवन यात्रा पूरी करने के लिए अकेला छोड़कर अपनी अन्तिम यात्रा के लिए टिकटी पर लेटकर घर से बाहर चल निकलीं। मैंने अपना बायाँ कन्धा दिया दो पुत्रों और एक बड़े नाती गौरव ने मेरा साथ निभाया। वे लोग टिकटी को उठाए हुए राम राम सत्य है के पुराने मृत्यु घोष को दोहराते हुए हमेशा की तरह आज फिर चल पड़े।

कुछ रस्मी कदम चलने के बाद स्वर्ग-यान की छत पर शव को लिटाकर रस्सियों के मजबूत बाँधों द्वारा बाँध दिया गया। गोमती नगर होते हुए आधे घण्टे में वैकुण्ठ धाम पहुँच गए वहाँ शव को नीचे उतारकर एक पक्के प्लेटफॉर्म पर मुँह खोलकर रख दिया गया। पन्द्रह जनवरी का कठोर शीत, गोमती नदी का किनारा, तेज सरसराती हवा में वैकुण्ठ धाम में शव यात्रियों का मेला जैसा लगा हुआ था। लगभग तीस-बत्तीस शव और तीन हजार नगरवासी वहाँ पर खड़े अपने-अपने घिसे-पिटे ज्ञान का एक-दूसरे से बखान कर रहे थे।

वहाँ पर रखे हुए शवों की मृत्यु का कारण मुख्यतः शीतजन्य रोग बतलाया जा रहा था। जिसके विषय में पूछिए—खाँसी, ब्रांकाइटिस, अस्थमा, उच्च रक्तचाप शीत ज्वर का शिकार होकर यमराज की कृपा से यहाँ बेवक्त आ गया था। चालीस वर्ष की आयु से लेकर अस्सी वर्ष की आयु तक के मृतकों के शव क्यू बनाए अपनी मुखाग्नि की प्रतीक्षा में चार-पाँच बड़े टिन शेडों के नीचे पंक्तिबद्ध मोटी-मोटी लकडियों के ऊपर रखे हुए दिखलाई पड़ रहे थे। उनके कन्धे की तरफ मोटी लकड़ियाँ ओर पैरो की तरफ अपेक्षाकृत पतली लकड़ियाँ रखी हुई थीं। सूखे फूस को जलाकर शव की परिक्रमा कर चुके पति, पुत्र, पौत्र या नाती मुखाग्नि दे रहे थे। कोई घी डाल रहा था तो कोई राल और हवन सामग्री। बिल्कुल सामूहिक यज्ञ जैसा परिदृश्य दिखलाई पड रहा था। सामने की एक सफेद चूने से पुती दीवाल पर लिखा था—''जब तक परिवार जन शव की अन्त्येष्टि नहीं कर देते, जीवात्मा अपने शव के आसपास मँडराया करता है--श्री राम शर्मा'' बड़े-बड़े लाल रंग के अक्षरों में दृष्टिगोचर हो रहा था।

मैंने इस उद्धरण को सरसरी तौर से पढ़ा पर मुझे जीवात्मा का मृतक के शव के आसपास चक्कर लगाने की बात बोधगम्य नहीं हुई। शरीर से प्राण निकल गए, वायुमण्डल में अदृश्य हो गए। चेतन शक्ति दीपक की लौ की भाँति निकलकर महाचेतन

में विलुप्त हो गई। अन्य शरीर प्राप्त होते ही जीवात्मा की पृथक् संज्ञा समाप्त हो जाती है। कठोपनिषद् में यमराज ने नचिकेता को यही तो समझाया है कि हृदय के अंगुष्ठ मात्र गह्वर से सुषुम्ना नाड़ी द्वारा प्राण निकलकर ब्रह्म-रन्ध्र के माध्यम से शरीर के बाहर निकल जाते हैं। लोकाचार की भाषा में लोगों को यह कहते सुना गया है कि मुख, नेत्र, नासिका अथवा अपान वायु द्वारा प्राण निकल गए, पर ऐसा होते स्पष्ट दिखलाई नहीं पड़ता। कुछ पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने अपने शोध द्वारा शरीर से प्राण निकल जाने पर शरीर के वजन में कुछ कमी हो जाने की बात स्वीकारी है।

मैंने शाश्वती को उसकी मृत्यु के अन्तिम क्षणों में नहीं देखा इसलिए मै विश्वसनीय रूप से नहीं कह सकता कि उसके प्राण किस प्रकार उड़ गए ? विवेक कहता था कि माताजी को एक हल्की-सी हुचकी आई, सिर हिला और उनके प्राण निकल गए।

मेरे दोनों बेटे और उनके मित्रों ने शव को छोटे चबूतरे से उठाकर बड़े टिन शेड के नीचे बने एक पक्के प्लेटफॉर्म पर व्यवस्थित ढंग से रखी मोटी-मोटी लकडियों पर लिटा दिया। दोनों ओर बड़ी-बड़ी मोटी लकड़ियों से ढककर महाब्राह्मण या चण्डाल के पेशेवर निर्देशन में मैंने सिर के बाल मुँडवा घाट पर लगे हैण्डपम्प के जल मे स्नानकर नई धोती-कुर्ता पहनकर शव की परिक्रमा की और अपने हाथों अपनी जीवन-संगिनी के सिर पर आग लगा दी। यह सारा कठिन कार्य यन्त्रवत् हुआ। शव ने आग पकड़ी, घी और हवन सामग्री बार-बार डालते रहने से तेज हवा में आग पूरी तरह प्रज्वलित हो गई। आधा घण्टे प्रतीक्षारत रहने के बाद कपाल क्रिया कराई गई, ताकि ब्रह्मरन्ध्र में रुकी वायु पूरी तरह से बाहर निकल जाए।

फिर अपने जीवन यात्रा की सतरंगी बाजी हार कर, विधुर शब्द की तिरस्कृत उपाधि से विभूषित होकर मैं अविवेकी व्यक्ति धोबी के कुत्ते की तरह अपने घर लौट आया। दुबारा स्नान और वस्त्र-परिवर्तन करके फर्श पर हल्का बिस्तर डालकर दस दिन लगातार श्रीमती जी की भाँति स्वयं लेटता रहा और शव रखे जाने के स्थान पर अर्चना प्रत्येक सायं दीपक जलाती रही, पड़ोस के पीपल की डाल से लटके दो मिट्‌टी के घड़ों में से एक के अन्दर दीपक जलता और दूसरे में जल डालता, हालाँकि उसके पेंदे में किए गए सुराख में कपड़े की एक बत्ती लगी हुई थी। जिससे पानी टपक-टपककर बाहर निकलता रहता था। बस दसवें दिन महाब्राह्मण को शैया-दान, वस्त्र-दान पत्नी की मनोवांछित वस्तुओं का दान, धन दान आदि देकर विदा कर दिया गया। तेरहवें दिन सम्बन्धियों और मित्रजनों को परम्परागत भोजन कराकर इस अपवित्र दुनिया में मैं पवित्र घोषित कर दिया गया।

कितनी विस्मयपूर्ण परम्परा समाज ने बना डाली ? एक तो मृतक के चिकित्सा-व्यय

से धनहीन, दूसरे अन्त्येष्टि मे मरघट पर अनावश्यक परव्यय, तीसरे घर आकर दशगात्र और त्रयोदश-संस्कार का रूढ़िवादी आयोजन और मित्रजनों को भोजन। मैं यह कहना भूल गया था कि श्मशान भूमि से अपनी माँ की चिता-स्थल पर बची हुई अस्थियॉ, जिन्हें फूल की संज्ञा से समाज द्वारा समादृत किया जाता है दोनों बेटे चुन लाए और एक प्लास्टिक के थैले में मेरे कहने पर घर की बाहरी वाटिका में सुरक्षित रख दिया। मैंने देखा कि शाश्वती के हाथों की कलाई में हमेशा पड़ी रहने वाली सोने के पत्थर की जगमगाती चूड़ियाँ जल भुन कर काली और टेढ़ी-मेढ़ी हो गई थीं। छोटी-छोटी अस्थियाँ अब उसके सुन्दर लम्बे शरीर की भग्नावशेष रह गई थीं। मैं सोचने लगा कि आज का विज्ञान-विशारद मानव अपने शरीर की अन्तिम परिणति के इस कारुणिक दृश्य से सारे जीवन बेखबर क्यों बना रहता है ? जिस व्यक्तिगत सौन्दर्य के मन-मोहक स्वास्थ्य से अपने जीवन-काल में नारी देह-यष्टि सदा पुरुषों का आकर्षण बिन्दु बनी रही है, जो घर-परिवार के मजबूत ढाँचे को संगठित रखने में सदा नींव का पत्थर बनी रहती है और पतियों के जीवन काल के अगणित संघर्षो के बीच उसका सम्बल, उसकी जीवन-ऊष्मा बनकर उसे कर्तव्य-बोध कराती रहती है वह कवियों की कोमल कल्पना, चित्रकारों की रंगीन तूलिका, मूर्तिकारों की प्राणदायिनी छेनी, आज एक छोटे से प्लास्टिक के थैले में मुट्ठी भर अस्थियों की राख के रूप में रूपान्तरित होकर मेरी सूनी आँखों के सामने अपने विगत यौवन और सौन्दर्य, प्रेम और वियोग, ऑसू और मुसकान की अकथ कहानी कह रही है। यही नहीं, वह पतियों के गर्व-ग्रस्त पौरुष की बखिया भी उधेड़ रही है। मैं क्षण भर के लिए किसी गहरे अँधेरे कुएँ की गहराई में गिर पड़ा, मेरा मस्तिष्क संज्ञा-शून्य होकर मानव-जीवन की कौतुक-पूर्ण वास्तविकता की इस शून्यीकृत स्थिति में कहीं अदृश्य हो गया। मेरी रिक्त ऑखो से दो गर्म-गर्म आँसू न जाने कब बाहर लुढ़ककर शाश्वती के भग्नावशिष्ट इन अस्थि फूलों पर टपक पड़े।

न जाने किस मनहूस घड़ी से चण्डाल महाब्राह्मण और पण्डे शब्दों की उत्पत्ति हुई है, जो मृत्यु का समाजीकरण करने में मनमानी भूमिका निभाते चले आ रहे हैं ? "यह करो, फिर यह करो, फिर यह करो, इसको भोजन दो, उसको ये दान करो" की रट लगाते हुए अपने प्रियजन की मृत्यु से दुःखी व्यक्ति का शारीरिक मानसिक और आर्थिक शोषण करने से बाज नहीं आते। इन लोगों की समाज विरोधी और नैतिकता विरोधी क्रियाओं पर अंकुश क्यों नहीं लगाया जाता ? प्रश्न है कि पहल कौन करे ? सच्चाई तो यह है कि मृत्यु से पूर्व महँगी हो रही चिकित्सा-व्यय से त्रस्त, अन्त्येष्टि के सैकड़ों पचड़ों में दौड़ता भागता, पैसे लुटाता दशगात्र और त्रयोदशी संस्कार के बढ़ते आयोजन-व्यय से अस्त-व्यस्त व्यक्ति का खून चूसने से धर्म के ठेकेदार बाज़ नहीं आते। आज हरेक गरीब, साधनहीन और मुफलिस व्यक्ति अपने प्रियजन

की मृत्यु के बाद धर्म के नाम पर किए जाने वाले मूर्खतापूर्ण कार्य-कलापो के कारण शारीरिक रूप से मृतप्राय और आर्थिक रूप से ऋणग्रस्त हो जाता है। क्या हिन्दू समाज में चल रही इस कुप्रथा के विरोध में विश्व हिन्दू परिषद अथवा प्रभावी पत्रकारो द्वारा कोई बुलन्द स्वर उठाया जाएगा ? मैं वैदिक धर्म का निष्ठावान अनुयायी हूँ और हर कदम पर रूढ़िवादिता और अन्ध-विश्वास के विरोध में अपनी आवाज़ बुलन्द की है, कार्य किया है पर मेरी मैडम की दुःखद मृत्यु के समय से सुप्रसिद्ध साहित्यकार और मेरे वयोवृद्ध चाचा आचार्य श्री अवध प्रसाद वाजपेयी के आग्रह को स्वीकार करके समाज के मूर्ख ठेकेदारों के आगे अन्ततः मुझे भी नतमस्तक हो जाना पडा।

पच्चीसवाँ अनुच्छेद

अविवेकपूर्ण धार्मिक अनुष्ठानों, जातीय परम्पराओं और सामाजिक भोज के दायित्व से मुक्त होकर मैंने शाश्वती का एक बड़ा फोटोग्राफ बनवाकर अपने बेडरूम की दीवाल पर टाँग दिया। ताकि मुझे अपने दिन प्रतिदिन की जीवन-चर्या में उनका शारीरिक अभाव दुःखानुभूति उत्पन्न न कर सके।

मैं जब-जब अपने बेडरूम में अकेला होता तो श्रीमती जी का नीली चिकन की साड़ी पहना हुआ चित्र, जिसके मस्तक पर बड़ी लाल चन्द्राकार बिन्दी चमकती थी, देख लेता ऐसे कि मुझे परिवार का कोई अन्य सदस्य न देख सके फिर स्वगत कथन में कहने लगता, शाश्वती तुम मुझे इस आयु में जब मुझे तुम्हारे साहचर्य की सर्वाधिक आवश्यकता आ पड़ी थी, इस प्रकार असमय मेरा साथ छोड़कर मुझसे रूठकर क्यों स्वर्ग-गामिनी हो गईं ? तुमने तो वचन दिया था कि अभी सन् 2002 तक तुम जैसे-तैसे मेरा साथ निभाओगी और जो कुछ मैं पढ़ना-लिखना चाहता था, उस कार्य में अपना मानसिक सहयोग प्रदान करोगी। तुम्हारे ही सहयोग से मेरा उपन्यास 'अबला आज की' इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर सका। बोलो ? तुम विश्वास-घातिनी पत्नी के रूप में फोटो-फ्रेम के अन्दर छिपी बैठी अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से निष्क्रिय होकर मुझे क्यों देख रही हो ? तुम्हारे गोरे मथ्थे पर तुम्हारी प्रिय लाल रंग की बिन्दी आज भी उसी प्रकार से क्यों चमक रही है, आकर्षक दिख रही है, जैसे वह तुम्हारे जीवनकाल में मुझे क्या परिवार के हरेक सदस्य को सुन्दर लगती थी। अब तुम चुपचाप मुझे क्यों देखती रहती हो ? बोलती क्यों नहीं? क्या तुम्हारे निर्गत प्राण इसी शयन-कक्ष में, मेरे आस-पास कहीं विद्यमान तो नहीं हैं ? तुम्हारी मैंने बूढ़े तन, थके मन और

चुके-धन से अहर्निश कितनी सेवा की है ? तुम्हें कितनी घनिष्ठ आत्मीयता प्रदान की है ? फिर भी तुम मेरी ओर से आँखें फेर कर बिना कुछ बतलाए अपने बेटे को लेकर हमेशा के लिए मुझे एकाकी छोड़कर मेरे सो जाने पर बिना सूचित किए नीरा नर्सिंग होम चली गई। मैं यह तो नहीं सोच सकता कि तुमने प्रवंचनापूर्ण दाम्पत्य का यह कृत्य जानबूझकर किया होगा। हाँ, अलबत्ता अपने दमा-रोग से कुछ बोल सकने में असमर्थ होकर ऐसा निर्णय किया होगा। केवल चार दिन वहाँ रहकर और अपने जीवन की शेष साँसें पूरी कर वहाँ से सीधे स्वर्ग लोक को प्रस्थान कर गई। मुझे अनिर्वचनीय सुख की अनुभूति होती यदि तुम्हारा कृशगात शरीर अपनी रुग्ण अवस्था में मेरी अंक-शय्या में लेटे-लेटे अपनी ज्योति-किरण विसर्जित करता।

क्या अन्तिम विदाई से पूर्व तुम्हें मुझे कुछ अन्तिम जीवन सन्देश नहीं देना चाहिए कि मैं तुम्हारे अभाव में अपना नीरस जीवन किस प्रकार व्यतीत करूँगा ? क्या मैं यह समझूँ कि तुमने अपने प्रिय पुत्र की ममताभरी सहमति से एकपक्षीय निर्णय लेकर मेरा सान्निध्य हमेशा के लिए त्याग दिया है ?

अब तुम स्वयं बतलाओ मेरे इस प्रकार के एकाकी और शुष्क जीवन में कोन सा आकर्षण, कौन सी आशाएँ, कौन सी कामना और कौन सी साधना शेष रह गई है जो मुझे आने वाली प्रातः की प्रतीक्षा करने का सम्बल प्रदान कर सके ? पढने-लिखने के अतिरिक्त मैं सारे दिन प्राणी-उद्यान के किसी मूक-पशु की भाँति दाना-पानी लेकर अपने पेट के लिए निरुद्देश्य पड़ा रहता हूँ। अब मेरा वह असीम ससार तुम्हारे अभाव में सिमटकर मेरे सूने अध्ययन कक्ष में केन्द्रित हो गया है। परिवार जन मुझे धीरे-धीरे भूलने लगे हैं। वे अपने-अपने क्रिया-कलापों में मस्त और व्यस्त रहते हैं। अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग अलापते रहते हैं। अब तुम मेरी एक बात सुनो। मैं प्रातःकाल पाँच बजे उठकर तुम्हारे संस्मरण लिखकर अपनी दिनचर्या प्रारम्भ करता हूँ। अपने में अपने आप सन्तुष्ट हो अर्थात् 'आत्मनि एव आत्मना तुष्टः' का प्रारम्भिक अभ्यास करता हूँ। एकान्त सेवन और मौन-धारणा—बस यही मेरी परिणति हो गई है। इन्हीं क्षणों में मेरी पौत्री सौम्या पीछे से आकर मेरा हाथ पकड़कर पूछती है बाबा आप दादी के कमरे में खड़े किससे बातें कर रहे थे ? यहाँ तो कोई भी नहीं है ? बतलाइए न आप किससे जोर-जोर से बोल रहे थे ?

"किसी से नहीं, सौम्या मैं तुम्हारी दादी जी का दीवाल पर टँगा फोटो देख रहा था। चलो तुम्हें स्कूल भेज आएँ—आज तुम्हें देर हो गई है।"

यह कहकर मैं अपने किसी सुखद दिवास्वप्न के भंग हो जाने पर दुःखी होता हुआ उसके साथ कमरे के बाहर निकल आया।

इस प्रकार की प्रलाप-पूर्ण आवृत्तियाँ दिन में कई बार अनजाने में घटित हो जाती हैं। मुझे आस्था के ठोस धरातल पर यह विश्वास नहीं हो रहा है कि तुम

इस दृश्यमान ससार मे विद्यमान नही हो और कही मुझसे पृथक् चली गई हो ? मै यह बात, चलो मानने को तैयार हूँ कि तुम मेरे मानसिक उद्वेगों का, शारीरिक क्रियाओ का और सामाजिक गतिविधियों का गुप्त रूप से जायज़ा लेती रहती हो। जब मै दीवाल पर लगे तुम्हारे बड़े चित्र पर दृष्टिपात करता हूँ तो कभी-कभी अपने आपको दोषी अनुभव करने लगता हूँ और तुरन्त अपराध-बोध की भावना से संत्रस्त हो उठता हूँ। मैं और भी अपने को दोषी समझता हूँ कि पौत्री सौम्या के बार-बार कहने के बावजूद आज तक मैसूरी चन्दन की माला लाकर तुम्हारे चित्र को यानी तुम्हें पहना नहीं सका। पता नहीं कि यह बात मेरी समझ में क्यों नहीं आ रही है कि मृतको के चित्रों को सांसारिकता का निर्वाह करने के लिए परिवारजन माला क्यों पहना देते हैं—जब उनके जीवन की घोर रुग्णावस्था में वे लोग उनके पास जाना या बैठना भी पसन्द नहीं करते थे ? हर वर्ष के अखबार में मृत्यु की तारीख पर मृतक का छोटा सा फोटो छपवाकर उसके नीचे स्मृति स्वरूप दो पंक्तियों को लिखकर अपना-अपना नाम छपवा कर मृतक के स्मरण की इतिश्री कर देते हैं और वर्ष के तीन सौ चौसठ दिन उसके चित्र की ओर अपनी आँख भी नहीं फेरते। इसी सामाजिक यथार्थता का अप्रिय परिदृश्य मुझे अपने परिवार जनों के मध्य भी दिखने लगा है। तुम्हारे पुत्रों या उनकी पत्नियों को कभी आँख उठाकर तुम्हारे चित्र की ओर निहारने का समय ही नहीं मिला, शायद ऐसा कर लेने से उन्हें ब्रांकाइटिस का रोग छू न जाए।

तुम स्वयं बड़ी सोच-समझ के साथ मूल्यांकन और चयन-प्रक्रिया पूरी करके अपनी दोनों पुत्रवधुओं को इस घर में ले आई थीं। कितनी खुश थीं तुम! तुम समझती थीं कि अपने बेटों के लिए धरती का स्वर्ग खोज लिया है। अब तुम्हें व तुम्हारे दोनो बेटों को सुख-सेवा, सहयोग, सान्निध्य और सत्कार की सुविधा सदा सुलभ रहा करेगी।

यदि कभी-कभी मैंने उन बहुओं के अप्रिय कार्यकलापों पर दो शब्द कहने के लिए परिस्थिति-वश अपना मुँह खोलना चाहा तो तुमने ऐसा करने से मुझे तत्काल मना कर दिया, उल्टे यह भी समझा दिया कि तुम क्या जानो आजकल की आधुनिक पुत्र-वधुएँ किस प्रकार की नई प्लास्टिक की बनी हुई हैं? जिस दिन वे पति के घर में पदार्पण करती हैं, उसके दूसरे दिन से ही अपना चूल्हा-चौका अलग कर लेना चाहती हैं। सास-ससुर, ननद-देवर, सभी को अपना ठेंगा दिखा देती हैं, पति को माता-पिता का घर छोड़ देने के लिए राजी कर के नगर की किसी नई कालोनी मे अपना नया घर बसा लेती हैं। यदि इस कार्य में परिवार के किसी सदस्य ने विघ्न खड़ा कर दिया तो उसके विरुद्ध मिथ्या आरोप लगाकर उसे समाज में कलंकित कर देती हैं।

मेरी बहुएँ तो लाखों में एक हैं। आज्ञापालक, आदर-सत्कार, शिष्टाचार, घर-गृहस्थी का संचालन, सिलाई-कढ़ाई, गीत-संगीत, प्रेम, सेवा और त्याग के क्षेत्र

मे वे नम्बर वन है। तुम्हारी वाणी के स्वरो की स्पष्टता आँक कर सब कुछ जानते हुए भी मैं अपने ओंठ सिले रहता था।

फिर तुम आगे बढ़कर कहने लगतीं, आजकल की अमरीकी स्टाइल की बहुएँ तो अपने जेठ और ससुर पर यह भी आरोप लगा देती हैं कि वे उन पर अपनी कुदृष्टि डालते हैं, जिससे उनके साथ वे एक दिन भी नहीं रह सकतीं।

यह सुनकर मैं कचहरी में हारे हुए मुवक्किल की भाँति अपने हथियार तुम्हारी अदालत में डाल देता, दुबारा अपनी मैडम के सुन्दर चित्र की ओर देखकर पूछने लगा।

क्या तुम्हें यह पता है कि जब नीरा नर्सिंग होम की आई.सी.यू. केबिन मे अर्धचेतन अवस्था में पड़ी कम्बल ओढे आक्सीजन के मास्क लगे मुँह से खड़खड़ाहट के साथ साँस लेती हुई तुमको पास पड़ी कुर्सी पर बैठी बड़ी बहू जब देखा करती, तो वह कितनी संवेदना-शून्य होकर अपरिचित निगाहों से अपनी अन्यमनस्कता व्यक्त करती। शायद उसके मन में निरन्तर यह भ्रम वर्तमान रहता कि तुमने उसके साथ सम्पत्ति-वितरण में जो असमानता बरती थी, उसी अपने अन्याय का दण्ड तुम भोग रही हो।

ऐसा सोचने, कहने और सिद्ध करने के मेरे पास अनेक दृष्टान्त हैं ? डा. सिह आकर अपने हाथों से पकड़कर तुम्हें करवट बदला जाते थे और उसे स्वयं दिन मे दो-तीन बार ऐसा करने को निर्दिष्ट कर जाते थे पर सारे दिन वह अपने ऊपर थोपी हुई इस अप्रिय ड्यूटी के दौरान कभी डा. सिंह के निर्देशों का पालन नहीं करती। यह उसकी अवज्ञापूर्ण परिचर्या एक उदाहरण है जबकि तुम उसे सर्वगुण सम्पन्न कह कर बहूरानी सम्बोधित करती रहीं।

पाँच दिनों की अचेतन अवस्था में आई.सी.यू. में भरती रहकर अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा करती रहीं। बेचारा विवेक तुम्हारे पास बार-बार आता जाता, डाक्टरो से विचार-विमर्श करता, महँगी-महँगी दवाइयाँ और इन्जेक्शन अपने पैसों से रोज खरीद कर लाता, अपने सहयोगियों से अपनी मनोव्यथा प्रकट करता, पर तुम्हारी कनिष्ठ वधू अर्चना घर पर ही रहकर अपने दूरभाष द्वारा सारे क्रिया-कलापों का किसी तानाशाह की तरह दैनिक संचालन करती रहती पर उसके चेहरे पर दुश्चिन्ता अथवा विषाद की एक धूमिल रेखा भी किसी को दृष्टिगोचर नहीं होती।

घर में आए रिश्तेदारों की देखरेख करने और विवेक को यथोचित निर्देश देते रहने को ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझती। जरा तुम अपने आप मेरी उन व्यथित भावनाओं के विषय में सोचो जो मेरे मन में उस समय उठतीं जब दिन भर का थका, हारे मैच के खिलाड़ी की भाँति मैं नीरा नर्सिंग होम से घर लौटता तो मुझे वहाँ हमेशा प्रवेश-द्वार पर ताला बन्द मिलता, क्योंकि अर्चना अपनी पास-पड़ोस की

सहेलियो अथवा ननद के घर आनन्द से बेठी गपशप करती अथवा अपनी दिनचर्या और कर्तव्य-परायणता का स्वयं गुणगान करती। मुझे कई बार उसे खोजना पडता कि वे कहाँ, किसके घर में विराजमान हैं, ठीक पता न लग पाने पर दो-तीन बार पड़ोसियों के घर बैठकर चाय पीनी पड़ती और अपने घर के द्वार खुलने की प्रतीक्षा करनी पड़ती। कभी-कभी दैव योग से जब मैं उसे खोज लेता तो तत्काल मुझे वह घर की चाभियों का वजनदार गुच्छा पकड़ाकर वहीं बैठी रहती। मैं गेट का ताला खोलकर तुम्हारे बेडरूम में भूखा-प्यासा थकाहारा आँखें बन्द किए लेटा रहता और यह सोचता कि सत्तावन वर्षीय दाम्पत्य के घटनापूर्ण इतिहास में मेरे साथ कभी भी ऐसी घटना घटित नहीं हुई जब कि मैं बाहर से घर लौटा और तुम घर पर विराजमान न होकर आसपास किसी पड़ोसी के घर बैठी बतिया रही हों और मेरे घर के द्वार पर तालेखाँ मेरा स्वागत कर रहे हों। तुम्हारी बीमारी के दिनों में मेरा खाना कभी तो छोटी बेटी ज्योत्स्ना के घर से ले आती तो कभी किसी पड़ोस की सहेली के घर से ले आती। रात में बिना खाना बनाए घर में आराम से सोती और टेलीफोन पर नर्सिंग होम से मिली तुम्हारी बीमारी की दशा की सूचना प्रायः मुझसे शायद इसलिए गुप्त रखती कि उसे सुनकर मैं घबड़ा न जाऊँ, जब तुम स्वयं जानती हो कि मे सारे जीवन मुसीबतों को झेलते-झेलते कठोर हृदय का ठूँठ सरीखा एक व्यक्ति बन चुका था। मुझे उसकी टेलीफोन पर होती बातों से हकीकत का पता चल जाता—मेरी आत्मा तुम्हारी क्रमागत मृत्यु का पूर्वाभास करती रहती। मैं अपने मन में सोचने लगता—मेरी दुनिया लुट रही थी और मैं खड़ा खामोश था। मेरी मानसिक स्थिति उस समय सहसा उग्रतापूर्ण हो उठती जब मुझे घर लौटने पर बार-बार ताला बन्द मिलता। मेरे मन ने बार-बार बगावत करनी चाही कि मैं घर के दरवाजों को लात मार कर कहीं अन्यत्र प्रस्थान कर जाऊँ। पर तुम्हारे मृत्युपूर्व दिया गया परामर्श, 'मुझे अपने जीवन के शेष दिन इसी कैद खाने में काटने हैं' याद करके अपना मन मसोसकर रह जाता। मेरी इस तिरस्कृत मनोदशा की एकमात्र जिम्मेदार तुम स्वय हो। मेरे बचपन में मेरी तीन वर्ष की अवस्था में मेरी माँ भगवान को प्यारी हो गई। कुछ ही महीनों के बाद मेरे पिता अपनी नई पत्नी ले आए और मुझे अपनी नई माँ का दूध पीने का निर्देश दिया, पर मैंने ऐसा नहीं किया। मेरी विमाता न जाने किस कारण मुझे एक कहावत सुनाया करती 'न बारे की माँ मरे, न बूढ़े की जोय', तब मैं एक अबोध बालक इस मार्मिक लोकोक्ति का गूढ़ार्थ कैसे समझ सकता था ? पर आज मैं इस प्रचलित जनोक्ति के पीछे छिपे हुए विचार के महासागर का विकराल रूप अपनी वृद्ध और मन्ददृष्टि वाली आँखों से स्वयं देख रहा हूँ। जिस वृद्ध व्यक्ति की पत्नी अपने पति को इस दुनिया में अकेला छोड़कर गोलोकवासी हो गई, उसका पति इस दुनिया में ही रौरव नरक के किसी डरावने कोने में अपने चारों ओर फैली

आग की लपटों में धड़ाम से गिर पड़ता है।

'बारे की माँ मुझे तीन वर्ष की आयु में छोड़कर चली गई थी और बूढ़े की जोय' मुझे पचहत्तर वर्ष की असहाय अवस्था में अपनी क्रमागत मृत्यु के द्वारा बहुत खामोशी से छोड़कर उक्त कहावत को सार्थक कर गई। मेरा आशय केवल इतना है कि यह पूरी कहावत मेरे जीवन पर पूरी-पूरी चरितार्थ होती है। अब मुझे जगत्गुरु स्वामी शंकराचार्य द्वारा कही कुछ बातें रात-दिन याद आ रही हैं।

'वार्ता पृच्छति कोऽपिन गेहे' घर में कोई बात करना भी पसन्द नहीं करता। वृद्धोथति गृहीत्वा दण्डम्—बूढ़ा छड़ी पकड़कर अपनी पेंशन लेने अकेला जा रहा है। चाहे नए घर के लोग हों, चाहे पुराने घर के लोग हों। कहीं भी कोई पारिवारिक सदस्य मुझसे एक शब्द भी बोलना नहीं चाहता, मैं सोचने लगता कि मैंने उन लोगो का क्या बिगाड़ दिया है जो वे मुझसे अब बात करना भी पसन्द नहीं करते ? कभी-कभी यह विचार अवश्य मेरे मन में उदय हो जाता है कि यदि मेरी श्रीमती जी मेरी सम्पत्ति का वितरण अपने जीवन काल में ही न करा जाती तो शायद मेरी वर्तमान स्थिति इतनी विषम न हो पाती।

छब्बीसवाँ अनुच्छेद

वही मैं, वही घर, वही परिवेश पर तुम्हारे बिना सब कुछ बदला-बदला। प्रातःकाल जग जाता हूँ, जागते ही डाटपेन और रजिस्टर लेकर बैठ जाता हूँ, दस-बीस पन्ने विक्षिप्तों की भाषा में प्रतिदिन लिख डालता हूँ। प्राची के आकाश में ऊपर उठता सूर्य मेरे ड्राइंग रूम की बड़ी खिड़कियों से मेरे ऊपर अपनी प्रखर किरणें विकीर्ण करके मुझे कुछ याद दिलाता है, तो मैं अपना पेन और रजिस्टर अपने ब्रीफकेस में बन्द करके खुले आकाश के नीचे संक्षिप्त शारीरिक व्यायाम करने लग जाता हूँ और अपनी पाशविक क्रियाओं से मुक्त हो दूध की बनी दो कप चाय के साथ पार्ले जी ग्लूकोज के चार बिस्कुट खाकर दैनिक जागरण, सहारा और टाइम्स आफ इंडिया के सम्पादकीय स्तम्भ पढ़ता और साथ ही साथ दीवाल पर टँगी श्रीमती जी की तस्वीर देखते हुए अपने अतीत और वर्तमान के दो स्तम्भ बनाकर उनके ऊपर यथार्थ का एक छोटा सा सेतु निर्माण करने का प्रयास करता हूँ, पर वे दोनों स्तम्भ गलत बने होने के कारण आपस में एक-दूसरे से जुड़ नहीं पाते। अधबने सेतु से मेरी जीवनयात्रा कैसे पूरी हो सकती है ? शाश्वती की दीवाल पर टँगे फोटो की तरह मेरी जिन्दगी

भी उन दोनो स्तम्भो पर टगी रह जाती है।

कभी जीवन की मन-उबाऊ परिस्थितियाँ मुझे इस प्रकार धराशायी कर देती हैं कि मैं आँखें बन्द करके चुपचाप अपनी शय्या पर लेट जाता हूँ और घण्टों लकडी के सूखे लट्ठे की तरह एक ही स्थिति में निष्प्राण पड़ा रहता हूँ। कभी-कभी घर से बाहर श्रीमती जी की भूतपूर्व छड़ी पकड़कर निकल पड़ता हूँ और पड़ोस में बसे, सेवा निवृत्ति के बाद अपना शान्त-एकान्त जीवन बिता रहे कुमायूँनी भाषा के वरद कवि श्री गोविन्द बल्लभ पंत के घर पहुँच जाता हूँ। कालबेल सुनते ही तुरन्त गेट खोलकर मेरा स्वागत करने आ जाते हैं। उनके ड्राइंग रूम में बैठकर उनके शिक्षा निदेशक रहने के दिनों के उनके बड़े-बड़े तैल-चित्रों को ध्यान से देखने लगता हूँ और फिर अकस्मात सोचने लगता हूँ कि मेरे सामने बैठा व्यक्ति वह कदापि नही हो सकता जो इन तैल चित्रों में दर्शाया गया है।

कभी-कभी ज्ञानपीठ और यशभारती पुरस्कार प्राप्त और 'रागदरबारी' तथा 'विश्रामपुर का सन्त' के अद्वितीय व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल के घर जाकर वहाँ कुछ देर बैठ उनके पत्नी-विहीन जीवन से अपनी वर्तमान जिन्दगी की अविवेकपूर्ण तुलना करने लग जाता हूँ।

मैंने अपने बचपन के सेवाकाल के और उसके बाद के भी कुछ ऐसे दोस्तों की एक मानसिक सूची बना डाली है जो मेरी तरह से इस समय पत्नी-विहीन जिन्दगी बिता रहे हैं। सभी की दशा कहानियों और उपन्यासों में सविस्तार लिखी जाने योग्य तो नहीं है पर उनके कुछ रोचक प्रकरण अन्य विधुरों के द्वारा कहे और सुने जाने योग्य अवश्य हैं। एक मेरे मित्र कर्नल भटनागर जो प्रातःकाल मेरे साथ कभी-कभी 'स्वर्ण जयंती स्मृति विहार' में टहलने आते हैं अक्सर बतलाते हैं कि उनके बेड के बाएँ सिरहाने उनकी दिवंगत पत्नी का माल्यार्पित चित्र तकिया के सहारे हमेशा खडा रहता है। मैंने उस सुन्दर चित्र को स्वयं अपनी आँखों से देखा भी है। वे प्रतिदिन शयन-कक्ष में प्रवेश करते ही इण्टीमेण्ट की दो अगरबत्तियाँ सुलगाकर अपनी पत्नी के चित्र के पास की अलमारी में रख देते हैं और ताजे फूलों की माला पहनाकर पुराने फूलों की माला हटा देते हैं। लेटने से पूर्व कर्नल साहब अपनी पत्नी के चित्र से प्रश्न करते हैं यदि तुम्हें एतराज न हो तो मैं अब तुम्हारे बेड पर लेट जाऊँ।

एक मेरे दूसरे मित्र कमलाकान्त दीक्षित जो लखनऊ विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के सेवानिवृत्त रीडर हैं मेरी तरह पत्नी विहीन हैं। वे कहते हैं कि जिस कमरे में उनकी पत्नी का शयन-कक्ष था, उस कमरे में वे कभी पदार्पण भी नहीं करते उसमें सोने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अलबत्ता प्रति सप्ताह पत्नी के बेड पर पडी चादर अवश्य बदल दी जाती है और होली और दिवाली की रात में वे अपने हाथो से गुलाब की बनी एक सुन्दर माला पत्नी के लेटने के स्थान पर लम्बी-लम्बी रख

आते है और हाथ जोड़कर कहते है कि हमेशा की तरह तुम अब भी मेरे नैतिक आचरण की रक्षा करती रहना।

तीसरे मेरे मित्र एक ऐसे विधुर हैं जो जिलाधिकारी पद से सेवानिवृत्त होकर मेरे पड़ोस में विकास नगर में नई कोठी बनवाकर रह रहे हैं। उनकी कवयित्री पत्नी का निधन उनके सेवा काल में ही इलाहाबाद में हो गया था। उन्होंने जयपुर के एक ख्यातिप्राप्त मूर्तिकार से अपनी दिवंगत पत्नी की संगमरमर की एक आदमकद मूर्ति बनवाकर उसे अपने उपासना कक्ष में, जहाँ उनके उपास्य देवता भी साथ-साथ वर्तमान रहते हैं—स्थापित कर दी है। मूर्ति वास्तव में भव्य है, दर्शनीय है, पत्नी के मूल चित्र से शतप्रतिशत सादृश्य रखती है। उस मूर्ति के आगे हर समय बिजली की आरती जगमगाया करती है। इष्टदेव की उपासना से निवृत्त होकर वे अपनी स्वर्गीया धर्मपत्नी की प्रशंसा में स्वरचित पत्नी-स्तोत्र का पाठ करते हैं। आपको यह सुनकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि वे अपनी पत्नी की सुन्दर मूर्ति का चौबीस घण्टो मे एक बार स्पर्श अवश्य करते हैं।

'अजब तेरी दुनिया-अजब तेरा हाल' की लोकोक्ति कितनी सटीक है इसका रहस्य मैं अब तक नहीं समझता था। मेरे एक अन्य मित्र डा. सुरेन्द्र केन्द्रीय सरकार के उच्च्च पदासीन अधिकारी सेवानिवृत्त होकर जब दिल्ली से लखनऊ गोमती नगर के अपने नवनिर्मित सुन्दर आवास में रहने आए तो मैं उनसे मिलने एक दिन अकस्मात पहुँच गया। उनकी भव्य कोठी व सुरम्य उद्यान देखकर प्रसन्न हुआ। हर कमरे का चमाचम फर्श, और हरे भरे लान पर एक सूखी पत्ती भी दृष्टिगोचर नहीं हुई, भाभी-विहीन उनकी जिन्दगी कैसे कट रही है मैंने उनसे प्रश्न किया।

"ठीक वैसी जैसी तुम्हारी भाभी के यौवन काल में कट रही थी" उन्होंने तपाक से उत्तर दिया।

"क्या मतलब, मैं समझा नहीं," मैंने चकित होकर उनसे दुबारा प्रश्न किया।

"देखो सोने के पूर्व मैं अपनी तकिया के नीचे तुम्हारी दिवंगत भाभी का एक अधोवस्त्र छिपाकर रख लेता हूँ। एक पेग शैम्पेन पीकर सो जाता हूँ। सवेरे शतप्रतिशत फ्रेश होकर उठता हूँ"—उन्होंने निस्संकोच होकर मेरे घनिष्ठ मित्र होने के नाते मुझे स्पष्ट उत्तर दिया।

विधुरों की जीवन कथाएँ इतनी रोचक, बहुआयामी और शोध का विषय है कि वे साहित्य की मूल्यवान सामग्री का आधार बन सकती हैं। इस क्षेत्र में मेरी जानकारी बिल्कुल सीमित है क्योंकि विधुरों की स्थानीय सूची में मैं काफी जूनियर हूँ और वरिष्ठ जनों के अनेक मार्मिक प्रकरणों से आंशिक रूप से ही अवगत हो सकता हूँ अथवा यों कहिए कि मैं उनके वैधुर्य सम्बन्धी गूढ़ रहस्यों से अभी तक अनभिज्ञ हूँ।

मेरे एक दिलचस्प दोस्त हैं रिज़वी साहब, जो उत्तर प्रदेश शासन के विशेष सचिव के पद से सेवानिवृत्त होकर अपना विधुर जीवन हँसी खुशी बिता रहे हैं। उनका मानना है कि बीवी तो सारी जिन्दगी अपने शौहर को अपना खरीदा हुआ गुलाम समझती हैं, बूढ़े शौहर को जाड़े की रातों में दस बजे फौरन हुक्म दे देती है कि बाजार जाकर मेरे लिए दो पान लगवा लाओ और अपने जवान बेटों से कुछ नहीं कहती हैं चाहे वे उसके पास ही क्यों न बैठे हों। उनकी बीवी जिस दिन से अल्लाह को प्यारी हो गई, उसी दिन से उनके हाथों की हथकड़ियाँ और पैरों की बेडियाँ कट गईं। वे जहाँ चाहे आ जा सकते हैं, जिस रिश्तेदार की औरत को चाहे अपने घर बुला सकते हैं, और उसकी खातिर तवाजे कर सकते हैं, जिस मद में जितना चाहे उतना खर्च कर सकते हैं। घर में उनका न तो कोई आडिटर रह गया है ओर न कोई खर्च की मंजूरी देने वाला आला शख्स। उनकी थ्योरी यह है कि वे लोग खुशकिस्मत है जिनकी बीवियाँ अपने शौहर को आजादी देकर खुद कब्रिस्तान मे आराम फर्माने लगी हैं।

मैं ऐसे सभी मित्रों को मानवीय संवेदनाओं के तराजू पर तौलकर उनका मूल्याकन अपने हिसाब से करता रहता हूँ।

मैं उन सभी विधुरों को चाहे वे भारतीय हों चाहे वे अन्य देशीय--प्रशस्ति गान करना चाहता हूँ जो अपनी दिवंगत पत्नियों के त्याग, तपस्या, साहचर्य, प्रेम और गृहस्थ जीवन की सफलताओं का कीर्तन करते रहते हैं। धन्य हैं वे पति जो अपनी पत्नी के प्रति अपने हृदय में अगाध प्रेम और अटूट श्रद्धा उस समय भी अभिव्यक्त करने में आगे रहते हैं जब वह उन्हें इस मायावी संसार में अकेला जूझने और अन्य मनचली नारियों के नेत्रबाणों से अपनी रक्षा करने के लिए अकेला छोड जाती हैं।

सत्ताईसवाँ अनुच्छेद

दिवगत पत्नी-प्रेम के प्रदर्शन की कुछ रोचक विधियाँ जो मैंने अपने मार्निंग-वाकर्स एसोसिएशन के वरिष्ठ विधुर सदस्यों से सुनीं, व उन्हें अपनाते देखीं वे मेरे लिए निश्चय ही अग्राह्य थीं। एक तो मैंने अपनी जमा पूँजी, जो थी ही कितनी, पत्नी की बारहमासी बीमारी और शारीरिक खटर-पटर में खर्च कर डाली। दूसरे सेवानिवृत्ति के बाद पुत्री की शादी और पुत्र की उच्च शिक्षा-दीक्षा पर बचे-खुचे पैसों का

पूरी तरह सफाया हो गया। अब मैं आकाश मार्ग में झूठमूठ गरजने वाला जल विहीन एक ऐसा बादल का टुकड़ा हूँ जो किसी सीप को एक बूँद पानी भी नहीं दे सकता।

मेरे पास वर्ष 1986 का अपनी छोटी पुत्री ज्योत्स्ना के विवाह समारोह का वीडियो कैसेट कहीं पड़ा हुआ था। उसे खोजा, परिवारजनों की अनिच्छा के बावजूद उसे वी.सी.आर. पर लगाकर देखना शुरू कर दिया। क्षण भर के लिए वर्तमान नीरस जीवन की अस्मिता कहीं लुप्त हो गई। रंग-बिरंगे वातावरण में सजे हुए विवाह-मण्डप मे लाल कालीन पर बैठी हुई मेरी श्रीमती जी अत्यन्त नयनाभिराम मुद्रा में अपनी पुत्री ज्योत्स्ना का कन्यादान कर रही थीं और उनको घेर कर बैठीं उनकी बहनें, भाभियाँ, सहेलियाँ, पारिवारिक महिलाएँ उन्हें हर्ष और कौतूहल मिश्रित दृष्टि से देख-देखकर मुस्करा रही थीं ? पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न कराने वाले, शम्भू पण्डित के निर्देशो का क्रियान्वयन करते-करते वे थकने लगी थीं, फिर भी उनकी सक्रियता उत्सवधर्मिता उनके गोरे चेहरे पर परिलक्षित हो रही थी। यह दृश्य देखते ही मेरे नेत्रों के सामने हर्ष और विषाद की दो समानान्तर तरंगें लहराने लगीं। मुझे अच्छा लगा कि मैंने गोलोकवासी अपनी प्रियतमा-पत्नी और जीवन-संगिनी की चिरपरिचित सलोनी मुखाकृति का एक लम्बे अन्तराल के बाद प्रत्यक्ष दर्शन किया और उनकी परिपक्व शब्दावली मे पास बैठी महिलाओं को दिए जा रहे समारोह सम्बन्धी निर्देश सुने, पर पुत्री की विदाई में पत्नी के आँसू भरी रुलाई का दृश्य देखकर मैंने स्वयं अश्रुपूरित नेत्रों से आगे के दृश्यों को देखना बन्द कर दिया।

दूसरे दिन प्रातःकालीन मित्रों के साथ टहलकर घर लौटा तो मुझे अकस्मात ध्यान आया कि एक ऐसा आडियो कैसेट भी मेरे पास सुरक्षित है जिसमें श्रीमती जी का गाया एक गीत 'जसुमत मैया से बोले नन्दलाला राधा क्यों गोरी मैं क्यों काला' रिकार्ड किया था। वह गीत मैंने दो-तीन बार सुना, और गीत गाते समय की उनकी भूतपूर्व भावभंगिमा मेरी आँखों के सामने पुनः दृष्टिगोचर होने लगी, साथ ही उनके प्रेमपूर्ण सान्निध्य की तीव्र अनुभूति होने लगी। श्रीमती जी के संस्मरण के नाम पर मेरे पास बस इतनी ही सामग्री उपलब्ध थी।

अब मुझे इस दिशा में एक गरीब पति होने के नाते अपने भावी कार्यक्रम की चिन्ताओं ने घेरना शुरू कर दिया। मैंने श्रीमती जी के दाम्पत्य जीवन के मुख्य खट्टे-मीठे संस्मरणों को सहेजकर एक शृंखलाबद्ध योजना बनानी शुरू कर दी पर कोई खास सफलता नहीं मिली।

अतः दिन में अपने प्रकाशक के शोरूम में बैठकर गपशप करने और सायंकाल सौम्या और श्रेयस की मन बहलाने वाली अनाप-शनाप बातें सुनकर अपने दुर्दिन बिताने लगा। रात्रिकालीन संक्षिप्त भोजन करने के बाद अपनी एकाकी शय्या पर निश्चिन्त लेटकर अतीत की विस्मृतियों के गहन सागर में गोते लगाने लगा। कभी

कुछ हाथ आया और कभी हाथ मलता यों ही बाहर निकल आया। अन्ततोगत्वा एक दिन मेरे मस्तिष्क में सहसा यह विचार आया कि अपने विद्यालयी मित्र निगम साहब के साथ हिमालय दर्शन पर क्यों न निकल जाऊँ ? बचपन के अच्छे तैराक और दुनिया में सफलतापूर्वक तैरे हुए मेरे पी.सी.एस. मित्र निगम साहब और मै नौ मई की प्रातः हरिद्वार पहुँच गये, गंगा स्नान करके दिन भर विश्राम किया, सायंकाल गगा की आरती के दृश्य का आनन्द लिया। रात वहीं बिताकर दूसरे दिन टाटा की नई इण्डिका कार में बैठ कर छोटे मझले और बड़े हरे-भरे पहाड़ों की गोद में ऊपर-नीचे चढता-उतरता, उन्हीं के चारों ओर बनी कम चौड़ी सड़क पर चक्कर लगाता, श्रीनगर के चमाचम होटल में स्वादिष्ट भोजन करके जोशी मठ के ऊँचाई पर स्थित राजकीय इण्टर कालेज में खूब ठण्डी रात बिताई। नल का पानी बिल्कुल बर्फीला। दूसरे दिन प्रातःकाल सात बजे निकल पड़ा और ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों की छाती चीरते हुए दुर्गम और डरावने मार्गों पर कार चलाता हुआ ड्राइवर ग्यारह बजे दोपहर के लगभग बद्रीविशाल के बस स्टैण्ड पर पहुँच गया। नर-नारायण पर्वतों की ऊँचाइयों के मध्य बद्रीनाथ की मैदानी घाटी में शोर मचाकर बहती हुई अलखनन्दा के जल से आचमन करके, तप्तजल वाले कुण्ड में स्नान करके एक प्रमुख पण्डे के कथनानुसार बद्रीविशाल के दर्शन कर पापीगण पाप-मुक्त हो जाते हैं। कितना आसान उपाय है किए हुए पापों को धो डालने का। बद्रीविशाल के मैंने वी.आई.पी. दर्शन किए, उनके समीप मन्दिर के मुख्य पुजारी के पार्श्व में अन्दर बैठकर विष्णु, लक्ष्मी, कुबेर, नारद आदि की मूर्तियों के रूप में। मालपुए का आस्वादन करके अपने नेपाली गेस्ट हाउस के आवास में लौट आया।

मैं अनन्त आकाश को छूते दो ऊँचे पहाड़ों नर और नारायण के बीच विष्णु की तपोभूमि से संलग्न खुली हुई सुरम्य हरी-भरी घाटी का सुविशाल मैदान, चहल-पहल से पूर्ण छोटे-छोटे बाजार देखने लगा।

मुझे निरन्तर एक विशेष प्रकार की अन्तःप्रेरणा होने लगी कि दस हजार तीन सौ दो फीट की ऊँचाई पर स्वच्छ और निर्मल वातावरण में मेरे चारों ओर प्राण-वायु के अदृश्य रूप में सर्वथा व्याप्त शाश्वती मेरी दिवंगत धर्मपत्नी मेरा अदृष्ट आलिगन कर रही हैं। मैं न तो कोई पापी था और न पत्नी के द्वारा आलिंगन किए जाने को पाप ही समझता था। मेरे तन में नई मूर्ति, मन में नव चेतना, प्राणों में दिव्य शक्ति का संचार होने लगा। मैं विचित्र सोच में पड़ गया। राजधानी लखनऊ से दूर, अपनों से पृथक्, नियन्त्रित मनोभावनाओं में साँसों को लेता हुआ, हिमालय के प्रांगण में भगवान विष्णु की पुण्य तपस्थली तक मैं आ पहुँचा, पर चारों ओर दिशाओ से शाश्वती मुझे क्यों आवृत्त किए हुए है। मैं कुछ क्षणों के लिए उसके प्रेम-पाश से मुक्त होकर इस दिव्य और आध्यात्मिक परिवेश में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्पष्ट

अनुभूति करने का इच्छुक था।

अपने मन में मैंने स्वगत कथन में कहा, देवी जी जब तुम मेरी इस ढलती और गलती हुई अवस्था में मेरा साथ नहीं निभा सकीं, हालाँकि मैंने मजबूती से तुम्हारे हाथ पकड़कर जीवन के कदम-कदम पर तुम्हारा साथ निभाने की सदा कोशिश की। तो तुम मुझे इस समय अपनी दैहिक उपस्थिति की अनावश्यक अनुभूति क्यों करा रही हो ?

तुम जाओ, सामने के नारायण पर्वत की सबसे ऊँची चोटी पर बैठ जाओ और विष्णु की तरह लम्बे समय तक तपस्या करो और अपने को महाकाश में संविलीन कर दो। अब मुझ पर रहम करो। मुझे एकाकी छोड़ दो। मैं तुम्हें देखकर दुःख की गहरी घाटी में बार-बार गिर पड़ता हूँ। न जाने कैसे मैंने हताशा, वियोग-वेदना और जीवन के कठोरतम हृदयाघात के वातावरण से अपने को बाहर निकाला है और तुम अलखनन्दा के उच्छृंखल और कोलाहल भरे स्वरों में मेरा ध्यान भंग करने के लिए यहॉ भी मेरा पीछा नहीं छोड़ रही हो। क्या बात है, बोलो! तुम्हें मुझसे और क्या चाहिए। एक तो मेरी ढलती आयु में मेरा साथ छोड़ गई, दूसरे तुम्हारे प्रयाण करते ही मेरे सिर पर अनेकानेक देखी-अनदेखी, मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। मेरी समझ मे तो यह आने लगा है कि परिवार के लोग तुम्हारे जाने का इन्तजार ही कर रहे थे। इधर तुम्हारी फूलों से सजी हुई अर्थी घर के बाहर निकली उधर मेरे स्वाभिमान, स्वामित्व, पारिवारिक अनुशासन, आत्म-विश्वास और कुटुम्ब की मेरी केन्द्रीय भूमिका का शव भी साथ ही साथ निकाल दिया गया। आत्मज कहे जाने वाले पुत्र-पुत्रियों ने मेरी ओर से आँखें फेर लीं। तुम्हारी उपस्थिति में हँसने-बोलने वाली, तबीयत खुश करने वाली और लम्बे-चौड़े वायदे करने वाली तुम्हारी बहनें और भाभियाँ, जो तुमसे और तुम्हारे माध्यम से मुझसे भी हमेशा फायदा उठाती रहीं, और मुझे उम्मीदों के सब्ज़बाग दिखलाती रहीं—वे तो अब इतनी बदल गई हैं कि फोन करने पर कहला देती हैं कि मैं अभी काम में फँसी हूँ—खाली नहीं हूँ, थोड़ी देर बाद बात कर लूँगी या यह भी कहला देती हैं कि पड़ोस के घर में किसी फंक्शन में भाग लेने चली गई हैं देर में लौटेंगी। एक अदद मेरे बचपन की भाभी श्रीमती निगम, सेवानिवृत्त कालेज प्रवक्ता अवश्य मेरी भूख प्यास का ध्यान रखती हैं, अनेक प्रकार से ढाढंस बॅधाती हैं, और अपनी गुरुवाणी में आध्यात्मिक उपदेश देकर दैहिक सम्बन्धों की नश्वरता का पाठ पढ़ाकर मेरे चकनाचूर मनोबल को नया सम्बल प्रदान करती हैं। घर में एकमात्र अर्चना मेरी छोटी बहू अलबत्ता मेरे खाने-पीने और बाहर आने-जाने की अब पूरी चिन्ता रखती है।

इन अप्रत्याशित-अकल्पित और असहाय कष्टदायिनी परिस्थितियों से दिन-रात जूझता हुआ, आत्म-प्रवचंना का शिकार होकर जब मैं यहाँ बद्रीविशाल की पुण्य तपोभूमि

मे आत्मबल प्राप्त करने हेतु किसी प्रकार भटकता हुआ आ गया हूँ, हिमालय के प्राणदायक उन्मुक्त वातावरण में प्रकृति की नवचेतना से अनुप्राणित होकर जब मै अपने डगमगाते कदम और हृदय के टूटे तारों को सम्हालने का प्रयास कर रहा हूँ, तब तुम मेरे चारों ओर नीचे-ऊपर धरती और अन्तरिक्ष में लगातार मेरे दृष्टिपथ पर मेरे आगे-आगे चल कर मेरी मानवीय दुर्बलताओं का परिहास कर रही हो। तुम्हे अपने इस अनैतिक कार्य में क्या कोई आत्मसन्तोष की सुखद अनुभूति हो रही है ? अथवा मेरी बेबसी के साथ क्रूर मजाक करके क्या तुम मुझसे अपनी बची हुई नाराजगी का प्रतिशोध ले रही हो ? यदि मैं तुम्हें स्वयं साथ लेकर नीरा नर्सिंग होम नहीं गया था तुम्हारी चिकित्सा के लिए तुम्हें गलत स्थान पर चले जाने दिया तो इसमें मेरा क्या दोष ? दिन में तुम्हीं ने तो मुझे आश्वस्त किया था कि अब तुम्हारी श्वास-प्रश्वास की बिगड़ी हुई प्रक्रिया में कुछ सुधार हो रहा है, तुम्हारी हंफनी कम हो रही है, तुमने शायद मुझसे मिथ्या भाषण करके अपने बढ़ रहे शारीरिक कष्टों को इसलिए कम करके बतलाया था ताकि मैं अपनी संवेदनशीलता और सहानुभूति के कारण सहसा व्यथित न हो जाऊँ। मेरी मनोव्यथा अपने जीवन की अन्तिम घड़ियों में भी और अधिक न बढ़ने देने के लिए तुमने अपने पत्नी-व्रत का अनुचित पालन किया। तुमने मुझसे धीरे-धीरे बढ़ रहे अपने शारीरिक कष्टों की वास्तविकता क्यों छिपाई ? मै तुम्हें उस सड़ियल धन कमाऊँ नर्सिंग होम में न ले जाकर किसी अधिक प्रतिष्ठित नर्सिंग होम के.जी.एम.सी. या पी.जी.आई. में सीधे ले जाने का प्रयास करता। कुशलतम चिकित्सकों के अनुभवी निदान द्वारा तुम्हारी नवीनतम औषधियों से चिकित्सा कराता, जगत्नियन्ता से महामृत्युंजय जप का मौन पाठ करके अहर्निश तुम्हारे प्राणों की रक्षा के लिए प्रार्थना करता जो कुछ भी तुम्हारे उपचार में मेरी ओर से अज्ञानतावश त्रुटि हुई है, उसका परिमार्जन करने हेतु मैंने विलम्ब से ही सही पर विशेषज्ञ चिकित्सको को बाहर से बुलवाकर तुम्हें दिखलाया, पर यह भी कटु सत्य है कि 'का वर्षा जब कृषि सुखानी' तुम्हारे अस्थमा के प्राणहन्ता रोग के आरम्भिक निदान और प्रभावी उपचार कराने में मुझसे चूक इसलिए भी हो गई कि तुम अपने विरत जीवन काल मे इस रोग से कभी ग्रस्त नहीं हुई थीं। प्रायः तुम्हें अनीमिया निम्न (रक्तचाप) और सामान्य ज्वर वर्ष में एक बार कष्ट अवश्य दे जाता था और खानपान की सावधानी और इन्फेरान के इन्जेक्शनों से तुरन्त लाभ हो जाता था। तुमने एक बार मुझे अवश्य बतलाया था कि तुम्हारे बचपन में तुम्हें कुछ समय के लिए दमा का दौरा पड़ा था और बाबा गोपालदास घाट-सीतापुर के आश्रम में रहने वाले किसी साधु ने शरदपूनो की रात में खीर में पिसी हुई कोई वनस्पति मिलाकर खिलाई थी और तत्काल तरायन नदी में स्नान करवाया था। एक ही खुराक में सारे जीवन तुम दमा के दमन से मुक्त रहीं और मेरा कभी उस ओर ध्यान भी नहीं जा सका कि तुम्हारा यह बचपन

का शत्रु तुम्हारी ढलती अवस्था में फिर उठ खड़ा होकर तुम्हारे प्राण अपने साथ ले जाएगा। तुम्हारे चेहरे पर सदा झलकने वाला आत्म-विश्वास देखकर मैं ठगा गया। तुमने मुझे छलावा दिया, अन्धकार में रखा, अन्तिम क्षणों में विश्वासघात किया। मातृभक्त पुत्र विवेक ने तुम्हारी चिकित्सा और परिचर्या में अपने सामर्थ्य की सीमा का अतिक्रमण करके दोनों हाथों से पैसा खर्च किया और प्राणपण से तुम्हारी सेवा की, तुम्हें शान के साथ, सम्मान के साथ, स्वभावगत मातृ-भक्ति के साथ हार्दिक श्रद्धा और आँसू से डबडबाए नेत्रों के साथ तुम्हारी अर्थी को कन्धा देकर घर के गेट बाहर तुम्हारा शव निकाला जहाँ वह स्वयं अपने इस नए घर में गृह-प्रवेश समारोह के उल्लासपूर्ण वातावरण में अपने साथ बुला लाया था। उन्हीं सुखद स्मृतियों को अपने अंतःकरण में अब तक सँजोए हुए विवेक तुम्हें गृह-निकास में विषादपूर्ण समारोह के समय अपने मित्रों, परिवारजनों और मेरी उपस्थिति में उसी नए मकान से फूलमालाओं से लादकर अपने कन्धों पर उठाकर भारी मन से बाहर ले आया।

ऐसी स्वाभाविक परिणति में तुम्हें इस समय न तो अपने पुत्र विवेक से कोई उपालम्भ होना चाहिए और न अपने जीवन साथी से ही कोई रोष होना चाहिए। तुमने सजधजकर मेरे पुराने टूटे-फूटे घर में अपने यौवन के प्रथम चरण में सुन्दर नववधू के रूप में पुष्प वर्षा और मंगल गान के बीच सहर्ष प्रवेश किया था। जीवन के असीम स्पन्दनों के साथ प्रवेश किया था, सबसे बड़ी सन्तान होने के कारण अपने माता-पिता का अत्यधिक लाड़-प्यार पाकर तथा अपने घर के आँगन में उमंग भरे अठारह वर्ष व्यतीत कर मेरे परिवारजनों के बीच प्रवेश किया था।

उसी परिवार में अपनी अन्तिम साँसों तक सतत समर्पित सेवा, असीम त्याग, उच्च कर्तव्य भावना और अनन्य प्रेम के साथ अपने नारी जीवन के एक दो नहीं पूरे सत्तावन वर्षों की जीवन-यात्रा जो कंटकपूर्ण, अभावपूर्ण, विषादपूर्ण और संघर्षपूर्ण टेढ़े-मेढ़े रास्तों से होकर गुजरी, तुमने सदा मुस्कराते हुए पत्नीत्व और मातृत्व भावना के समन्वयपूर्ण आदर्शों की रक्षा करते हुए पूरी कर डाली।

इस देश की धरती पर पुराने समय के ऋषि मुनियों के तपोवन में साधना करने वाली बहुचर्चित तपस्विनियों की तरह तुम किसी साधना सिद्ध तपस्विनी से न्यून नहीं आँकी जा सकतीं। यूँ तो मैं तुम्हारे दैवीगुणों का सतत आकलन अपने लघुशेष जीवन में करता रहूँगा, तुम्हारे प्रेरक और मोहक नारीत्व का यशोगान सदा करता रहूँगा, तुम्हारे अतीत के हृदय स्पन्दनों की अनुरागी ध्वनि को सदा सुनता रहूँगा, अपने आलस्य और अकर्मण्य से उपजे अपराधबोध की भावना से सदा ग्रस्त रहूँगा, पर इस समय तुम हिमालय की इस सुविशाल गोद में एक अबोध बालक की भाँति प्रकृति के साथ खेलने के लिए मुझे कुछ समय के लिए एकाकी छोड़ दो।

अट्ठाईसवाँ अनुच्छेद

बद्रीविशाल की सायंकालीन आरती के दर्शन और रात्रि विश्राम करके दूसरे दिन धरासू ठहरकर अगली प्रातः उसी टाटा इण्डिका द्वारा मैं गंगोत्री की ओर धीरे-धीरे पहुँच रहा था। काफी ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और उनको ढके हुए सुविस्तृत हरियाली, उनकी छाती से फूटकर बाहर निकलती, सड़कों पर बहती जल की छोटी-छोटी धाराएँ, सडक की दाहिनी ओर बहुत डरावनी गहरी घाटी, उसमें शोर मचाती बहती गंगा की तेज धारा, अन्तरिक्ष को चूमते हुए बहुत ऊँचे एकाकी पर्वतों की चोटियों पर शाश्वत निवासिनी चाँदी की भाँति हिम की रुपहली चादरें देखता हुआ मैं आखिरकार दस बजे गंगोत्री पहुँच ही गया। पहाड़ों से सटाकर बाएँ किनारे गाड़ी पार्क करके अपने मित्र निगम साहब के साथ छोटे से मौसमी बाजार के बीच गुजरता हुआ गंगा के मन्दिर के सामने की पत्थर की सीढ़ियों को उतरते हुए गंगा के किनारे बने पत्थर के घाट पर अपना सामान रखकर स्नान करने हेतु तैयारी करने लगा। आसपास यात्रियों की ज्यादा भीड़ न थी। मैं गंगा के उस पार बने काटेजनुमा होटल और छोटे-छोटे टिन शेड की तरह बनी धर्मशालाएँ देख रहा था।

गंगा के किनारे की प्रचण्ड शीत, सरसराती बहती हवा वह भी चमचमाती धूप होने के बावजूद मुझे अरुणिम ही नहीं अपितु कष्टदायक भी लग रही थी। जल्दी-जल्दी पत्थर की सीढ़ी पर बैठकर लोटों में गंगोत्री का गंगाजल भरकर स्नान किया, फिर निगम साहब के आग्रह पर जंजीर पकड़कर बड़े साहस के साथ श्रीमती जी के नाम की एक डुबकी लगाकर बाहर निकल आया।

कँपकँपाते शरीर, कटकटाते दाँतों के साथ फटाफट बड़े तौलियाँ से शरीर पोछ कर सारे कपड़े उसी क्रम से पहने जिस क्रम से उतारे थे। गंगा मन्दिर के दूर से हाथ जोड़कर चाय की एक छोटी दुकान में घुस गया। दो कप कड़क चाय पी और तुरन्त मेरी टेबल के दूसरी ओर सद्यःस्नात और आकर्षक श्वेत परिधान धारण किए मेरी श्रीमती जी मुझे घूरने लगीं, मुझसे नाराजगी से प्रश्न किया, "और मेरा प्याला ?"

"तुम्हारा प्याला क्या मतलब ? तुम यहाँ कैसे ?" मैंने विस्मयपूर्ण और सशंकित नेत्रों से उन्हें देखते हुए प्रश्न किया।

"मैं तुम्हारे साथ-साथ चल रही हूँ, मैंने तुम्हारी कार दो बार गढ़वाल मण्डल की बस से टकराते बचाई। मैं तुम्हारी कार की छत पर अदृश्य रूप से बैठी तुम्हारे साथ-साथ चली आ रही हूँ," शाश्वती ने मुझे अपनी यथार्थ मार्ग घटना से अवगत कराते हुए आश्वासन दिया।

"देखो शाश्वती तुम्हारी चाय तो आ जाएगी पर तुम्हें तुम्हारा वर्तमान स्वरूप कैसे मिल गया ?" मैंने कौतूहल व्यक्त करते हुए अगला प्रश्न किया।

"तुम अपने चर्म चक्षुओं से मुझे स्वयं नहीं देख सकते, बीच-बीच में मैं अपने अदृश्य रूप को तुम्हारे आहत मन को शान्ति प्रदान करने के लिए स्थूल आकार प्रदान कर देती हूँ। यह देखो, मेरा काला ब्लाउज, सफेद चिकन की साड़ी, मस्तक पर लगी तुम्हारे नाम की लाल बिन्दी।" इतने में निगम साहब भी वहीं आकर बैठ गए। उन्होंने हँसते हुए पूछा, "तुम तो यार यहाँ बिल्कुल अकेले बैठे हो, तुम्हारे सामने तीन खाली चाय के प्याले कैसे रखे हैं ?"

मैंने उन्हें सारी वास्तविकता से अवगत करा दिया। उन्होंने आश्चर्य से मुझे देखा और कहा, "शेक्सपियर के मैकबेथ नाटक की नायिका की भाँति तुम्हारी वर्तमान मनोदशा के कारण तुम्हें भी काल्पनिक दृश्य (Hallucinatems) दिखलाई पड़ने लगे हैं। चलो खाना खाओ, जल्दी लौट चलो, रात तक उत्तरकाशी पहुँच चलो।"

मैं गोमुख की ओर जाने वाले रास्ते पर पदयात्रियों की पंक्ति हसरतभरी नजरो से देखता रहा। बीच-बीच में मेरे मन में तुम्हारे सम्बन्ध में अनेक प्रश्न बिन्दु उठ रहे थे।

कभी-कभी हवा के झोंकों को झेलता हुआ सड़क के नीचे लगे भोज पत्र के हरेभरे वृक्षों को देखने लगता।

मैंने सोचा इन उत्तुंग उपेक्षित पर्वत शिखरों पर न जाने कब से आच्छादित हिम की सुन्दर रजत परतों का क्या कभी पर्यटन प्रेमी मानव के चरण स्पर्श कर सकेंगे ? फिर सोचा—जब शाश्वती मेरी अदृश्य सहयात्री के रूप में यहाँ तक आ पहुँची है तो दुबारा दिखने पर मैं उसी से क्यों न कहूँ "जाओ शाश्वती, मैं चाहता हूँ तुम गंगोत्री के इन पार्श्ववर्ती ऊँचे-ऊँचे पर्वतों की चोटियों पर धूप में चमचमाती हिम-शिलाओं पर सप्तपदी चलकर मेरे पास तुरन्त लौट आओ" फिर दूसरा विचार अचानक मेरे मस्तिष्क में कौंध गया—यदि शाश्वती अपनी स्वस्थ दशा में इस समय मेरे पास बैठी होती तो मैं उससे कहता, तुम मुझे यहीं कहीं एक काष्ठ-कुटीर बनवा दो, धन तुम्हारा, श्रम हमारा। न्यूनमत जीवन सामग्री के साथ तुम यहीं पर मेरे साथ रहो और पाण्डवों के स्वर्गारोहण की भाँति हम तुम कलयुगी-दम्पत्ति उनसे प्रेरणा प्राप्त कर यहीं से क्यों न अपने स्वर्गारोहण की यात्रा आरम्भ कर दें।

उनतीसवाँ अनुच्छेद

मै बदरीनाथ, गंगोत्री, ऋषिकेश की धार्मिक यात्रा सम्पन्न करके वापस लखनऊ तो आ गया, पर मन के किसी अँधेरे कोने में श्रीमती जी की स्मृतियाँ अपना मजबूत डेरा लगाए छिपी रहीं। सुहृदयगण मेरी पर्वतीय यात्रा पर मुझे साधुवाद देते मेरे सुधरते स्वास्थ्य की सराहना करते। पर कब्र का हाल तो सिर्फ मुर्दा ही जानता है। मेरे सवेदनशील हृदय की गहराइयों में कहीं सुप्तप्राय वेदना के करुणिम स्वर अभी भी मुझे प्रतिक्षण सुनाई पड़ जाते हैं। मैं इस रहस्य को किसी अन्तरंग मित्र से कभी उजागर नहीं करता, दुनियादारी निभाने वाले अधिकांश मित्र चलताऊ किस्म के हे ओर निम्नस्तरीय रटी-रटाई शब्दावली का बड़ी गम्भीरता के साथ प्रयोग करके अपने निराधार ज्ञान-गौरव का प्रदर्शन करने के इच्छुक रहते हैं। एक प्रातःकालीन पत्रकार मित्र कहते हैं—यार तुम्हारी सरस्वती बड़ी भाग्यशाली थी सचमुच देवी थी। उसने अपना नाम सरस्वती इस दुनिया को सार्थक कर दिखलाया। तुम इस सार्थकता को उसके जीवनकाल में समझ नहीं सके। वह जिन्दगी में शान से रही और शान से मरी, तुम्हारे कन्धों पर चढ़कर इस दुनिया से कूच कर गई । अब मेरा सुना हुआ यह शेर याद रखो।

"मौत उसकी है जिसका शौहर करे अफ़सोस
यूँ तो दुनिया में औरतें आई मरने के लिए।"

उन्होंने आगे कहा तुम्हारे स्वर्गगामी हो जाने के बाद यदि मेरी भाभी को विधवा जीवन बिताने के लिए अभिशप्त होना पड़ता, तो उसके सर पर मुसीबतों का पहाड टूट पड़ता, दोनों बेटे उनको नाकों चने चबवा देते, नित्य नया अपमान और शोषण सहते हुए उसे बहुओं की नौकरानी बनकर जीना पड़ता। दिन भर घर की चौकीदारी और बच्चों की खिदमतदारी करने के अलावा उसे किसी भी पारिवारिक मंगल कार्य के शुभ अवसर पर किसी किनारे की कोठरी में चुपचाप बैठे रहने को कह दिया जाता। 103-104 डिग्री बुखार आ जाने पर वह कराहती और कोई बहू उसके पास भी न फटकती। यदि अहसान जताने के लिए कोई बेटा डाक्टर को दिखलाए बिना उसे केमिस्ट की दुकान से दवा लाकर दे देता तब भी किसी बहू को उसे एक गिलास पानी देकर दवा खिला देने की फुरसत न मिलती। चाय और दूध पिलाने की बात छोड़ दीजिए। अगर बेटा अपनी बीवी के हाथों उसे दवा भेजवाता तो उसे वह तकिया के नीचे छिपाकर रख आती और कह देती, लीजिए आपकी दवा रखी है--खा लीजिएगा। चुपचाप लेटी रहिए—दिन भर उपवास कीजिए। हम लोग आज पिकनिक पर जा रहे हैं। आप सिर्फ उबला हुआ पानी गीजर से

निकालकर पीती रहिएगा।

एक दूसरे सहपाठी कपूर साहब जो रिटायर्ड पुलिस अधीक्षक हैं अक्सर मुझे समझाते हैं, देखो दोस्त! तुम पत्नी के कमरे में न जाओ वहाँ लगे पत्नी के चित्र को हटा दो, उसकी बक्स न खोलो, उसकी साड़ियाँ मत देखो, उसके सारे कपडे गरीब औरतों में बाँट दो। उसका मेकअप का सामान गोमती में फेंक दो। उसकी ऐनक, उसके गागेल्स, उसका पर्स, उसकी चप्पलें यानी उसका सब कुछ बचा खुचा सामान गरीब औरतों में जो प्रायः के.जी.एम.सी. के बाहर की सड़क पर या मकी ब्रिज के पास वाले हनुमान मन्दिर के सामने लाइन में बैठी मिलेंगी बाँट दो।

जब तुम्हारे पास उसकी कोई वस्तु शेष ही नहीं रह जाएगी, तो तुमको उसकी याद क्यों कर आएगी और कैसे सताएगी। जो कुछ मैंने अपनी पत्नी के मर जाने के बाद स्वयं किया था, बिल्कुल वही राज़ की बातें तुमको बचपन का दोस्त होने के नाते समझाए देता हूँ। मेरी बातों पर कल से ही अमल करना शुरू कर दो। नही तो उसकी सूक्ष्म काया सदा तुम्हें यों ही सताती रहेगी।

अब सुनिए मेरे एक सायंकालीन मित्र डा. सक्सेना की मुझे दी गई नसीहत। वैसे तो वे किसी मेडिकल कालेज से बाकायदा डिग्री प्राप्त नहीं थे, पर उनकी क्लीनिक के साइनबोर्ड पर उनका नाम लिखा था—'डा. राजीव सक्सेना आर.एम.पी. गुप्त रोगो का शर्तिया इलाज'। मेरा मतलब डा. सक्सेना की हुलिया से आपको रुबरू कराना कतई नहीं है। उनकी पत्नी रामप्यारी सक्सेना आज से दस-बारह वर्ष पूर्व ठीक होली के दिन भगवान को प्यारी होकर अपना नाम सार्थक कर गई। उस समय डा. सक्सेना पचास वर्ष की अवस्था में चल रहे थे।

डा. सक्सेना सुबह शाम टहलने, अपनी गोश्त की दुकान से मिली क्लीनिक मे दोनों समय अक्सर बैठने, दोस्तों से माँगकर हिन्दी-अंग्रेजी का पूरा अखबार पढने, घर का साग-सब्जी बाजार से खुद ले आने, मूड आ जाने पर जाड़े के दिनों में पतगे लड़ाने, पुराने पर्चों पर शायरी लिखने और मेरे ऐसे नव-विधुरों का गलत मार्गदर्शन करने में अपनी दिनचर्या बिताते हैं। वे पिछले शनिवार की शाम को अपनी क्लीनिक मे हमेशा की तरह खाली बैठे सवेरे का अखबार पढ़ रहे थे। मैं जब उनकी क्लीनिक के सामने से गुजर रहा था तो वे जोर से बोले आइए भाई साहब थोड़ी देर बैठ लीजिए। मैं उनके पास एक सेकेण्ड हैण्ड कुर्सी पर बैठ गया। मुझे देखकर वे अपनी भीतरी खुशी से मुस्कराकर कहने लगे—

"भाई साहब यह दुनिया बड़ी मक्कार है, बड़ी स्वार्थी है, कोई किसी का नहीं है। सब अपने-अपने मतलब की बात करते हैं। औरत को समझना ही मुश्किल है। सारी जिन्दगी पत्नियाँ अपने शौहरों को मुस्कराकर कैसे-कैसे बेवकूफ बनाती रहती है। अपना तो हर काम वे अपने नाज नक्शे और रंगा-पुता चेहरा दिखलाकर पूरा

करा लेती हैं। हम हमेशा आँख बन्द करके उनके पीछे दौड़ते रहते हैं, पर जब उनसे कोई हमारा काम पड़ता है, तो कभी दिन भर के थकान की, कभी आपके बच्चे को दूध पिलाने की, कभी सिर में दर्द हो जाने की, कभी किचेन में खाना बनाने में व्यस्त होने और अपने हाथों में आटा लगे होने की, कभी अपनी तबीयत ठीक न होने की बात बनाकर अपनी विवशता दिखलाते हुए बोलेंगी, 'देखो पास मे ही फ्रिज में रखे हुए पानी की एक बोतल निकाल लो, किचेन में आकर गिलास उठा लो, एक गिलास तुम पी लो और एक गिलास मुझे पिला दो। ज्यादा पानी मत पीना, नहीं तो भूख मर जाएगी, खाना तैयार हो रहा है। बण्टी स्कूल से आ जाए, सब लोग साथ ही बैठकर खाएँगे।' "

जब इस प्रकार की बीवियों ने हमें अपनी जवानी के दिनों में उल्लू बनाकर घर में नाच नचाया है, तो हम उनके दुनिया से कूच कर देने के बाद उनका गम अपने सीने में क्यों पालें ?

मैंने एक दिन अपने खाली टाइम में अपनी पत्नी रामप्यारी सक्सेना की सारी तस्वीरें निकालकर पक्के पुल पर खड़े होकर गोमती नदी की बीच धारा में एक-एक करके प्रवाहित कर दीं। मेरी बात मानिए भाई साहब, खूब घूमिए, दोस्तों के बीच बैठिए, पुरानी दोस्ती ताजा कीजिए, नए-नए दोस्त बनाइए, सवेरे कुकरैल पिकनिक स्पाट, और शाम को हजरतगंज घूमिए, मनचाहा खाना अवध क्लार्स में खाइए, टी वी. पर अपनी पसन्द का कोई सीरियल देखिए। आजकल अमिताभ बच्चन का कौन बनेगा करोड़पति जरूर देखिए, सोने से पहले सिर्फ आधा पेग ह्विस्की जरूर पीजिए, और चादर तान कर आराम से सो रहिए।

मैंने डा. सक्सेना की दिलचस्प बातें सुनीं, उनकी अर्धशिक्षित मानसिकता पर मुझे वास्तव में तरस आया और मैं तमतमाए चेहरे से उन्हें नमस्कार करके अपने घर लौट आया। सीधे बेडरूम में जाकर शाश्वती के सुन्दर सुनहरे फ्रेम में मढ़ा हुआ चिकन की नई नीले रंग की साड़ी पहने हुए मुस्कराते चित्र को ध्यान से देखा, फिर सम्बोधित किया, सुना शाश्वती, यह साला डाक्टर जो मुझसे उम्र में पन्द्रह साल छोटा है, मुझसे किस तरह की गुस्ताखी की बातें कर रहा था। यह वही डाक्टर सक्सेना है जिसके बारे में तुमने एक बार मुझसे पूछा था, क्या यह झोलाछाप डाक्टर है जिसे महिलाओं से उनकी बीमारी के विषय में बातचीत करने और उसके लक्षण पूछने का भी शऊर नहीं है। यह कैसा डाक्टर है जो गँवारू भाषा बोलता है, दो शब्द बोलेगा और तीन बार हँसेगा।

आज वही डाक्टर सक्सेना मुझसे कह रहा था, मैं तुम्हें भूल जाऊँ, दिल से निकाल दूँ, तुम्हारे सुन्दर चित्रों का एलबम जो मेरे प्रणयपूर्व अतीतों का प्रत्यक्ष साक्षी है किसी नदी में फेंक दूँ।

देख लो कल तक तुम्हें भाभीजी कहकर तुम्हारे चरण स्पर्श करता था, आज गधा मुझसे कहता है कि मैं तुम्हारे चित्रों को वैसे ही फेंक दूँ जैसे कि उस पागल ने अपनी स्वर्गीय पत्नी श्रीमती रामप्यारी के चित्र गोमती नदी में फेंक दिए हैं। सुनो, शाश्वती आज मैं सचमुच बहुत दुःखी हूँ, अपने जीवन में तुम्हारे प्रवेश करने के पूर्व मै बिल्कुल अकेला था, एक मातृविहीन युवक, अध्ययनरत छात्र, अपने कर्तव्यो के प्रति सदा सजग नवयुवक, जो प्रतिदिन व्यायाम, स्नान, पूजा और अध्ययन में व्यस्त रहता था, अपने ज्येष्ठ भ्राता स्वर्गीय श्री रामेश्वर वाजपेयी का पितृवत स्नेह प्राप्त कर सदैव मानव जीवन के दार्शनिक पक्ष के विचारों में खोया रहता था। और हर परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया करता था, जिसकी सौ से अधिक छायावादी कविताऐं स्कूल और कालेजों से प्रकाशित होने वाली मैगजीन के प्रथम पृष्ठ पर छपा करती थीं, जिसके आदर्श शिक्षक आचार्य नरेन्द्रनाथ शास्त्री हिन्दी प्रवक्ता डी.ए.वी. कालेज लखनऊ हुआ करते थे, उसी व्यक्ति को डा. सक्सेना आधा पेग ह्विस्की हर रात पी लेने का पाठ पढ़ा रहे थे। एक बात मुझे और सता रही है। मैं काठ के उल्लू की भॉति स्वार्थी और संकुचित दृष्टिकोण वाले माता-पिता की आज्ञापालन करके जब मैं तुम्हें ब्याह कर अपने घर ले आया, तब भी मेरे हृदय में पत्नी के प्रति न तो किसी प्रकार की उत्कण्ठा थी और न किसी प्रकार के प्रेम का ही बीजारोपण हुआ था। नारी देह के दैहिक आकर्षण और उसके स्पर्श-सुख से मैं पूर्णतया अनभिज्ञ था। ऐसी अपरिपक्व मनोवैज्ञानिक संरचना और विश्वविद्यालयीन शिक्षा को पूरी कर लेने की साधना में तल्लीन एक नाकारा नवयुवक था, जो तुम्हारे उठते यौवन के उष्ण उच्छ्वासों के जादुई करिश्मे से पूरी तरह बेखबर था। पर मेरी उम्र के और छात्र मेरे ऐसे नहीं थे। मुझे दाम्पत्य जीवन की निःशुल्क शिक्षा देने वाले मेरे व्यावसायिक मित्रजन थे। उस समय भी डा. सक्सेना के बड़े भाई हरीश सक्सेना, जो अंग्रेजी के पीरियड में मेरे पास बैठा करते थे। मुझे कान में कहते थे, वाजपेयी आधा पेग ह्विस्की जमा कर रात में भाभी के साथ गहरी नींद में सोया करो, दिन भर हजरतगंज की लव-लेन में चक्कर लगाओ क्योंकि बी.बी. की परीक्षा पास करने लायक अभी तुम नहीं हो, बी.ए. की परीक्षा तो अपने आप हो जाओगे।

मैं उनकी दाम्पत्य जीवन की सारगर्भित बातें सुनकर भी बिना कोई प्रतिक्रिया व्यक्त किए केवल संकोचपूर्वक मुस्करा देता था। वे मूर्ख समझ लेते थे कि मैं उनके पढाए हुए पाठों को अवधानपूर्वक हृदयंगम कर रहा हूँ। धीरे-धीरे लम्बी अनमनी प्रतीक्षा के बाद मेरी शिक्षा पूरी हुई। उत्तर प्रदेश शासन में एक शिक्षा अधिकारी के पद पर ज्योंही मुझे सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ मेरे ज्येष्ठ भ्राता तुम्हें तुम्हारे नैहर से विदा करा कर लखनऊ ले आए।

यहीं से मेरा-तुम्हारा कौतूहलपूर्ण चिर प्रतीक्षित और व्याकुल हृदयों का एकान्त सान्निध्य आरम्भ हो गया। मेरी लौकिक अज्ञानता को तुमने पहले ही भाँप लिया था, अतः तुमने अपनी विवाहित सहेलियों द्वारा व्यक्त ज्ञान और अनुभव का लाभ उठाकर मुझे कर्तव्य पथ पर अग्रसर होने का नया रास्ता दिखलाया। मैंने एक तिमरावृत्त यामिनी के प्रथम प्रहर में वे सारे गूढ़ रहस्य तुमसे सीख लिए जो मेरे भावी दाम्पत्य की प्रत्येक निशा अपनी ज्योत्स्ना से प्रकाशित करते रहे।

मैंने तुम्हारा प्रेम प्राप्त किया, तुम्हारा हृदय जीता, मेरा तुम्हारा तन मन एक हो गया। धीरे-धीरे हम दोनों पृथक्-पृथक् होते हुए भी एक हो गए और सारे जीवन एक रहे।

दैहिक आनन्द, मानसिक तुष्टि और आध्यात्मिक चिन्तन के नए-नए मार्ग तुमने अपने विशाल नारी हृदय और उच्च नैतिक संस्कारों के सम्बल से मेरे लिए सदा-सदा के लिए उन्मुक्त कर दिए—प्रशस्त कर दिए। दाम्पत्य के मार्ग पर चल कर सुख शान्ति और आनन्द की वर्षा के बीच पुत्र-पुत्रियों का एक सुखी परिवार दिया। अब तुम बतलाओ, तो फिर मैं कैसे इतना कृतघ्न हो जाऊँ, कि मैं तुम्हें धीरे-धीरे भूल जाने का कुत्सित प्रयास करूँ—तुम्हारी प्रिय वस्तुएँ औरों में वितरित कर दूँ—तुम्हारे जीवन कालीन कार्यकलापों के तुम्हारे चित्र नदी की लहरों में क्यों फेंक दूँ।

मेरे लिए यह असम्भव है, किसी मनुष्य का यह सर्वाधिक पराजयपूर्ण कार्य है। मैं तुम्हारी सुखद, प्रेरणाप्रद, सुन्दर स्मृतियों को अपने सौभाग्यपूर्ण जीवन की अन्तिम श्वासों तक इसी प्रकार सँजोकर अपने हृदय के सर्वोच्च स्थान पर सदा सुरक्षित रखूँगा। उन्हे अपने चिन्तन, मनन, आत्म-विश्लेषण और साहित्य साधना का आधार बनाऊँगा। भले ही दुनिया की नजर में तुमने अपना सुरचित शरीर त्यागकर मुझसे स्थूल पृथक्ता प्राप्त कर ली हो पर मुझे अटूट विश्वास है कि तुम्हारा सुन्दर सुमनों के समान सुकोमल मन सदा मेरे समीप निवास करेगा। तमाम तुम्हारी नारी-शक्ति, तुम्हारी सुगन्धित सत्ता, तुम्हारी सक्रिय-अस्मिता, तुम्हारा शरदपूनों की तरह चमकता मुखड़ा, तुम्हारा प्रेरणादायक व्यक्तित्व हर्ष और उत्साह प्रवाहित करने वाली तुम्हारी मधुर-स्मृति—ये सदा-सदा मेरे रोम-रोम में छिपा रहेगा और मेरे अतीत की भाँति मेरे काल्पनिक भविष्य को सँवारता रहेगा।

मैं महानगरों की रंगीन सन्ध्याओं के जगमगाते प्रकाश में मन्थर गति से आगे कदम बढ़ाती हुई सुसज्जित केशों वाली नारियों की भीड़ में तुम्हें खोजता हूँ, पर तुम्हारा एक भी चिह्न उनमें दिखलाई नहीं पड़ता। मैं राजधानी के नामी-गिरामी छविगृहो से मैटिनी शो देखकर निकलती हुई रूप-यौवनाओं की पंक्तियों में तुम्हें तलाशता हूँ, पर वे सभी तुम्हारी तुलना में निम्नस्तरीय नारीत्व का परिधान पहने दिखलाई पड़ती है। प्रातः सायं अपने विचरण के दौरान स्वर्ण जयन्ती स्मृति विहार के नव-निर्मित

पार्क के हरे-हरे लानों पर वृत्ताकार बैठी नगरीय प्रौढ़ाओं के मध्य तुम्हें खोजने की चेष्टा करता हूँ, पर अपनी बौद्धिक स्थूलता और ऐश्वर्य भ्रमित होने के कारण वे सभी तुमसे लेशमात्र भी सादृश्य नहीं रखतीं। हाँ अलबत्ता अमावस्या की तिमिर पूर्ण निशा के खुले आकाश में जगमगाते हुए तारों के बीच जब मैं तुम्हें खोजने का प्रयास करता हूँ तो अवश्य इधर-उधर विस्तृत गगन के चमकीले तारों के बीच तुम बैठी धरतीवासियों की ओर देखती हुई बार-बार नजर आती हो।

मेरी युग-युगों की प्रेमिके, शाश्वत जीवन-संगिनी। तुमने अपने नारी जीवन के झंझावात प्रकोपपूर्ण पतझड़ और मधु बरसाने वाले वसन्त बिताते हुए अपने आगामी वसन्तोत्सव की तैयारी से पहले ही, इस फूलती हुई धरती के रंग-बिरंगे दृश्यों को उपेक्षापूर्ण दृष्टि से देखते हुए बिना मुझसे कुछ बतलाए अपने स्नेहिल शारीरिक सान्निध्य से मुझे वंचित कर दिया और साथ ही साथ अपने चिर-परिचित चरण-चिह्नों द्वारा मेरे भावी जीवन-पथ की सरंचना करती हुई आगे-आगे चली गई ताकि अविचलित, प्रेमी और समर्पित पति की भाँति उस सुदृश्य पथ को पकड़े हुए मैं तुम्हारी दिव्य दैहिक-गन्ध के सहारे अपने डगमगाते कदमों को नियन्त्रित करता और तुम्हारा अनुगमन करता हुआ उसी महाशून्य में प्रविष्ट हो जाऊँ जिसमें तुम मेरी आँखों के सामने प्रविष्ट हो चुकी हो। अपने वैधुर्य-प्रकरण के सम्बन्ध में बस एक बात मुझे अपने सुधी पाठकों से कहने को शेष रह गई थी, जो इन दो शेरों में कही गई है।

"किससे कहें कि छत की मुंडेरों से गिर पड़े,
हमने ही खुद पतंग उड़ाई थी शौकिया"

और साथ में

"जुस्तजू जिसकी थी, उसको न पाया हमने,
इसी बहाने मगर देख ली दुनिया हमने।"

●●●